धनपाल कृत

तिलक-मञ्जरी

(एक सांस्कृतिक अध्ययन)

पुष्पा गुप्ता
व्याख्याता संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरोही

प्रकाशक
पब्लिकेशन स्कीम
जयपुर-इन्दौर

विषय–सूची

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

"पूज्य गुरुवर
डॉ० रसिक विहारी जोशी,
प्रोफेसर एव अध्यक्ष दिल्ली विश्वविद्यालय
के चरण-कमलो मे सादर समर्पित"

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक 'तिलकमंजरी, एक सांस्कृतिक अध्ययन' मेरे शोध-प्रबन्ध धनपाल विरचित तिलकमंजरी का आलोचनात्मक अध्ययन पर आधारित है, जो सन् 1977 में जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी. एच. डी. उपाधि हेतु स्वीकृत किया गया था।

तिलकमंजरी संस्कृत गद्य-विद्या में लिखी गई एक अत्यधिक मनोरंजक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध कथा है। सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्व इसलिए और भी अधिक बढ़ गया है क्योंकि यह जैन धर्म एवं संस्कृति की पृष्ठ भूमि पर आधारित है। तिलकमंजरी पर कुछ शोध-कार्य पहले भी हुआ है लेकिन इसकी सांस्कृतिक समृद्धि पर आलोचकों ने समग्र ध्यान नहीं दिया। इसी अभाव को दृष्टिगत रखते हुए मेरे मन मे प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का विचार स्फुरित हुआ जिसकी क्रियान्विति के फलस्वरूप यह पुस्तक प्रकाश में आयी। इसके लेखन में यद्यपि मैंने ग्रन्थकार के जीवन, पांडित्य, कथा का साहित्यिक मूल्यांकन आदि विषयों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है तथापि मेरा प्रमुख प्रयास यही रहा है कि पाठकों और शोधकर्ताओं को दशम-एकादश शती की संस्कृति के परिचायक, इस प्रतिनिधि ग्रन्थ का पूर्ण विवरण प्राप्त हो सके। तत्कालीन राजाओं एवं जनसाधारण के मनोरंजन के साधन, वस्त्र एवं वेशभूषा, आभूषण, प्रसाधन सामग्री, केश-विन्यास आदि पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए समकालीन अन्य ग्रन्थों के उद्धरणों से भी तुलनात्मक अध्ययन आधुनिक वैज्ञानिक शोध-पद्धति के आधार पर किया गया है।

तिलकमंजरी कथा के ग्रन्थकार गद्य कवि धनपाल दशम तथा एकादश शती के विद्वान् कवि हैं, जिनकी ख्याति इस एक ग्रन्थ से ही पूरे देश में फैल गई थी। धनपाल ने सीयक, सिन्धुराज, मुञ्ज एवं भोजराज जैसे यशस्वी एवं पराक्रमी परमार राजाओं का आश्रय प्राप्त कर 'सरस्वती' विरुद पाया था। अतः उनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन हेतु उसने तिलकमंजरी की प्रस्तावना में 12 पद्य प्रशस्ति स्वरूप रचे हैं।

महाकवित्रय दण्डी, सुबन्धु एवं बाणभट्ट ने गद्य-साहित्य की जो अलौकिक ज्योति प्रज्वलित की थी, अनेक दशकों तक उसे पुनर्दीप्त करने का साहस परवर्ती कवियों को नहीं हुआ किंतु धनपाल ने बाणभट्ट को अपना आदर्श मानते हुए तिलकमंजरी की रचना से गद्य श्री को पुन: समृद्ध किया। उन्होंने यह रचना

अत्यधिक सुबोध, अल्पसमासयुक्त एवं ललित तथा प्राञ्जल भाषा में रची। उनका आदर्श गद्य 'नाति श्लेषधन' था।

तिलकमंजरी राजकुमार हरिवाहन एवं विद्याधरी तिलकमंजरी की प्रेम-कथा है, अतः ग्रन्थ का नामकरण नायिका के नाम के आधार पर है। इसकी कथा जैन धर्म के सिद्धान्त ग्रन्थों की आख्यायिकाओं पर आधारित है।

प्रस्तुत पुस्तक छः अध्यायों मे विभक्त है। प्रथम अध्याय धनपाल के जीवन, काल निर्धारण तथा रचनाओं के उपलब्ध सामग्री के आधार पर विवेचन से सम्बद्ध है। धनपाल सर्वदेव का पुत्र एवं देवर्षि का पौत्र था इनके भ्राता शोभन ने श्री महेन्द्रसूरि से जैन धर्म मे दीक्षा प्राप्त की थी तथा कालान्तर मे भ्राता के प्रभाव से इन्होंने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया था। वे परमार नरेशों की राज-सभा के सम्मान्य एवं अग्रणी कवि थे। बाह्य तथा अन्त साक्ष्य के आधार पर उसका समय, 10वीं सदी का उत्तरार्ध तथा 11वी सदी का पूर्वार्ध निश्चित होता है। उसकी प्रसिद्धि प्रमुखतः तिलकमंजरी पर ही आधारित है। ऋषभपञ्चाशिका, पाइयलच्छीनाममाला, वीरस्तुति सत्यपुरीयमहावीरोत्साहादि उनकी अन्य रचनाएं हैं।

द्वितीय अध्याय मे तिलकमंजरी के कथानक का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम कथा का साराश प्रस्तुत करके कथावस्तु के प्रासंगिक तथा आधिकारिक भेदों का निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् वस्तु-विन्यास की दृष्टि से तिलकमंजरी के कथानक का मूल्यांकन किया गया है जिसमे प्रमुख कथा-मोडों का स्पष्टीकरण तथा उद्देश्य वर्णित किया गया है। तदनन्तर परवर्ती कवियों द्वारा तिलकमंजरी के तीन पद्य-रूपान्तरों एवं तिलकमंजरी के टीकाकारों का विवरण दिया गया है।

तृतीय अध्याय मे व्युत्पत्ति की दृष्टि से धनपाल के पाडित्य को विवेचित करने वाली सामग्री का सकलन करके तिलकमंजरी का मूल्यांकन किया गया है। वेद-वेदांग, पौराणिक साहित्य, दार्शनिक साहित्य तथा धर्मशास्त्र आयुर्वेद, गणित संगीत, चित्रकला, सामुद्रिक शास्त्र, साहित्य शास्त्र, अर्थ शास्त्रादि विभिन्न शास्त्रों से सम्बन्धित सामग्री का विवेचन इस अध्याय मे किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमे कथा तथा आख्यायिका तिलकमंजरी : एक कथा, धनपाल की भाषा, शैली, तिलकमंजरी में अलंकारों का प्रयोग, रसाभिव्यक्ति आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम एवं षष्ठ अध्याय मे तिलक मंजरी कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का विशद एवं विस्तृत ब्योरा दिया गया है। तत्कालीन मनोरंजन के

साधन, वेषभूषा आभूषण, प्रसाधन, केश-विन्यास आदि का विवरण तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दिया गया है इनके अतिरिक्त तिलक मंजरी में वर्णित पशु-पक्षी, वनस्पति-वर्ग, खान-पान से सम्बन्धित विविध सामग्री का अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक जीवन जैसे वर्णाश्रम व्यवस्था पारिवारिक जीवन, स्त्री का स्थान, विवाह मेले त्योंहार, उत्सवादि का भी विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार का शोध-एवं अध्ययन इससे पूर्व नहीं किया गया था।

अंत में, मैं इस पुस्तक की आधारभूत सामग्री के संकलन में मुझे जिन-जिन का सहयोग प्राप्त हुआ है उन्हें धन्यवाद ज्ञापन करना चाहूंगी। सर्वप्रथम मैं संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठित, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त, मूर्धन्य विद्वान् डॉ० रसिक विहारी जोशी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मुझे संस्कृत शोध की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति में दीक्षित किया और तिलकमंजरी के दुरूह स्थलों को समझने में मेरा मार्ग-निर्देशन किया।

मैं राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली एवं विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग, दिल्ली के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे शोध-कार्य हेतु आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

मैं राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, जोधपुर विश्वविद्यालय के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने ग्रन्थ सौविध्य द्वारा मुझे सहायता प्रदान की।

मैं अपने उन सभी गुरुजनों, मित्रों और बन्धुओं को धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जो परोक्ष और अपरोक्ष रूप में मेरे इस कार्य में प्रेरक रहे।

मेरे पति श्री अरुण कुमार गुप्ता को धन्यवाद देने के लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं हैं, जिनके सहयोग के अभाव में इस कार्य के पूर्ण होने की कोई सम्भावना ही नहीं थी।

अंत में, मैं प्रोप्राइटर पब्लिकेशन स्कीम के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रदर्शित करती हूँ, जिनके सहयोग से मैं अपनी कृति को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत कर सकी।

आशा करती हूं कि प्रस्तुत पुस्तक संस्कृति-प्रेमी विद्वद्जनों एवं शोधार्थियों के ज्ञानवर्धन में सहायक होगी।

निवेदिका

पुष्पा गुप्ता

वहिश्रावास-सिरोही

6.7.88

प्रथम अध्याय

धनपाल का जीवन, समय तथा रचनायें

धनपाल का जीवन एवं व्यक्तित्व

अन्तरग व बाह्य दोनो प्रमाणो से हमे धनपाल के जीवन से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है । धनपाल ने स्वय अपनी रचनाओं मे अपने विषय मे निम्नलिखित जानकारी प्रदान की है ।

तिलक मंजरी की प्रस्तावना

इसमे धनपाल ने अपने पितामह, पिता तथा स्वय अपने विषय मे लिखा है । अपने पितामह देवर्षि के दान की महिमा का गान करते हुए वे कहते हैं—"मध्यदेश के अत्यन्त समृद्ध नगर साकाश्य मे एक द्विज उत्पन्न हुआ, जो दानवर्षित्व से विभूषित होते हुए भी देवर्षि नाम से प्रसिद्ध हुआ ।"[1] इससे ज्ञात होता है कि धनपाल के पूर्वज मूलत मध्यदेश के साकाश्य नगर के निवासी थे । यह नगर वर्तमान समय मे फर्रुखाबाद जिले मे 'सकिसा' नाम से जाना जाता है ।[2]

इन्ही देवर्षि के पुत्र सर्वदेव हुए, जो समस्त शास्त्रो के अध्येता, कर्मकाण्ड मे निपुण, काव्य-निबन्धन और काव्य-अर्थ दोनो मे समान रूप से कुशल होते हुए साक्षात् ब्रह्मा के समान थे ।[3]

इन्ही विद्वान् ब्राह्मण का पुत्र था धनपाल, जिसे सकल विद्यासागर राजा मुज ने अपनी सभा मे 'सरस्वती' विरुद प्रदान किया था[4] तथा जिसने

---

1 आसीद्द्विजन्माऽखिलमध्यदेश प्रकाशसाकाश्यनिवेशजन्मा ।
अलब्ध देवर्षिरिति प्रसिद्धि, यो दानवर्षित्वविभूषितोऽपि ॥
—तिलकमजरी, 51, पृ 7

2. (क) Indian Historical Quarterly, March,;1929, p 142
(ख) प्रेमी नाथूराम; जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 409

3 शास्त्रेष्वधीती कुशल. क्रियासु, बन्धे च बोधे च गिरा प्रकृष्टः ।
तस्यात्मजन्मा समभून्महात्मा, देवः स्वयम्भूरिव सर्वदेव ॥
—तिलकमजरी, 52, पृ 7

4 तिलकमजरी, 53, पृ 7

राजा भोज के जिनागमोक्त कथाओं में कुतूहल होने पर उनके विनोद हेतु तिलकमंजरी की रचना की थी।[1]

(2) इसके अतिरिक्त धनपाल ने अपने कनिष्ठ भ्राता शोभन का परिचय दिया है। शोभन ने 24 तीर्थंकरों की स्तुति में यमक अलंकारमण्डित स्तुतिचतुर्विंशतिका[2] की रचना की थी। यह तीर्थेशस्तुति तथा शोभन-स्तुति के नाम से भी प्रसिद्ध हुई थी।[3] इस स्तुति पर धनपाल ने वृत्ति लिखी है।[4] इस वृत्ति के प्रारम्भ के सात पद्यों में उसने अपने अनुज का परिचय दिया है जिसमें से प्रारम्भिक दो पद्य तिलक मंजरी में भी प्राप्त होते हैं।[5]

शोभन न केवल नाम से ही अपितु सुन्दर वर्णयुक्त शरीर से भी सुशोभित था। वह अपने गुणों से अत्यन्त पूज्य व प्रशंसनीय था। वह साहित्य-सागर का पारगामी था। उसने कातन्त्र व चन्द्र व्याकरण का अध्ययन किया था। जैन-दर्शन में तो वह निष्णात था ही, बौद्ध-दर्शन का भी उसने गहन अध्ययन किया था, अतः वह समस्त कवियों मे आदर्श स्वरूप था।[6]

इस टीका की रचना धनपाल ने शोभन की मृत्यु के पश्चात् की थी, जैसाकि उसने अपनी वृत्ति में कहा है।[7]

(3) शोभन के अतिरिक्त धनपाल के एक छोटी बहिन सुन्दरी भी थी, जिसके लिए उसने वि. सं. 1029 में पाइयलच्छीनाममाला नामक प्राकृत कोष की रचना की थी।[8]

---

1. वही, 50, पृ. 7
2. स्तुतिचतुर्विंशतिका, काव्यमाला (सप्तम गुच्छकः), 1890
3. Velankar, H D. Jinaratna Kosa, Part I, B.O.R.I., 1944, p. 387
4. स्तुतिचतुर्विंशतिका–(स.) हीरालाल रसिकदास कापडिया, आगमोदय समिति, बम्बई 1926, पृ. 1, 2
5. तिलकमंजरी—प्रस्तावना, पद्य 51, 52
6. स्तुतिचतुर्विंशतिका, धनपाल कृत टीका, 3, 4
7. एतां यथामति विमृश्य निजानुजस्य,
   तस्योज्ज्वलं कृतिमलंकृतवान् स्ववृत्त्या।
   अभ्यार्थितो विदधता त्रिदिवप्रयाणं,
   तेनैव साम्प्रतकविर्धनपालनामा॥

   —स्तुतिचतुर्विंशतिका, पद्य 7
8. पाइयलच्छीनाममाला, गाथा 276, 277

धनपाल की रचनाओ से प्राप्त इन सूचनाओ के अतिरिक्त प्रभाचन्द्रसूरिकृत प्रभावकचरितगत (वि स 1334) महेन्द्रसूरिप्रबन्ध, मेरतुग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि (वि. स 1361), सघतिलकसूरिकृत सम्यकत्वसप्ततिटीका (वि स. 1422), रत्नमदिरगणिकृत भोजप्रबन्ध (वि म 1517), इन्द्रहसगणि कृत उपदेशकल्पवल्ली (वि म 1555), हेमविजयगणि कृत कथारत्नाकार (वि स. 1657), जिनलाभसूरि कृत आत्मप्रबोध (वि. स. 1804), विजयलक्ष्मीसूरि कृत उपदेशप्रमादादि (वि स. 1843) जैन ग्रन्थो से हमे धनपाल के जीवन से सम्बन्धित विस्तृत विवरण प्राप्त होता है ।[1] वस्तुत प्रभावकचरित[2] तथा प्रबन्धचिन्तामणि[3], ये दोनो जैन प्रबन्ध धनपाल के जीवन-चरित पर विशेष प्रकाश डालते हैं, शेष सभी ग्रन्थो मे इन्हीं का अनुकरण किया गया है । अत हमारा अध्ययन प्रमुखत इन्ही ग्रन्थो पर आधारित है ।

प्रभावकचरित का रचनाकाल धनपाल के समय से लगभग 300 वर्ष पश्चात् का है, अत इसमे ऐतिहासिक तथ्यो का दन्त कथाओ के साथ मिश्रित होना स्वाभाविक है ।

धनपाल के पूर्वज मूलत मध्यदेश के साकाश्य नगर के निवासी थे, किन्तु आजीविका हेतु धारा नगरी मे आकर बस गये थे । धनपाल के पितामह देवर्षि अत्यन्त दानी व पुण्यात्मा थे, उन्हे राजा से दक्षिणा के रूप मे प्रचुर धन प्राप्त होता था । ये काश्यपगोत्रीय श्रेष्ठ ब्राह्मणों के कुल मे उत्पन्न हुए थे तथा अगो सहित चारो वेदो मे पारगत थे । धनपाल के पिता सर्वदेव स्वय वेद-वेदागो तथा शास्त्रो के प्रकाण्ड विद्वान् तथा काव्य निर्माता थे । सर्वदेव के दो पुत्र रत्न उत्पन्न हुए, ज्येष्ठ धनपाल तथा कनिष्ठ शोभन । शोभन प्रकृति से सरल और पितृभक्त था । धनपाल ने वेद, स्मृतियो तथा श्रुतियो का गहन अध्ययन किया था ।[4] इन्होने अपनी विद्वता से भोज की सभा मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया था ।[5] धनपाल मुजराज के पुत्र समान थे तथा भोज के बाल मित्र थे ।[6] ये वैदिक

---

1 कापडिया, हीरालाल रसिकदास, प्रस्तावना— ऋषभपचाशिका अने वीरस्तुतियुगलरूप कृतिकलाप देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थाक 8¹, 1933

2. प्रभाचन्द्र, प्रभावकचरित—श्री महेन्द्रसूरि चरित—पृ. 138-151

3 मेरुतुग, प्रबन्ध चिन्तामणि, भोज-भीम प्रबन्ध, पृ, 36-42

4. प्रभावकचरित, पृ. 138-139

5. अभ्यस्तसमस्तविद्यास्थानेन धनपालेन श्रीभोजप्रसादसम्प्राप्तसमस्तपण्डित प्रष्ठप्रतिष्ठेन ·· । —मेरुतुग, प्रबन्ध चिंतामणि, पृ 36

6. प्रभावकचरित, पृ. 139

धर्म के अनुयायी और कट्टर ब्राह्मण थे, किन्तु बाद में अपने अनुज शोभन से प्रभावित होकर उन्होंने जैन-धर्म स्वीकार कर लिया था। इनके द्वारा जैन धर्म स्वीकार करने की कथा प्रभावकचरित में निम्न प्रकार दी गयी है—'धनपाल के पिता सर्वदेव चान्द्रगच्छ के महेन्द्रसूरि की प्रसिद्धि सुनकर उनके उपाश्रय में गये। सूरि के पूछने पर सर्वदेव ने कहा कि मेरे पिता देवर्षि राजमान्य थे तथा उन्होंने लाखों की दक्षिणा प्राप्त की थी, अतः मुझे अपने घर में गुप्त धन प्राप्त होने की आशा है। दूरदर्शी सूरि ने ज्ञात कर लिया कि सर्वदेव से उन्हें उत्तम शिष्य का लाभ हो सकता है। अतः उन्होंने आधा धन लेने का वचन ले लिया। शुभ दिन में मुनि के कथनानुसार भू-खनन से सर्वदेव को 40 लाख स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त हुयीं, किन्तु धन के प्रति निःस्पृह सूरि अपने उपाश्रय में चले गये। सर्वदेव द्वारा पुनः पुनः आग्रह करने पर मुनि ने पुत्रद्वय में से एक पुत्र के शिष्य के रूप में प्रदान करने को कहा। इस पर प्रतिज्ञाबद्ध सर्वदेव किंकर्तव्यविमूढ़ से घर लौट आये तथा धनपाल को महेन्द्र सूरि का शिष्यत्व ग्रहण कर उनको इस ऋण से मुक्त करने के लिए कहा। यह सुनकर स्वाभिमानी धनपाल ने अत्यन्त क्रोध से कहा—'हम चारों वेदों के ज्ञाता तथा सांकाश्य के रहने वाले उत्तम ब्राह्मण हैं। श्री मुंजराज का मैं पुत्र सदृश तथा श्री भोजराज का बाल-मित्र हूँ। अतः पतित शूद्रों के समान श्वेत साधुओं से दीक्षा लेकर अपने पूर्वजों को नरक में नहीं डालूंगा तथा सज्जनों द्वारा निन्दित यह व्यवहार नहीं करूंगा।' इस प्रकार धनपाल द्वारा प्रताड़ित सर्वदेव अत्यन्त निराश हो गया किन्तु उसी समय शोभन ने उसे आकर आश्वस्त किया। उसने कहा कि धनपाल राजपूज्य है तथा कुटुम्ब का पालन करने में सक्षम है। वह वेद, स्मृति, श्रुति में पारंगत तथा पण्डितों में अग्रगण्य है। तब शोभन ने श्री महेन्द्रसूरि से जैन धर्म में दीक्षा लेना स्वीकार कर लिया। शुभ मुहूर्त में सूरि द्वारा शोभन को दीक्षित किया तथा वे उसे अपने साथ अणहिल्लपुर ले गये।

धनपाल पिता के इस कृत्य से रुष्ट होकर उससे अलग हो गया तथा राजा भोज की आज्ञा से द्वादश वर्ष पर्यन्त मालवा में श्वेताम्बर साधुओं के आवागमन पर रोक लगवा दी। अपने भ्राता के इस द्वेष को देखकर शोभन ने धनपाल का प्रतिबोधन करने का निश्चय किया तथा दो मुनियों को उसके घर गोचरी के लिए भेजा। उन्होंने धनपाल के घर जाकर धर्मलाभ कहा तो धनपाल की पत्नी ने उन्हें उपितान्न तथा तीन दिन का दही दिया। उनके यह पूछने पर कि यह दही कितने दिन का है, उसने क्रोध से कहा कि इसमें कीड़े हैं ? तब उन जैन साधुओं ने उसमें अलक्तक रस डालकर दही में तैरते कीड़े दिखाये। जैन धर्म में जीव-रक्षा की प्रधानता व जीवोत्पत्ति विषयक ज्ञान का वैशिष्ट्य जानकर धनपाल

मे जैन धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई, और उसने महेन्द्रसूरि से जैन धर्म की दीक्षा ली।[1]

इस कथा से निम्नलिखित तथ्यो का सग्रह किया जा सकता है—

(1) पिता की आज्ञा से धनपाल के अनुज शोभन ने श्री महेन्द्रसूरि का शिष्यत्व ग्रहण कर जैन धर्म मे दीक्षा ली थी।

(2) धनपाल ने अपने पिता के इस कृत्य से रुष्ट होकर द्वादश वर्ष पर्यन्त धारानगरी मे श्वेताम्बर जैनों के आवागमन पर रोक लगवा दी।

(3) कालान्तर मे अपने भ्राता के सौजन्य म एव जैन धर्म के सिद्धान्तो से प्रभावित होकर उसने जैन धर्म स्वीकार कर लिया एव श्री महेन्द्रसूरि से दीक्षा प्राप्त की। तिलकमञ्जरी की प्रस्तावना मे धनपाल ने अपने गुरु को आदरपूर्वक नमस्कार किया है।[2]

प्रभावकचरित मे धनपाल की पत्नी धनश्री का उल्लेख मिलता है।[3] प्रबन्धचिंतामणी मे उसके लिए केवल ब्राह्मणी शब्द का प्रयोग हुआ है।[4]

धनपाल के विषय मे एक और दन्तकथा अत्यधिक प्रचलित हुयी थी। जिसका सार यह है कि धनपाल ने जब तिलकमजरी कथा की रचना की तो भोज ने उसमे कुछ परिवर्तन करने के लिए कहा कि अयोध्या के स्थान पर धारा, शक्रावतार के स्थान पर महाकाल मन्दिर, ऋषभ के स्थान पर शकर तथा मेघवाहन के स्थान पर परिवर्तन कर स्वय मेरा नाम लिख दो। इस पर स्वाभिमानी धनपाल ने कहा कि जिस प्रकार श्रोत्रिय के हाथ के दुग्धपात्र मे मदिरा की एक बूद भी गिर जाय तो वह अपवित्र हो जाता है, इसी प्रकार इस कथा मे परिवर्तन करने पर यह भी अपवित्र हो जायेगी। धनपाल के कथन से क्रुद्ध होकर भोज ने तिलकमजरी को अग्नि को भेंट कर दिया, किन्तु अपनी विदुषी पुत्री की सहायता से धनपाल ने इसकी पुन रचना की। भोज के इस व्यवहार से अपमानित होकर धनपाल धारा नगरी छोडकर मरुमण्डल के सत्यपुर नामक स्थान को चला गया।[5]

1 प्रभावकचरित, पृ 138–139, प्रबन्धचिंतामणि, 36–37

2 सूरिमहेन्द्र एवैको वैबुधाराधितक्रम ।
यस्मामस्योचितप्रौढिकविविस्मयकृद्वच ॥

—तिलकमञ्जरी, पद्य 34

3 प्रभावकचरित, पृ 139

4 प्रबन्धचिंतामणि, पृ 37

5. प्रभावकचरित, पृ. 145–146

यद्यपि इस कथा को प्रमाणित करने वाला अन्य कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, किन्तु इसमें निहित कुछ तथ्य हमें प्राप्त होते हैं—

(1) धनपाल की पुत्री अत्यन्त विदुषी थी, उसकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी।

(2) धनपाल अत्यन्त स्वाभिमानी थे व चाटुकारिता से दूर रहते थे।

(3) धनपाल धारा नगरी छोड़कर कुछ समय सत्यपुर नगर में रहे। धनपाल ने सत्यपुर के महावीर की स्तुति में अपभ्रंश भाषा में 30 पद्यों की रचना की है। इस रचना से भी इसकी पुष्टि होती है।[1]

धनपाल ने भोज की सभा में कौल कवि धर्म के साथ वाद-विवाद कर उसे पराजित किया था।[2] श्री मुंज ने धनपाल को अपनी सभा में 'कूर्चाल सरस्वती' विरुद प्रदान किया था।[3] धनपाल की तिलकमंजरी से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।[4] धनपाल ने तिलकमंजरी की रचना करके अणहिल्लपुर के श्री शान्तिसूरि से भेंट की तथा जैन धर्म की दृष्टि से कोई दोष नहीं रह गया हो, इस प्रकार उसका संशोधन करवाया।[5]

धनपाल श्वेताम्बर जैन थे। तिलकमंजरी की भूमिका में धनपाल ने सभी श्वेताम्बर जैन कवियों को नमस्कार किया है।[6] प्रभावकचरित के अनुसार धनपाल ने अपने धन का सात क्षेत्रों में वितरण किया, जिनमें सर्वप्रथम चैत्य-निर्माण था। उसने नाभिसुनु अर्थात् ऋषभदेव का चैत्य बनवाया तथा उसमें

1. जैन-साहित्य-संशोधक, खण्ड 3, अंक 3
2. प्रभावकचरित, पृ. 146–149
3. पुरा ज्यायान्महाराजस्त्वामुत्संगोपवेशितम् ।
प्राहेति विरुदं तेऽस्तु श्री कूर्चालसरस्वती ॥ 271 ॥

—वही, पृ 148

4. ....श्रीमुंजेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः ॥

—तिलकमंजरी–पद्य 53

5. अथासौ गूर्जराधीश कोविदेशशिरोमणिः ।
वादिवेतालविरुदं श्रीशान्त्याचार्यमाह्वयत् ॥ 201 ॥
अशोधयदिमां चासावुत्सूत्रादिप्ररूपणात् ।
शब्दसाहित्यदोषास्तु सिद्धसारस्वोपुकिम् ॥ 202 ॥

—प्रभावकचरित, पृ. 145

6. तिलकमंजरी, पद्य 24, 32, 34

अपने गुरु से ऋषभदेव की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी। उसी ऋषभदेव की स्तुति में उसने 'जय जतु कप्प' यह पचशनगाथामय स्तुति की रचना की।[1]

धनपाल ने विभिन्न जैन तीर्थों का भ्रमण किया था इसका निर्देश उन्होने अपनी रचना 'सत्यपुरीय–महावीर–उत्साह' में दिया है। वे कहते हैं—

> कोरिटं, सिरिमाल, धार, आहाडु नराणइ
> अणहिलवाडइ, विजयकोट्ट पुण पालित्ताण।
> पिक्खिवि ताव बहुत्त ठाममणि चो छ पइसर
> ज अज्जवि सच्चउरिवीरु लोहणिहि न दीसइ॥

अर्थात् उन्होने कोरटंक, श्रीमालदेश, धार, आहाड, नराणा, अणहिलवाड, पाटण, विजयकोट्ट तथा पालिताणा आदि जैन तीर्थों की यात्रा की थी।

इस प्रकार हमे धनपाल की रचनाओ तथा परवर्ती जैन प्रबन्धो से उसके जीवन के विषय मे विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

धनपाल का समय

सौभाग्यवश धनपाल उन सस्कृत कवियो मे है, जिनके समय के विषय मे अधिक मतभेद नही है। इसका कारण यह है कि उन्होने स्वय अपने प्राकृत कोष पाइयलच्छीनाममाला के अन्त मे उसके रचनाकाल का स्पष्ट निर्देश किया है। पाइयलच्छी के अन्त मे उसने लिखा है—'विक्रम के 1029 वर्ष बीत जाने पर जब मालवनरेश ने मान्यखेट पर आक्रमण करके उसे लूटा, उस समय धारानगरी मे निवास करने वाले कवि धनपाल ने अपनी कनिष्ठ भगिनी सुन्दरी के लिए इस कोष की रचना की।'[2]

इस उद्धरण मे जिस मालवनरेश का उल्लेख किया गया है, वह परमार नरेश सीयक है, इसकी पुष्टि ऐतिहासिक प्रमाणो से होती है। जिस समय का उल्लेख किया गया है, उस समय मान्यखेट पर राष्ट्रकूट खोट्टिग राज्य करता था।[3] उदेपुर प्रशस्ति मे सीयक द्वारा खोट्टिग को हराये जाने का विवरण प्राप्त

---

1 प्रभावकचरित, पद्य 191-193, पृ 145

2 विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि।
मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि॥ 276॥
धारानयरीए परिट्ठिएण मग्गे ठिआए अणवज्जे।
कज्जे कणिट्ठबहिणीए 'सुन्दरी' नामधिज्जाए॥ 277॥
—धनपाल, पाइयलच्छीनाममाला, (स) बेचरदास जीवराज दोशी, बम्बई, 1960

3. Bombay Gazette, Part II, p 422

होता है।[1] शिलालेखों से भी इसकी पुष्टि होती है। खोट्टिग का एक शिलालेख शक सं. 893 अर्थात् ई. स. 971 का प्राप्त हुआ है तथा उसके उत्तराधिकारी कर्कराज का एक ताम्रपत्र शक सं. 894 अर्थात् ई. स. 972 का मिला है।[2] अतः खोट्टिग सीयक के साथ युद्ध करते हुए ई. स. 972 से पूर्व मारा गया। सीयक ने मालवा पर ई. स. 949–972 तक राज्य किया तथा इनकी राजधानी धारा नगरी थी।[3] अतः यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि धनपाल ने अपना साहित्यिक जीवन सीयक के शासनकाल में प्रारम्भ किया तथा सीयक ही उसका प्रथम आश्रयदाता था। इसी सीयक अपरनाम श्री हर्षदेव की प्रशंसा करते हुए धनपाल तिलकमंजरी में लिखता है कि पंचेषु के समान श्रीसीयक के पौरुषगुण रूप सायक किसके हृदय में नहीं लगे।[4]

पाइयलच्छीनाममाला धनपाल की प्रथम रचना प्रतीत होती है। इसके मंगलाचरण में धनपाल ने ब्रह्मा को नमस्कार किया है।[5] अपनी अन्य सभी रचनाओं में धनपाल ने 'जिन' का स्मरण किया है। अतः पाइयलच्छी की रचना तक धनपाल ने जैन धर्म अंगीकार नहीं किया था।

धनपाल के काल की प्रारम्भिक सीमा तिलकमंजरी की प्रस्तावना की सहायता से निर्धारित की जा सकती है। संस्कृत गद्य-कवियों की परम्परा का अनुसरण करते हुए धनपाल ने तिलकमंजरी मे अपने पूर्ववर्ती कवियों एवं उनकी

---

1. तस्माद् अभूद अरिनरेश्वरसंघसेवनागर्जद्गजेन्द्रखसुन्दरतूर्यनादः।
श्रीहर्षदेव इति खोट्टिगदेवलक्ष्मीं जग्राह यो युधि नगादसमप्रतापः॥
Buhler, G : "Udepur Pra sasti of the Kings of Malva", Epigraphia Indica Vol. I, p. 237.
2. Epigraphia Indica, Vol. XII, p. 263.
3. Ganguli, D. C. : History of Paramara Dynasty, p. 37, 44 Dacca, 1933.
4. तत्राभूद् वसतिः श्रियामपरया श्रीहर्ष इत्याख्यया,
विख्यातश्चतुरम्बराशिरसनादाम्नः प्रशास्ता भुवः।
नृपः खर्वितवैरिगर्वगरिमा श्रीसीयकः सायकाः
पंचेषोरिवयस्य पौरुषगुणाः केषां न लग्ना हृदि॥
—तिलकमंजरी—प्रस्तावना, पद्य 41
5. नमिऊण परमपुरिसं पुरिमुत्तमनाभिसंभवं देवं।
वुच्छं 'पाइयलच्छि' त्तिनाममालं निसामेह॥1॥
—पाइयलच्छीनाममाला, गाथा 1

रचनाओ की प्रशसा की है।[1] धनपाल ने निम्नलिखित सस्कृत, प्राकृत एव जैन *ग्रन्थकारो तथा ग्रन्थो का उल्लेख किया है*—वाल्मीकि, व्यास, बृहत्कथा (गुणाढ्य) सेतुबन्ध के कर्ता प्रवरसेन, तरगवती (पादलिप्तसूरि), प्राकृत भाषा के कवि जीवदेव, कालिदास (पचम शती), कादम्बरी तथा हर्षचरित के कर्ता बाणभट्ट *तथा उनका पुत्र पुलिन्द (सप्तमशती), माघ (सप्तमशती), भारवि (634 ई),* समणदित्यकथा (हरिभद्रसूरि, 8वी शती), नाटककार भवभूति (अष्टम शती का पूर्वार्द्ध), गौडवह के रचियता वाक्पतिराज (अष्टम शती), तारागण नामक ग्रन्थ के रचियता श्वेताम्बर शिरोमणि भद्रकीर्ति अथवा बप्पभट्टि (743–838), यायावर कवि राजशेखर (940 ई), शोभन एव धनपाल के गुरु महेन्द्रसूरि, त्रैलोक्यसुन्दरी कथा के कर्ता रुद्र एव उनका पुत्र कर्दमराज।[2]

धनपाल द्वारा किया गया पूर्ववर्ती कवियो का यह स्मरण ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे बृहत्कथा,[3] तरगवती,[4] तारागण,[5] त्रैलोक्य सुन्दरी[6] जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का पता चला। ये ग्रन्थ कालान्तर मे लुप्त हो गये *तथा इन उल्लेखो द्वारा ही इनके अस्तित्व का पता चला।* इसके अतिरिक्त जीवदेव,[7] पुलिन्द,[8] भद्रकीर्ति,[9] महेन्द्रसूरि,[10] रुद्र[11] एव कर्दमराज[12] जैसे अज्ञात कवि प्रकाश मे आए। ऐसा प्रतीत होता है कि धनपाल ने न केवल इनके ग्रन्थो का अध्ययन ही किया अपितु वह उनसे अत्यधिक प्रभावित भी हुआ। बाण तथा उनकी रचनाओ की प्रशसा दो पद्यो मे की गई है, जिसमे बाण का उन पर विशेष प्रभाव स्पष्ट जान पडता है।[13]

---

1. तिलकमजरी—प्रस्तावना, पद्य 20–36
2 तिलकमजरी, प्रस्तावना, पद्य 20–36
3 वही, पृ० 21
4 वही, पृ० 23
5. वही, पृ० 32
6 वही, पृ० 35
7 वही, पृ० 24
8. वही, पृ० 26
9. वही, पृ० 32
10 वही, पृ० 34
11. वही, पृ० 35
12 वही, पृ० 36
13 तिलकमजरी, पद्य 26, 27

धनपाल ने यायावर कवि (राजशेखर) की उक्ति को मुनिवृत्ति के समान बताया है।[1] राजशेखर का समय नवम् शती का अंत तथा दशम शती का पूर्वार्द्ध निश्चित है।[2] अतः धनपाल का समय दशम शती के पूर्वार्द्ध के बाद का ही है। इस प्रकार धनपाल के समय की प्रारम्भिक सीमा दशम शती का उत्तरार्ध निश्चित हो जाती है।

सीयक के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी वाक्पतिराज II अपरनाम मुंज ने धनपाल को न केवल राज्याश्रय ही प्रदान किया, अपितु उसे अपनी सभा में "सरस्वती" विरुद देकर सम्मानित भी किया।[3] धनपाल ने तिलकमंजरी में मुंज की 'एकाधिज्यधनुर्जिताब्धिवलयावच्छिन्नभू:'[4] तथा 'सर्वविद्याब्धि'[5] कहकर प्रशस्ति की है। मुंज का शासन-काल वि० सं० 1031 अर्थात् 974 ई० से पूर्व का है, क्योंकि उसका प्रथम शिलालेख वि० सं० 1031 का पाया गया है।[6]

प्रबन्धचिन्तामणि के कर्ता मेरुतुंग ने मुंजराजप्रबन्ध में मुंज तथा तैलपदेव के युद्ध का वर्णन किया है।[7] यह तैलपदेव कल्याण का राजा चालुक्य द्वितीय था, जिसने मुंज को युद्ध में हराया एवं अंत में मरवा दिया।[8]

अमितगति ने मुंज के शासन-काल में वि०सं० 1050 अर्थात् ई०सं० 993 में अपना सुभाषितरत्न संदोह नामक ग्रन्थ समाप्त किया था।[9] तैलप की

---

1. समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः।
   यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः॥

   –तिलकमंजरी, पद्य 33
2. उपाध्याय, बलदेव; संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 601, वाराणसी, 1968
3. ""अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तिरचने यः सर्वविद्याब्धिना,
   श्रीमुंजेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः॥

   –तिलकमंजरी, पद्य 53
4. तिलकमंजरी, पद्य 42
5. वही, पद्य 53
6. Buhler, G : Udepur Prasasti of the Kings of Malva, Epigraphia Indica, Vol I.
7. मेरुतुंग; प्रबन्धचिन्तामणि, सिंघी-जैन-ग्रन्थमाला–1, पृ० 22–23
8. Tawney, C.H. (Ed. & Trans.) Introduction to Prabandha cintamani p. 23
9. प्रेमी, नाथूराम; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 282

मृत्यु शक० स० 919 अर्थात् 997-98 मे हुई, अत: मुज का देहान्त ई०स० 994-98 के मध्य किसी समय हुआ होगा।[1] मुज ने धारा को छोडकर उज्जैन को अपनी राजधानी बनाया था, क्योकि उसका प्रथम दानपत्र, जो वि०स० 1031 का है, उज्जैन के राजदरबार से प्रसारित किया गया था।[2]

मुज अथवा वाक्पतिराज स्वय विद्वान् कवि होते हुए भी अनेक कवियो का आश्रयदाता था। इस प्रकार मुज का दरबारी कवि होने से धनपाल नवसाहसाकचरित के प्रणेता पद्मगुप्त या परिमल, सुभाषितरत्नसदोह के कर्ता अमितगति, दशरूपकावलोक टीका के कर्ता धनिक, पिंगलछन्द सूत्र के टीकाकार हलायुध का समकालिक कवि था।[3]

धनपाल ने मुज के अनुज तथा भोज के पिता सिन्धुल अथवा सिन्धुराज का आश्रय भी प्राप्त किया था।[4] इन्ही सिन्धुराज की आज्ञा से पद्मगुप्त ने नवसाहसाकचरित की रचना की थी।[5]

डा० ब्हूलर व सी० एच० टाउनी का मत

डा० ब्हूलर तथा सी० एच० टाउनी धनपाल को मुज के समय तक ही मानते हैं तथा भोज की सभा मे उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते।[6] ब्हूलर के विचारो में परस्पर विरोध पाया जाता है। इन्ही डा० ब्हूलर ने एक स्थान पर धनपाल को 'A protege of King Munja and Bhoja' कहा है।[7]

अन्तरग एव बाह्य प्रमाणो से भी यह सिद्ध होता है कि धनपाल ने सीयक, मुज व सिन्धुराज के बाद भोज का भी आश्रय प्राप्त किया था।

अन्तरग प्रमाण–

(1) तिलकमजरी की प्रस्तावना मे धनपाल ने स्पष्ट लिखा है कि

---

1 शास्त्री, विश्वेश्वरनाथ, "मालवे के परमार"–सरस्वती, भाग–14,1913
2 Indian Antiquary, Vol VI, p 51–52.
3 प्रेमी, नाथूराम, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 282
4 Ganguly, D C., History of Parmara Dynasty, p 62–63.
5 प्रेमी, नाथूराम; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 282,
6 (A) Buhler, G; Introduction to Paiyalacchi, p 9.
(B) Tawney. C H Introduction to Prabandhacintamani
7. Buhler, G , "The Author of the Paiyalacchi" Indian Antiquary, Vol, IV, p. 59.

समस्त वाङ्मयविद् होते हुए भी राजा भोज के जिनागमोक्त कथाओं में कुतूहल उत्पन्न होने पर, उनके विनोद हेतु अद्भुतरसयुक्त इस कथा की रचना की ।[1]

(2) धनपाल ने राजा भोज की प्रशंसा में, तिलकमंजरी की प्रस्तावना में 7 पद्यों की रचना की है ।[2]

(3) धनपाल ने मुंज के पश्चात् भोज को उसका उत्तराधिकारी बताया है, जिसका राज्याभिषेक अत्यधिक प्रीति होने से मुंज ने स्वयं किया था ।[3]

बाह्य प्रमाण –

(1) इसके अतिरिक्त बाह्य प्रमाणों से भी भोज के समय में धनपाल की स्थिति सिद्ध होती है । प्रभावकचरित[4] तथा प्रबंधचिंतामणि[5] ये दोनों जैन ग्रन्थ भोज की सभा में धनपाल के साहसिक कार्यों का वर्णन करते हैं । भोज एवं धनपाल की मित्रता इतनी प्रसिद्ध हुई कि इसने कई दन्तकथाओं तथा किंवदन्तियों को जन्म दिया, जिसका वर्णन इन दोनों ग्रन्थों में पाया जाता है ।

(2) डी० सी० गांगुली के अनुसार–"He gained the favourable notice of king Bhoja and rose to be one of his principal court poets. The Ain-i-Akabari relates that of the five hundred poets of Bhoja's Court, Barruj (Vararuci) was the foremost, and the next Dhanapala".[6]

(3) अन्य इतिहासकारों ने भी धनपाल का चारों परमार राजाओं, सीयक, मुंज, सिन्धुराज तथा भोज के समय पर्यन्त जीवित होना माना है ।[7]

---

1. निःशेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य ।
   तस्यातदातचरितस्य विनोदहेतो राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ॥
   –तिलकमंजरी, पद्य 50
2. तिलकमंजरी, पद्य 43–49
3. ...."प्रीत्या योग्य इति प्रतापवसतिः ख्यातेन मुंजाख्यया,
   यः स्वे वाक्पतिराजभूमिपतिना राज्येऽभिषिक्तः स्वयम् ॥
   –वही, पद्य 43
4. प्रभावकचरित, महेन्द्रसूरिचरित, पृ० 138–151
5. मेरुतुंग, प्रबन्धचिन्तामणि, भोज–भीम प्रबन्ध, पृ० 36–42
6. Ganguli, D. C., History of Paramara Dynasty, p 282–83
7. प्रेमी, नाथूराम, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 409

(4) थारापद्रगच्छ के शान्तिसूरि धनपाल के समसामयिक कवि थे।[1] इन्होंने तिलकमंजरी मे उत्सूत्रादि दोषो के प्ररूपण के लिये उसे संशोधित किया था।[2] इनकी मृत्यु वि० स० 1096 अर्थात् ई० 1039 मे हुई।

अत: यह प्रमाणित हो जाता है कि धनपाल ने राजा भोज की सभा को विभूषित किया था। भोज का राज्यकाल 1018–1055 ई० के मध्य माना जाता है।[3] अत ग्यारहवीं शती के पूर्वार्द्ध मे धनपाल की विद्यमानता सिद्ध हो जाती है।

धनपाल के समय की अन्तिम सीमा निर्धारण करने के लिये हमें एक महत्त्वपूर्ण अन्तरग प्रमाण प्राप्त होता है। धनपाल ने अपभ्र श भाषा मे "सत्यपुरीय–महावीर–उत्साह की रचना की थी।[4] इसमे उसने महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ आदि तीर्थों के विनाश का स्पष्ट उल्लेख किया है।[5] महमूद गजनवी ने ई० 1026 में सोमनाथ मदिर का भग किया था।[6] अत यह रचना निश्चित रूप से 1026 ई० के बाद की है।

निम्नलिखित परवर्ती कवियों के उद्धरणो से भी धनपाल के काल-निर्धारण मे सहायता मिलती है—

---

1 अणहिल्लपुरे श्रीमद्भ्रभीमभूपालससदि।
शातिसूरि कवीन्द्रोऽभूद्वादिचक्रीति विश्रुत ॥21॥
अन्यदाऽवन्तिदेशीय सिद्धसारस्वत कवि।
ख्यातोऽभूद् धनपाला ख्य प्राचेतस इवापर ॥22॥
—प्रभावकचरित, पृ० 133

2 अशोधयदिमा चासावुत्सूत्रादिप्ररूपणात्।
शब्दसाहित्यदोषास्तु सिद्धसारस्वतेषु किम् ॥202॥ —वही, पृ० 145

3 प्रेमी, नाथूराम. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 325,

4. मुनि जिनविजय (स०), जैन साहित्यसशोधक, खड 3, अक 3, पृ० 241

5 भजेविणुसिरिमालदेसु अनुअणहिलवाडउ
चड्डावलि सोरटु भग्गु पुणु देउलवाडउ।
सोमेसरू सोतेहि भग्गु जणमणआणदणु
भग्गु न सिरि सच्चउरिवीरू सिद्धत्थहनदणु॥
—सत्यपुरीय-महावीर-उत्साह, पद्य 3

6 Mabel, C Duff, The Chronology of India, Westminster, 1899, p 194

(1) तिलकमंजरी का सर्वप्रथम उल्लेख श्वेताम्बर जैन नमिसाधु ने रुद्रट के काव्यालंकार पर लिखी अपनी टीका में किया है।[1] नमिसाधु ने इस टीका की रचना वि० सं० 1125 अर्थात् ई० 1068–69 में की थी।[2] नमिसाधु के इस उल्लेख से धनपाल का ई० 1068 से पूर्व होना निश्चित हो जाता है।

(2) ताडपत्र पर लिखित तिलकमंजरी की एक हस्तलिखित प्रति जैसलमेर किले के जैन भंडार में सुरक्षित रखी हुई है, जिसका रचनाकाल वि०सं० 1130 अर्थात् ई० सं० 1072–73 है [3]

(3) पूर्णतल्लगच्छ के शांतिसूरि ने तिलकमंजरी पर 1050 पद्य प्रमाण टिप्पण की रचना विक्रम की द्वादश शती के पूर्वार्ध में की थी।[4]

(4) बारहवीं शती में रत्नसूरि ने "अममचरित" नामक ग्रन्थ में धनपाल की प्रशंसा की है।[5]

(5) हेमचन्द्र (1088–1172) ने अपनी रचनाओं में धनपाल का उल्लेख किया है तथा उसके पद्यों को उद्धृत किया है। उसने अपने काव्यानुशासन[6] में तिलकमंजरी के पद्य "प्राज्यप्रभाव—" को वचन–श्लेष के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है तथा तिलकमंजरी के "शुष्क शिखरिणी—" पद्य को छन्दोनुशासन में मात्रा छंद के रूप में उद्धरित किया है।[7] हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि की स्वोपज्ञ वृत्ति में "व्युत्पत्तिर्धनपालतः" कहकर व्युत्पत्ति के विषय में धनपाल को प्रमाण माना है।[8]

---

1. रुद्रट, काव्यालंकार, काव्यमाला–2, 1928, अध्याय 16, पृ० 167
2. Kane, P. V., History of Sanskrit Poetics, p. 155.
3. (क) पन्यासदक्षविजयगणि, तिलकमंजरी–प्रस्तावना, पृ० 19 –विजयलावण्यसूरीश्वर ज्ञानमंदिर, बोटाद, (ख) कापड़िया, हीरालाल रसिकदास, जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास, पृ० 218
4. पन्यासदक्षविजयगणि, तिलकमंजरी–प्रस्तावना, पृ० 19
5. चंद्रवद् धनपालो न कस्य राजप्रियः प्रियः।
   सकर्णाभरणं यस्माज्जज्ञे तिलकमंजरी॥
   –उद्धृत, देसाई, मोहनदास दलीचन्द, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० 200
6. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय 5, पृ० 276
7. हेमचन्द्र, छन्दोनुशासन, अध्याय 3, पृ० 177
8. हेमचन्द्र–अभिधानचिंतामणि, अध्याय 1, पृ० 1

(6) तिलकमजरी के आधार पर रामन के पुत्र पल्लीपाल धनपाल ने वि०स० 1261 अर्थात् 1205 ई० मे 1200 पद्यो का तिलकमजरीसार लिखा ।[1]

(7) सोमेश्वर कवि ने अपनी कीर्तिकोमुदी मे धनपाल की प्रशसा की है ।[2]

(8) सघतिलकसूरि ने तिलकाचार्य विरचित सम्यकत्व-सप्तति पर अपनी टीका मे *तिलकमंजरी कथा की प्रवरतरुणी से तुलना करते हुए उसे उत्तम* कथा कहा है ।[3]

परवर्ती कवियो के इन उद्धरणो से धनपाल का समय ग्यारहवी शती के उत्तरार्ध से पूर्व सिद्ध हो जाता है । अत धनपाल के काल की अतिम सीमा ग्यारहवीं शती का पूर्वार्ध है ।

धनपाल ने पाइयलच्छीनाममाला की रचना ई 972 मे की तथा श्री सत्यपुरीय-महावीर-उत्साह ई स 1026 के पश्चात् लिखा गया । यदि पाइय-लच्छी की रचना के समय धनपाल की आयु 20 वर्ष मानी जाय, तो सत्यपुरीय-महावीर-उत्साह की रचना के समय उसकी आयु 75 वर्ष लगभग होगी । *तिलकमजरी की रचना भोज के समय मे की गई, अतः यह लगभग* 1020 ई. के लगभग लिखी गई, ऐसा अनुमान किया जा सकता है । इस प्रकार धनपाल का जीवन ई 950-1030 के मध्य रहा होगा ।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि धनपाल वह भाग्यशाली कवि था, जिसने चार परमार राजाओ, सीयक, मुज, सिन्धुराज तथा भोज के राज्याश्रय मे एक लम्बे समय तक साहित्य-सृजन किया । अत धनपाल का समय दशम् शती का उत्तरर्द्ध तथा ग्यारहवीं शती का पूर्वार्द्ध निर्धारित हो जाता है ।

---

1 नम श्रीधनपालाय येन विज्ञानगुम्फिता ।
क नालङ्कुरुते कर्णस्थिता तिलकमजरी ॥3॥
Kansara, N M, Tilakmanjarisara of Pallipala Dhanapala, p 1 Ahmedabad, 1969.

2 वचन धनपालस्य, चन्दन मलयस्य च ।
सरस हृदि विन्यस्य कोऽभून्नाम न निर्वृत ॥
-कीर्ति कोमुदी, 1.16

3 सालकारा लक्खण सुच्छदया महरमा सुवन्नरूइ ।
कस्स न हारइ हियय कहुत्तमा पवरतरुणीवव ॥
-उद्धृत, देसाई मोहनचन्द दलीचन्द, जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 201

धनपाल की रचनायें

धनपाल का न केवल संस्कृत भाषा पर ही अधिकार था, अपितु वे प्राकृत अपभ्रंश भाषाओं के भी समान रूप से विद्वान् थे। वे गद्य तथा पद्य, काव्य की इन दोनों विधाओं में पूर्ण रूप से निष्णात थे। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश इन तीनों भाषाओं में अपनी रचनाओं को गुम्फित किया है। प्रो० हीरालाल रसिकदास कापड़िया[1] के अनुसार धनपाल की नौ रचनायें हैं—

1. तिलकमंजरी	संस्कृत
2. पाइयलच्छीनाममाला	प्राकृत
3. ऋषभपंचाशिका	प्राकृत
4. श्रावकविधि प्रकरण	प्राकृत
5. शोभनस्तुति की वृत्ति	संस्कृत
6. वीरस्तुति (विरुद्ध वचनीय)	प्राकृत
7. वीरस्तुति	संस्कृत–प्राकृत मय
8. सत्यपुरीय–महावीर–उत्साह	अपभ्रंश
9. नाममाला	संस्कृत

1. तिलकमंजरी[2]

यह संस्कृत साहित्य का प्रसिद्ध गद्यकाव्य है जिसमें हरिवाहन और तिलकमंजरी की प्रणय–कथा वर्णित है। इस एक ग्रन्थ की रचना से ही धनपाल ने संस्कृत कवियों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। संस्कृत में धनपाल की प्रसिद्धि इसी एक ग्रन्थ पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन में इसका विस्तार से विवेचन किया गया है।

2. पाइयलच्छीनाममाला[3]

यह प्राकृत भाषा का प्राचीनतम कोष है। इसका प्राकृत में उतना ही महत्व है, जितना संस्कृत मे अमरकोष का है। इस कोष की रचना धनपाल ने

---

1. कापड़िया, हीरालाल रसिकदास : ऋषभपंचाशिका अने वीरस्तुति, पृ. 16, सूरत, 1933
2. (क) काव्यमाला—85, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 1938,
   (ख) विजयलावण्यसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, बोटाद, भाग 1, 2, 3 वि. सं. 2008, 10, 14
3. (क) Buhler, G. Bezz. Beitr. IV p. 70-166, Gottingen 1879
   (ख) बी. बी. एण्ड कम्पनी, भावनगर, वि. सं. 1973
   (ग) केसरबाई जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण, वि. सं. 2003
   (घ) बेचरदास जीवराज दोषी (सं.) बम्बई, 1960

अपनी बहन सुन्दरी के लिए वि स 1029 मे धारा नगरी मे की थी, जैसाकि ग्रन्थ के अन्त मे ग्रन्थाकार ने स्वय सूचित किया है।[1]

इस कोष मे 944 शब्दो के पर्यायवाची दिए गये हैं, जिनमे से 334 शब्द अर्थात् लगभग एक तिहाई शब्द देशी हैं तथा शेप तत्सम एव तद्भव। 275 गाथाओ मे शब्दो के पर्याय दिये गये हैं तथा अन्तिम चार गाथाओ मे ग्रन्थकार ने ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य, स्थान तथा अपना नाम निर्देश किया है।

इसमे शब्दो के सकलन मे किसी प्रकार की क्रमबद्धता नही है और न ही शब्दो का विभाजन किया गया है। प्रारम्भ मे एक गाथा से सत्रह शब्दो के पर्यायवाची बताये गये हैं। बीसवी गाथा से शब्दो के पर्याय गाथार्ध द्वारा सूचित किये गये हैं।[2] इसके पश्चात् गाथा के एक-एक चरण से शब्दो के पर्यायवाची दिये गये हैं।[3] पाइयलच्छीनाममाला,[4] इस नाम के विपरीत इस कोष मे नाम के अतिरिक्त क्रियारूप, क्रिया-विशेषण तथा प्रत्यय भी दिये गये हैं।

इस कोष की रचना जैन महाराष्ट्री प्राकृत मे की गई है।[5] इसका अपर नाम धनपालीय कोष भी पाया जाता है।[6] धनपाल ने स्वय अपने कोष के अन्त मे इसे 'देशी' भी कहा है, अत सम्भव है उसके समय मे यह देशी कोष के रूप मे प्रसिद्ध रहा हो।[7]

इस कोष मे कुछ शब्द ऐसे भी आए हैं, जिनका प्रयोग आज भी लोक-भाषाओ मे होता है। उदाहरणार्थ अलस के लिए मट्ठ[8], पल्लव के लिए कुपल,[9] ये शब्द ब्रजभाषा, भोजपुरी तथा खडी बोली मे प्रयुक्त होता है।

---

1 विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि।
मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि॥
धारानयरीए परिट्ठिएण मग्गे ठिआए अणवज्जे।
कज्जे कणिट्ठबहिणीए 'सुन्दरी' नामधिज्जाए॥
—पाइयलच्छी, गाथा 276, 77

2. इत्तोहे गाहद्धेहिं वण्णिमो वत्थुपज्जाए —वही गाथा 19

3. इत्तो नामग्गाम गाहाचलणेसु चितेमि॥ —वही, गाथा 1

4 वुच्छ 'पाइयलच्छि' त्ति नाममाल निसामेह —वही, गाथा 1

5 कापडिया, हीरालाल रसिकदास प्राकृत भाषा अने साहित्य, पृ 58, 1940

6 कापडिया, हीरालाल रसिकदास जैन सस्कृत साहित्य नो इतिहास, भाग 1, पृ. 109

7. पाइयलच्छीनाममाला, गाथा 278

8. पाइयलच्छीनाममाला, गाथा, 15

9 वही, गाथा 54

इस नाममाला के अन्त में धनपाल ने श्लेषोक्ति के द्वारा अपने नाम का निर्देश किया है। 'अन्ध जण किवा कुसल' इन शब्दों के अन्तिम-अन्तिम वर्ण से युक्त नाम वाले कवि ने इस देशी की रचना की।[1]

हेमचन्द्र ने धनपाल की पाइयलच्छी को आधार बनाकर अपने देशीनाममाला कोष की रचना की थी।[2] इस कोष को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय जर्मन विद्वान् डॉ० व्हूलर को है। उन्होंने ई. स. 1879 में इसका सम्पादन किया था।[3]

3. ऋषभपंचाशिका[4]

प्रभावकचरित के अनुसार धनपाल ने ऋषभदेव का एक मन्दिर बनवाया था, जिसमें ऋषभदेव की मूर्ति की प्रतिष्ठा धनपाल के गुरु श्री महेन्द्रसूरि ने की थी। उसी मन्दिर में बैठकर धनपाल ने 'जय जन्तुकप्प' से आरम्भ होने वाली 50 गाथाओं की यह प्राकृत स्तुति रची।[5] प्रथम 20 गाथाओं में ऋषभदेव के जीवन की घटनाओं का उल्लेख है, किन्तु अन्तिम 30 पद्यों में अत्यन्त भाव-पूर्ण स्तुति की गई है। इसकी शैली यद्यपि कृत्रिम व अलंकारिक है, तथापि उसमें सुन्दर कल्पना का समावेश है। उपमा एवं रूपक का प्रयोग अतीव सुन्दर है। उदाहरणार्थ—जैन सिद्धान्त का

---

1. कइणो अंध जण किवा कुसलत्ति पयाणमंतिमा वण्णा।
   नामम्मि जस्स कमसो तेणेसा विरइया देसी॥
   —वही, गाथा 278
2. Pischel, R.: The Desi Namamala of Hemchandra, Bombay Sanskrit Series 17, 1938.
3. Buhler, G: Introduction to Paiyalacchi, Bezz. Beitr, 4, p. 70–166. Indian Antiquary, Vol. II, IV.
4. (क) काव्यमाला (सप्तम गुच्छक) 1890
   (ख) जर्मन प्राच्य विधि समिति पत्रिका, खण्ड 33
   (ग) देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला 83, 1933
5. धनपालस्ततः सप्तक्षेत्र्यां वित्तं व्ययेत् सुधीः।
   आदौ तेषां पुनश्चैत्यं संसारोत्तारकारणम्॥
   विमृश्येति प्रभोर्नामिसूनोः प्रासादमातनोत्।
   बिम्बस्यात्र प्रतिष्ठां च श्री महेन्द्रप्रभुर्दधौ॥
   सर्वज्ञपुरतस्तत्रोपविश्य स्तुतिमादधे।
   'जय जंतुकप्पे' त्यादि गाथा पंचशतामिमाम्॥
   —प्रभावकचरित, महेन्द्रसूरिचरित, पृ. 14

अनुसरण न करने वाले की क्या गति होती है इसके लिए कवि कहता है—"तुम्हारे सिद्धान्तरूपी सरोवर से भ्रष्ट, स्थान-स्थान मे कर्मबन्धनो मे बधा हुआ जीव, विभिन्न वृक्षों की आलवालो मे बधे सारणि के जल के समान भ्रमित होता है।"[1]

जिस प्रकार कूपारघट्ट के घडे जल से भरे होने पर ऊपर की ओर तथा जल छोडने पर नीचे की ओर जाते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे प्रवचन ग्रहण करने पर जीव ऊर्ध्वमुख होते हैं तथा विमुख होने पर नीचे की ओर जाते हैं।[2] ऋषभ-पचाशिका पर देवचन्द्र के शिष्य प्रभानन्द ने ललितोक्ति नामक वृत्ति, हेमचन्द्रगणि ने विवरण, धर्मशेखर ने सस्कृत-प्राकृत अवचूरि, नेमिचन्द्रगणि, चिरन्तनमुनि तथा पूर्वमुनि ने अवचूरित्रय रची हैं।[3]

हेमचन्द्र के समय (1088–1172) तक ऋषभपचाशिका अत्यन्त लोक-प्रिय हो गई थी। इसका प्रमाण जिनमडनगणिकृत कुमारपालप्रबन्ध मे मिलता है

"अथ प्रदक्षिणावसरे सरसापूर्वस्तुति करणार्थमभ्यर्थिता श्रीहेमसूरय सकलजनप्रसिद्धा 'जय जतुकप्प' इति धनपालपचाशिकां पेठु। राजादयः प्राहु--भगवन्। भवन्तः कलिकालसर्वज्ञा परकृतस्तुति कथ कथयन्ति ? गुरुरपि रुचे–राजन्! श्रीकुमारदेव! एवविधसद्भूत भक्तिगर्भा स्तुतिरस्माभि कर्तुन शक्यते।"[4]

हेमचन्द्रसूरि सदृश प्रसिद्ध कवि तथा विद्वान् भी धनपाल रचित ऋषभ-पचाशिका का ही पाठ करते थे। आज भी जैन धार्मिक जगत मे ऋषभपचाशिका का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जैन साधु इसका नियमित रूप से भक्तिपूर्वक पाठ करते हैं।

---

1. तुम समयसरब्भट्ठा, भमति सयलासु रुक्खजाईसु।
   सारणिजल व जीवा, ठाणट्ठाणेसु वज्झता॥
   —ऋषभपचाशिका, गाथा 29
2. भरिअव्व पवयणे तुह, गहिए उड अहो विमुक्कम्मि।
   वच्चति नाह! कूवरय रहट्टघडिसनिहा जीवा॥
   —वही, गाथा 30
3. कापडिया, हीरालाल रसिकदास ऋषभपंचाशिका अने वीरस्तुति रूप कृतिकलाप, सूरत, 1933
4. जिनमण्डनगणि–कुमारपाल प्रबन्ध, आत्मानन्द ग्रथमाला 34, भावनगर, पृ 101, वि स. 1971

उपदेशरत्नाकर के कर्ता मुनिसुन्दरसूरि (1319) ने अपने ग्रन्थ में ऋषभ-पंचाशिका की 41वीं गाथा का उद्धरण दिया है।[1] इसी प्रकार जिनेश्वर-सूरि कृत पंचलिंगीप्रकरण की टीका में जिनपतिसूरि ने ऋषभपंचाशिका की गाथाओं को उद्धरित किया है।[2]

ऋषभपंचाशिका के अंतिम पद्य में कवि ने अपना नाम निर्देश किया है।[3]

4. श्रावकविधिप्रकरण[4] (सावयविहि) वा श्रावकधर्मविधिप्रकरण

22 गाथाओं की इस प्राकृत रचना में श्रावक के धर्म का विवेचन किया गया है। इस पर संघप्रभसूरि के शिष्य धर्मचन्द्रगणि ने वृत्ति लिखी है।[5] इसको आधार बनाकर गुणाकरसूरि ने वि.सं. 1371 में श्रावकविधिरास की रचना की थी।[6]

5. शोभन स्तुति की संस्कृत टीका[7]

धनपाल के भ्राता शोभन मुनि ने 24 तीर्थंकरों की स्तुति में यमक अलंकारयुक्त 96 पद्यमय स्तोत्र की रचना की थी।[8] प्रभावकचरित के अनुसार शोभन की ज्वर से मृत्यु हो जाने पर धनपाल ने भ्रातृ-प्रेम के कारण इस स्तुति

---

1. मुनिसुन्दरसूरि, उपदेशरत्नाकर, द्वितीय अंश, तरंग 15
2. जिनेश्वरसूरि, पंचलिंगीप्रकरण, जिनपति की टीका, पृ० 67
3. इअ झाणग्गिपलीविअकम्भि घण। बालबुद्धिणा विमए।
भत्तया स्तुतो भवमयसमुद्दयानपात्र। बोधिफल॥
–ऋषभपंचाशिका, गाथा 50
4. मुक्तिकमल जैन मोहनमाला-17 में प्रकाशित, बड़ौदा वीर० स० 2447
5. Velankar, H. D., Jinaratnakosa Part I, B. O. R. I., p. 393, 1944
6. कापड़िया, हीरालाल रसिकदास–प्राकृत भाषा अने साहित्य, पृ० 207, 1940
7. (क) काव्यमाला (सप्तम गुच्छक), 1890 पृ० 132
(ख) आगमोदयसमिति–52, बम्बई 1926
8. इतश्च शोभनो विद्वान् सर्वग्रन्थमहोदधिः।
यमकान्वितर्तीर्थेशस्तुतीश्चक्रेऽतिभक्तितः॥
–प्रभावकचरित, महेन्द्रसूरिचरित, पद्य 315

की टीका रची थी ।[1] धनपाल ने स्वय अपनी टीका मे अपने भ्राता शोभन का परिचय देते हुए टीका-रचना के उद्देश्य का वर्णन किया है ।

कवि धनपाल ने, स्वर्ग जाते हुए अपने अनुज की इस उज्ज्वल कृति को अपनी बुद्धि के अनुसार वृत्ति रचकर उसे अलकृत किया ।[2]

6 वीरस्तुति (विरुद्धवचनीय) या वीरथुई[3]

प्रभावकचरित के अनुसार भोज से अपमानित होकर धनपाल धारानगरी से पश्चिम दिशा की ओर चला तथा सत्यपुर (वर्तमान मे साचोर जिला) नामक नगर पहुचा । वहा महावीर स्वामी के चैत्य को देखा तथा हर्षित होकर विरोधाभास अलकार से मडित "देव निम्मल" से प्रारम्भ होने वाली इस प्राकृत स्तुति की रचना की ।[4]

विरोधाभास अलकार धनपाल को इतना प्रिय था कि उन्होंने 30 पद्यो की यह पूर्ण स्तुति ही इस अलकार मे रच डाली । प्राकृत मे इस प्रकार की यह

1 तदीयदृष्टिसगेन तत्क्षण शोभनो ज्वरात् ।
आससाद पर लोक सधस्यामाग्यत कृती ॥319॥
तासा जिनस्तुतीना च सिद्धसारस्वत कवि
टीका चकार सोदर्यस्नेह चित्ते वहन् दृढम् ॥320॥
–प्रभावकचरित, पृ० 150

2 एता यथामति विमृश्य निजानुजस्य
तस्योज्जवल कृतिमलकृतवान् स्ववृत्त्या ।
अभ्यर्थितो विदधता त्रिदिवप्रयाण
तेनैव माम्प्रतकविर्धन पालनामा ॥
–स्तुतिचतुर्विशतिका टीका पद्य 7, पृ० 2

3 (क) जैन साहित्य सशोधक, अक 3, खड 3
(ख) देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार–83, 1933

4 अथापमानपूर्णोऽयमुच्चाल तत पुर ।
मानाद्विनाकृता सन्त सन्तिष्ठन्ते न कर्हिचित् ॥
पश्चिमा दिशमाश्रित्य परिस्पन्द विनाचलन् ।
प्राप सत्यपुरं नाम पुर पौरजमोत्तरम् ॥
तत्र श्रीमन्महावीरचैत्ये नित्ये पदे इव ।
दृष्टे स परमानन्दमाससाद विदावर ॥
नमस्कृत्य स्तुति तत्र विरोधाभासमलकृताम् ।
चकार प्राकृता "देव निम्मले" त्यादि साहित च ॥
–प्रभावकचरित, महेन्द्रसूरिचरित, पृ० 146

एक मात्र स्तुति है । इसका प्रारम्भ धनपाल ने इस प्रकार किया है -निर्मल नखों से युक्त होते हुए भी नखरहित ऐसे तीर्थकरों के चरण-कमलों को प्रणाम करके अविरुद्धवचन वाले होते हुए भी विरुद्ध वचन वाले वीर प्रभु की स्तुति करता हूं ।

विरोध का परिहार--तीर्थंकरों के निर्मल नखों से युक्त, पवित्र चरण कमलों को प्रणाम करके अविरुद्ध वचन वाले वीर प्रभु की विरोधालंकार युक्त वचन द्वारा स्तुति करता हूं ।[1]

इस स्तुति के अंतिम पद्य में भी धनपाल ने अपने नाम का निर्देश किया है ।[2] बृहट्टिप्पनिका नामकी प्राचीन जैन ग्रन्थ सूची में इसका नाम "वीरस्तव" दिया गया है तथा इस पर सूराचार्य द्वारा रचित वृत्ति की सूचना दी गई है ।

7. सत्यपुरीय-महावीर-उत्साह[3] (सच्चउरमंडण-महावीरोच्छाह)

सत्यपुर के महावीर की स्तुति में धनपाल ने वीरस्तुति के अतिरिक्त एक और स्तोत्र की रचना की थी । सच्चउरमंडण-महावीरोच्छाह नामक यह स्तोत्र अपभ्रंश भाषा में लिखा गया है । 15 पद्यों की यह लघुकलेवरा स्तुति ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसमें धनपाल ने तुर्क मुहम्मद गजनवी द्वारा किये गये अणहिलपुर, सोरठ, सोमनाथ, चन्द्रावती, श्रीमाल देश के तीर्थ तथा देलवाड़ा मंदिरों के भंग का उल्लेख किया है[4] इससे धनपाल के समय का स्पष्ट निर्देश मिलता है ।

इस रचना में धनपाल ने दो पद्यों में "एवकजीह धणपालु भणइ (एकजिह्वः धनपालो भणति) तथा "तइ तुट्ठइ धनपालु (त्वयि तुष्टे धनपालः)"[5] इस प्रकार अपना नाम स्पष्ट रूप से दिया है ।

---

1. वीरस्तुति, पद्य 1
2. इस सयलसिरि निबंधण । पालय । पच्चल । तिलोअलोअस्स ।
   भव मज्ज सया मज्झत्थ । गोअरे संथुडगिराणं ।। —वही, पद्य 30
3. (क) दोशी, बेचरदास, जैन साहित्य संशोधक, अंक 3, खंड 3, पृ० 241,
   (ख) पारेख, प्रभुदास बेचरदास, तिलकमंजरीकथासारांश, श्री हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली पाटण, 1919
4. वही, पृ० 39
   मंजेविणु सिरिमालदेसु अनुअणहिलवाडउं
   चड्डावलि सोरट्ठ भग्गु पुणु देउलवाडउं
   सोमेसरू सोतिहि भग्गु जणमण आणंदणुं
   भग्गु न सिरि सच्चउरिवीरू सिद्धत्यह नंदणुं
   —सच्चउरमंडण—महावीरोच्छाह, पद्य 3
5. सच्चउरमंडण-महावीरोच्छाह, पद्य 14, 15

इस कृति की विक्रम सवत् 1350 अर्थात् ई० स० 1293 मे लिखी गयी एक हस्तलिखित प्रति पाटण के जैन भडार मे सुरक्षित रखी है।[1]

8. सस्कृत नाममाला

यह नाममाला वर्तमान मे उपलब्ध नही है, किन्तु इसका उल्लेख प्राप्त होता है। सस्कृत भाषा के व्याकरण, कोष, छद, काव्य, अलकारादि विषयक ग्रन्थो की एक प्राचीन हस्तलिखित सूची मे कोष ग्रन्थ न० 64 मे "धनपालपडित-नाममाला" दिया गया है।[2] यह नाममाला पाइयलच्छी से भिन्न प्रतीत होती है क्योकि इसकी श्लोक सख्या 1800 है। अत यह पाइयलच्छी से परिमाण मे बहुत अधिक है। यह सूची केवल सस्कृत ग्रन्थो की है अत यह नाममाला सस्कृत मे लिखी गई होगी, यही सभावना है। धनपाल द्वारा किसी सस्कृत कोष के निर्माण की सम्भावना हेमचन्द्र के उल्लेख से भी होती है, जिसने अपने अभिधान-चितामणि नामक सस्कृत कोश की स्वोपज्ञ टीका के प्रारम्भ मे "व्युत्पत्तिर्धन-पालत" कहकर शब्दो की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे धनपाल के कोश को प्रमाणभूत माना है।[3] इस कोश के लुप्त हो जाने से सस्कृत भाषा की अपूरणीय क्षति हुई है।

इस प्रकार इस अध्याय मे अन्त तथा बाह्य दोनो प्रकार के प्रमाणो से उपलब्ध सामग्री के आधार पर धनपाल के जीवन, समय तथा रचनाओ का विवेचन किया गया। अन्त मे यह कहा जा सकता है कि धनपाल के विषय मे प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होने के कारण, उनके समय का निर्धारण करने मे, उनके जीवन की घटनाओ तथा उनकी रचनाओ के विषय मे विद्वानो मे अधिक मतभेद नही है।

1. (क) प्रभुदास, बेचरदास पारेख, तिलकमजरीकथासाराश, पाटण, 1919,
   (ख) दोशी, बेचरदास, पाइयलच्छीनाममाला, पृ० 31, 1960
2. मुनि जिन विजय, पुरातत्व, अक 2, खड 4, अहमदाबाद, 1924
3. हेमचन्द, अभिधानचिन्तामणि–टीका, अध्याय 1, पृ० 1

द्वितीय अध्याय

तिलकमंजरी की कथावस्तु का विवेचनात्मक अध्ययन

तिलकमंजरी कथा का सारांश

उत्तरकौशल राज्य में सरयू नदी से परिगत अयोध्या नामक नगरी में राजा मेघवाहन राज्य करता था। उसने अपने राज्य में वर्ण, आश्रम और धर्म को यथाविधि स्थापित कर दिया था, अतएव वह यथार्थ प्रजापति था। उसने बाह्य और आन्तरिक दोनों शत्रुओं को जीत लिया था। उसका राजकार्य विश्वस्त मन्त्रियों के अधीन था, तथापि वह अपने शासन की त्रुटियों को जानने के उद्देश्य से, रात्रि में वेश बदलकर अपनी नगरी का निरीक्षण करता था। रूप तथा गुण दोनों में अद्वितीय मदिरावती नाम की उसकी प्रधान महिषी थी। यौवनोचित विविध भोग-विलासों का उपभोग करते हुए उसके कई वर्ष व्यतीत हो गये किन्तु उसे सन्तति-सुख की प्राप्ति नहीं हुई। अतः वह सन्तानाभाव की चिन्ता से अत्यन्त पीड़ित रहने लगा।

एक दिन उसने अन्तरिक्ष में विचरण करते हुए एक अत्यन्त तेजस्वी तथा दिव्य प्रभा-मण्डल से युक्त विद्याधर मुनि को देखा। राजा ने उसका विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया तथा अपने सिंहासन पर बैठाया। मुनि के पूछने पर राजा ने अपने दुःख का कारण निवेदन किया तथा वन में जाकर तप करने का अपना निश्चय प्रकट किया।

यह सुनकर मुनि ने अपने योग-बल से राजा के भविष्य को जान लिया और उसे कहा—"हे राजन्! अब तुम्हारा सन्तति प्रतिबन्धक अदृष्ट भुक्तप्राय है; अतः तुम वनवास का विचार त्याग दो। घर में ही रहकर, तुम मुनि-व्रत धारण कर, अपनी कुलदेवी राज्यलक्ष्मी की अहर्निश आराधना करो, वही प्रसन्न होकर तुम्हें अवश्य वर प्रदान करेगी।" इसके लिए मुनि ने उसे अपराजिता नामक जप विद्या प्रदान की तथा मदिरावती को भी उसके व्रत-पर्यन्त दूर से ही भर्तृजनोचित सेवा करने की अनुमति प्रदान की।

मुनि के पुन अन्तरिक्ष में चले जाने पर, राजा अपने हर्म्यशिखर से उतरा और अपने गुरुजनो, बान्धवो और बुद्धि-सचिवो से इस विषय मे परामर्श किया । तत्पश्चात् उनकी अनुमति प्राप्त कर, उसने प्रमदवन के मध्य क्रीडापर्वत के समीप देवता गृह का निर्माण करवाया और शुभदिन मे भगवती श्री की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की तथा मुनि उपदिष्ट विधि से प्रतिदिन उसकी अर्चना करने लगा ।

एक दिन देवी की सायंकालिक पूजा से निवृत्त होकर राजा नगर के बाह्योद्यान स्थित शक्रावतार नामक सिद्धायतन मे गया, जहा प्रवेश करते ही उसने एक दिव्य पुरुषक के दर्शन किए । उस वैमानिक की दिव्यायु समाप्त प्राय थी । उसने राजा से कहा– "मैं सौधर्म नामक देवलोक का वासी ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक हू । भगवान् ऋषभदेव के दर्शन के लिये यहा आया हू । मुझे नन्दीश्वर द्वीप की रतिविशाला नगरी में अपने मित्र सुमाली से मिलने जाना है ।' इस प्रकार अपना परिचय देने के पश्चात् उसने राजा को एक अनुपम दिव्य हार भेंट मे दिया । वह हार ज्वलनप्रभ की पत्नी प्रियङ्गु सुन्दरी का था ।

ज्वलनप्रभ के चले जाने पर राजा ने उस हार को देवी श्री के चरणो मे अर्पित कर दिया । उसी समय देवी की मूर्ति के निकट भीषण अट्टहास करते हुए एक वेताल प्रकट हुआ, जिसने अत्यन्त भीषण व बीभत्स रूप धारण किया हुआ था । वेताल ने कहा—ससार मे प्राय ऐसा व्यवहार देखा जाता है कि फलाभिलाषी सेवक पहले देवता के सेवको की सेवा करके, उनके प्रसाद को प्राप्त करता है और उनके द्वारा स्वामी के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करता है । किन्तु आपकी सेवाविधि तो सर्वथा विपरीत है । आप वस्त्र, माल्य, अलकारादि से इस देवी की तो निरन्तर अर्चना करते है, किन्तु मेरे जैसे सदा इसके साथ रहने वाले सेवकाग्रजन को आहार-दान के लिये भी निमन्त्रित नहीं करते । मुझ से मित्रता करने पर ही आपकी अभीष्ट सिद्धि हो सकती है । मैं तो निशाचर हू, अत फल-मूल से मुझे कोई प्रयोजन नही है । तुमने अनेक युद्ध किये हैं, और उनमे अनेक राजाओं का वध भी किया है, अत मुझे ऐसे एक राजा का कपाल-कर्पर प्रदान करो, जो कभी युद्ध मे न हारा हो, जिसने प्राण-सशय उत्पन्न होने पर भी शत्रु को प्रणाम न किया हो तथा जिसने किसी याचक को निराश न किया हो । उसके कपाल-कर्पर के रक्त से मैं अपने पिता का तर्पण करूगा ।"

यह सुनकर राजा ने स्वय अपना सिर काटकर भेंट देने के लिये कृपाण को स्कन्ध पर रखा, किन्तु उसकी बाहु स्तम्भित हो गई । उसी समय अलौकिक देह-प्रभा से दशो दिशाओ को आलोकित करती हुई भगवती श्री प्रकट हुई । उसकी भक्ति-प्रवणता तथा साहस से प्रसन्न होकर श्री ने कहा–हे राजन् ! मैं

तुम्हारा क्या प्रिय करूं ? अपना अभीष्ट वर मांगो। वेताल के विषय में चिन्ता मत करो, क्योंकि वस्तुतः मेरे प्रतीहारों में अग्रगण्य महोदर नामक यक्ष ने ही तुम्हारे सत्व की परीक्षा करने के लिये अपना मायाजाल दिखाया था।

राजा ने अत्यन्त चतुरतापूर्वक मदिरावती के लिये पुत्र की याचना की। उसने कहा—"हे देवि ! वैसा ही करो, जिससे मैं अपने पूर्वजों में अंतिम न रहूं तथा मदिरावती भी अद्वितीय वीर-पुत्रों को जन्म देने वाली हमारे पूर्वजों की महारानियों की महिमा का अनुसरण करे। लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर न केवल वर ही प्रदान किया अपितु उसके संकटकाल में रक्षार्थ चन्द्रातप हार और बालातप नामक अंगुलीयक भी उपहार में दी।

अगले दिन राजा ने अपनी सभा में समस्त वृतान्त अपने सभासदों से कहा और प्रधान कोषाध्यक्ष महोदधि को बुलाकर उस दिव्य-हार को राज्य-कोश में रखने के लिये सौंप दिया। अंगुलीयक प्रधान सेनापति वज्रायुध के पास, रात्रि-युद्ध में पहनने के लिये, उपसेनापति विजयवेग के साथ भिजवा दी। तत्पश्चात् राजा ने मुनिव्रत का त्याग कर दिया और राजकुल में प्रवेश किया, जहां उसके सन्तान-प्राप्ति हेतु विविध अनुष्ठान किये जा रहे थे। वार-वनिताओं ने मंगलगान से उसका स्वागत किया। तब ब्राह्मण-सभा में जाकर, वह हस्तिनी पर आरूढ़ होकर राजकुल से बाहर आया और शक्रावतार मंदिर में जाकर पूजा की। मध्याह्न समय तक अपनी नगरी में घूम-घूम कर प्रजाजनों से मिला। पुनः राजभवन में आकर आहार-मंडप में भोजन किया और सूर्यास्त तक दन्तवलभिका में संगीत का आनन्द लेते हुए विश्राम किया। तदनन्तर राजकीयजनों से भेंट करके आस्थान-मंडप में कुछ देर ठहर कर अन्तःपुर में मदिरावती के पास गया। व्रत-धारण करने से कृश मदिरावती के राजा ने स्वयं अपने हाथ से शृंगार किया।

रात्रि के अंतिम प्रहर में राजा ने स्वप्न में देखा कि कैलास शिखर पर शुभ्रवस्त्र से सज्जित मदिरावती के स्तनों से ऐरावत दुग्ध-पान कर रहा है, मानो गणेश अपनी सूंड से पार्वती का स्तन-पान कर रहा हो। स्वप्न-दर्शन के अनन्तर कुछ दिनों में ही रानी मदिरावती ने गर्भ धारण किया तथा उचित समय पर अत्यन्त शुभ मुहूर्त में एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। यह समाचार पाते ही अन्तःपुर सहित नगर की सभी स्त्रियां आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगीं। राजा नवजात शिशु को देखने प्रसूति-गृह में गया और उस बालक में चक्रवर्ती के समस्त लक्षणों को देखकर अनिर्वचनीय सुख प्राप्त किया। दसवें दिन उसका नामकरण संस्कार कर "हरिवाहन" नाम रख दिया।

पाच वर्ष तक हरिवाहन अन्त पुर मे अपनी बालकोचित क्रीडाओ द्वारा सभी को आनन्दित करता रहा। छठे वर्ष मे राजा ने राजगृह मे ही एक विद्यागृह का निर्माण करवाया तथा अखिल शास्त्र मर्मज्ञ, श्रेष्ठ एव अनुभवी विद्यागुरुओ का सग्रह किया। तब शुभ दिन उसका उपनयन सस्कार कर उसे गुरुजनो को सौंप दिया।

कुमार हरिवाहन भी दस वर्ष की अवस्था मे ही अपनी विलक्षण तीक्ष्ण बुद्धि के कारण सभी उपविद्याओ सहित चौदह विद्याओ मे पारगत हो गया। उसने सभी कलाओं मे विशेषकर चित्रकला और वीणावादन मे विशेष कुशलता प्राप्त की। अपने सिंह-शावक सदृश व अद्भुत पराक्रम से उसने सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। सोलह वर्ष की आयु प्राप्त हो जाने पर, सभी शास्त्रो मे पारगत, शस्त्र-विद्या मे प्रवीण तथा नवयौवन से उपचित अग शोभा वाले हरिवाहन को राजा ने अपने भवन मे बुलवाया और नगर के बाह्य भाग मे उसके लिये गज-तुरग शालाओ से युक्त अत्यन्त रमणीय कुमार भवन का निर्माण करवाया।

तत्पश्चात् राजा मेघवाहन ने युवराज के अभिषेक की आकाक्षा से उसके राजकार्य मे सहायक, प्रज्ञा, पराक्रम एव गुणो मे समान राजकुमार की खोज मे अपने गुप्तचरो को चारो ओर भेजा।

एक दिन जब मेघवाहन आस्थान-मडप मे बैठा था, उसी समय प्रतीहारी ने आकर निवेदन किया—'हे राजन्! दक्षिणापथ से आया हुआ प्रधान सेनापति वज्रायुध का प्रियपात्र विजयवेग आपके दर्शनों को उत्सुक है।' राजा ने अगुलीयक-प्रेषण वृत्तान्त का स्मरण करते हुए उसे तुरन्त बुलाया और पूछा कि उस अगूठी ने युद्ध मे कुछ उपकार किया या नही।

विजयवेग ने युद्ध का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा—"जो किसी अन्य ने न किया वह इस अगूठी ने कर दिखाया। शरद् ऋतु के आगमन पर सेनापति वज्रायुध सदलबल कुण्डिनपुर से काची नरेश कुसुमशेखर के दर्प-दमन के लिये चले तथा क्रम से काची देश पहुचे। कुसुमशेखर ने भी युद्ध के लिये काची नगरी मे सभी तैयारिया प्रारम्भ कर दी। वज्रायुध ने काची के प्रान्त भाग मे शिविर की स्थापना की तथा दुर्ग-भग के लिये अपने सामन्तो को भेजा, जिसका कुसुमशेखर की सेनाओ के साथ दुर्ग-द्वार पर बहुत दिन तक युद्ध होता रहा।

एक दिन वसन्त ऋतु के आगमन पर रात्रि के अतिम प्रहर मे सेनापति कामदेवोत्सव मना रहे थे, उसी समय तीव्र कोलाहल सुनाई पडा। शत्रु के आक्रमण की आशका से उन्होने ढाल और कृपाण लेकर राजकुल से प्रयाण किया तभी

काचरात और काण्डरात नामक अश्वारोहियों ने समाचार दिया कि शत्रु की सेना कांची से शिविर की ओर आ रही है। सेनापति ने हर्षित होकर तुरन्त युद्ध-दुन्दुभि बजाने का आदेश दिया और सेना सहित रथारूढ़ होकर शिविर से निकल पड़ा। तदनन्तर व्यूह-रचना करके युद्ध हेतु सज्जित हो गया। तब दोनों सेनाएं आपस में गुत्थम-गुत्था हो गई। जब युद्ध-भूमि दोनों पक्षों के मृत वीरों से पट गई, तब प्रतिपक्ष की सेना से निकलकर एक अत्यन्त वीर योद्धा वज्रायुध के सामने आया और उसने वज्रायुध को धनुर्युद्ध के लिये ललकारा। तब उन दोनों में भीषण युद्ध छिड़ गया। वज्रायुध को पराजित होते देखकर विजयवेग को राजा द्वारा प्रेषित अंगूठी का स्मरण हो आया तथा उसने वह अंगूठी तुरन्त वज्रायुध की अंगुली में डाल दी। उसके पहनते ही, उसके प्रभाव से समस्त शत्रु-सेना, नवीन सूर्य की किरणों के स्पर्श से कुमुद-कानन के समान उन्निद्रित सी हो गई। योद्धाओं के हाथ से तलवारें गिर कर छूट गई धनुर्धरों के वाण आधे मार्ग में ही गिर गये। रथारूढ़ों को जम्भाइयां आने लगी, अश्वारोही दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे। इस प्रकार प्रतिपक्ष की सेना के शिथिल हो जाने पर, हमारे सैनिकों में "मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो" का कोलाहल मच गया किन्तु उस राजकुमार के पराक्रम से अभिभूत वज्रायुध ने उन्हें रोका तथा उसकी चामरग्राहिणी से उसके विषय में पूछा। उसने बताया कि यह सिंहलेश्वर चन्द्रकेतु का पुत्र समरकेतु है, जो अपने पिता की आज्ञा से राजा कुसुमशेखर की सहायता के लिए कांची आया है। आज प्रातः किसी अज्ञात कारण से शृंगार वेश धारण कर कामदेव मंदिर में गया था और नगर की स्त्रियों को देखते हुए पूरा दिन वहीं व्यतीत किया। कामदेव यात्रा की समाप्ति पर वहीं कमलपत्र की शय्या रचकर सो गया। अर्धरात्रि में अकस्मात् शिविर में आकर सेना को सज्जित किया और कांची से निकल पड़ा और यहां इस दशा को प्राप्त हुआ। इतने में ही प्रातःकाल हो गया। वज्रायुध ने प्रतिपक्ष की सेना के आश्वासनार्थ अभयप्रदान पटह बजवा दिया और समरकेतु को प्रेमपूर्वक अपने निवास स्थान में ले गया जहाँ सेवक के समान उसके व्रणों का उपचार किया तथा अंगुलीयक प्राप्ति का समस्त वृत्तान्त सुनाया। समरकेतु भी वज्रायुध के सौजन्य से अत्यधिक प्रभावित हुआ और आपसे मिलने की इच्छा प्रकट की, तब वज्रायुद्ध ने उसे मेरे साथ आपके पास भेज दिया।"

उपसेनापति विजयवेग वर्णित इस वृत्तान्त से सभी राजगण अत्यन्त विस्मित हो गये। मेघवाहन ने भी अपने महाप्रतीहार हरदास को तुरन्त भेजकर समरकेतु को वहीं बुला लिया। राजा ने सरल-स्निग्ध दृष्टिपात करते हुए उसे अपने उत्संग में बैठा लिया और पार्श्वस्थित हरिवाहन से कहा कि अद्यपर्यन्त

समरकेतु तुम्हारा परमविश्वसनीय सहचर बना दिया गया है। अत तुम इसे सदा साथ रखना। राजकुमार हरिवाहन भी प्रेमपूर्वक समरकेतु का हाथ पकडकर उसे अन्त पुर मे मदिरावती के पास ले गया।

अपराह्न मे राजा की आज्ञा से सुदृष्टि नामक अक्षपटलिक आया और उसने हरिवाहन को कश्मीरादि मण्डल सहित उत्तरापथ की भूमि तथा समरकेतु को अगादि जनपद कुमार-भुक्ति के रूप मे प्रदान किए।

एक दिन हरिवाहन समरकेतु तथा अन्य विश्वस्त मित्रो के साथ मत्तकोकिल नामक बाह्योद्यान मे भ्रमण हेतु गया। वहा वे सरयू तट पर निर्मित कामदेव मदिर के समीप स्थित जल-मण्डप मे एक पुष्प-शय्या पर बैठ गये। वहा सभी कलाओ मे निपुण राजपुत्र उसकी सेवा मे उपस्थित हुए। तब उनमे चित्रालकार बहुल काव्य-गोष्ठी प्रारम्भ हुई। उसी समय मजीर नामक बदीपुत्र ताडपत्र पर लिखे एक प्रेमपत्र को लेकर आया। हरिवाहन ने उसका यह अर्थ किया कि यह पत्र किसी धनिक पुत्री द्वारा अपने प्रेमी को गुप्त-विवाह के लिये स्थान का निर्देश भी करता है तथा साथ ही पत्रहारिका दूती को वक्रोक्ति द्वारा वचित भी करता है। इस प्रसग से समरकेतु को अपने पूर्व-प्रेम का स्मरण हो आया जिससे वह व्याकुल हो उठा। उसके मित्र कलिंग देश के राजकुमार कमलगुप्त के पूछने पर उसने अपना पूर्व-वृत्तान्त सुनाया।

समरकेतु का वृत्तान्त

सिंहलद्वीप की राजधानी रगशाला नामक नगरी मे मेरे पिता चन्द्रकेतु राज्य करते हैं। एक बार उन्होंने सुवेल पर्वत के दुष्ट सामन्तो के दमन हेतु, मुझे नौसेना का नायक बनाकर दक्षिणापथ की ओर भेजा। मैं सेना सहित नगर सीमा पार करके समुद्र तट पर आया, जहा मैंने एक पन्द्रह वर्षीय नाविक युवक को देखा। मेरे पूछने पर नौसेनाध्यक्ष ने इसका पूर्ववृत्तान्त सुनाया कि किस प्रकार मणिपुर मे रहने वाले सायत्रिकवणिक् वैश्रवण का यह पुत्र तारक यहा आकर नाविकों के अधिनायक जलकेतु की पुत्री प्रियदर्शना के प्रेमपाश मे बधकर, उससे विवाह करके यही बस गया और समस्त नाविको का प्रमुख हो गया।

उसी समय तारक ने आकर सूचित किया कि नाव सज्जित हो गई है। हम सभी नावो मे सवार होकर चल पडे। समुद्र की बहुत लम्बी यात्रा करके उस प्रदेश मे पहुचे तथा लोगो के दुष्ट व्रणो के समान उन दुष्ट सामन्तो का यथायोग्य उपचार कर उन्हे पुन प्रकृतिस्थ किया। तदनन्तर अनेक द्वीपो का भ्रमण करते हुए कुछ दिन सुवेल पर्वत पर बिताए। एक दिन भ्रमण करते हुए ही हम अतिरमणीय रत्नकूट पर्वत पर पहुचे जहा हमे दिव्य मगल ध्वनि सुनाई

दी। उस ध्वनि का अनुसरण करते हुए हम अपने साथियों से बहुत दूर निकल गये और एक द्वीप पर पहुंचे किन्तु हमारे पहुंचते ही वह ध्वनि बंद हो गई। तब अत्यन्त निराश होकर वह रात्रि वहीं नाव पर ही व्यतीत की। प्रात:काल सहसा एक प्रकाशपुंज में से प्रकट होते हुए विद्याधर-समूह को देखा, तभी कुछ दूरी पर एक दिव्य–देवायतन दिखाई दिया। हम उसमें प्रवेश द्वार खोज ही रहे थे कि हमें मधुर नूपुरों की झंकार सुनाई पड़ी और हमने देवायतन की प्राकार-भित्ति पर अनेक कन्याओं के मध्य षोडपवर्षीय एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखा।"

यहीं प्रतीहारी के प्रवेश करने पर समरकेतु का वृत्तान्त बीच में ही अवरुद्ध हो जाता है। प्रतीहारी हरिवाहन को सूचित करती है कि गन्धर्वक नामक पन्द्रहवर्षीय युवक एक चित्र लेकर उपस्थित हुआ है। हरिवाहन उसे तुरन्त प्रवेश कराने की आज्ञा देता है। गन्धर्वक हरिवाहन को चित्र दिखाकर उसकी समीक्षा करने के लिये कहता है। हरिवाहन के यह कहने पर कि इस चित्र में एक मात्र दोष यही है कि इसमें एक भी पुरुष पात्र चित्रित नहीं है, गन्धर्वक चित्र का परिचय इस प्रकार देता है–"यह चित्र वैताढ्य पर्वत पर स्थित रथनूपुरचक्रवाल नगर के विद्याधर नरेश चक्रसेन की पुत्री तिलकमंजरी का है, जो किसी अज्ञात कारण से पुरुष सान्निध्य की अभिलाषा नहीं करती। उसकी ऐसी चित्तवृत्ति जानकर उसकी माता पत्रलेखा ने मेरी जननी चित्रलेखा को पृथ्वी के समस्त राजकुमारों के चित्र बनाने का आदेश दिया कि कदाचित् कोई राजकुमारी की दृष्टि में आ जाय। अत: मेरी माता चित्रलेखा ने चित्रकला में दक्ष अपनी दूतियों को चारों दिशाओं में भेजा। मुझे महारानी पत्रलेखा ने राज्यकार्य से अपने पिता विद्याधर नरेन्द्र विचित्रवीर्य के पास भेजा है और मेरी माता ने कांची में महारानी गन्धर्वदत्ता से मिलने के लिये कहा है, अत: मार्ग में कोई बाधा उपस्थित न होने पर, मैं शीघ्र ही लौटकर आऊंगा और एकाग्रमन से आपका चित्र अवश्य बनाऊंगा, जो भर्तृदारिका तिलकमंजरी के हृदय में प्रेम उत्पन्न करेगा।"

यह कहकर जब गन्धर्वक जाने लगा तो समरकेतु ने उसे कांची में कुसुमशेखर की पुत्री मलयसुन्दरी को देने के लिये एक लेख लिखकर दिया।

तिलकमंजरी के चित्र-दर्शन से ही हरिवाहन के हृदय में स्मर–विकार उत्पन्न हो गया और वह गन्धर्वक के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए निरन्तर उस चित्र को देखने में समय-व्यतीत करने लगा। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने पर उसकी व्याकुलता दुःसह हो उठी। वर्षाकाल व्यतीत हो जाने पर भी जब गन्धर्वक लौट कर नहीं आया, तो निराश होकर उसने मनोरंजन हेतु अपने राज्य का भ्रमण करने का निश्चय किया तथा पिता की आज्ञा प्राप्त कर समरकेतु तथा कतिपय

अन्य सुहृदजनो के साथ साकेतनगर से निकल पडा। कुछ दिन बाद वे सभी कामरूप देश मे पहुचे।

एक दिन जब वे लौहित्य नदी के तट पर गीत-गोष्ठी कर रहे थे, वहा पुष्कर नामक हस्ती-पालक आया और मदगन्ध से विक्षिप्त हुए वैरियमदण्ड नामक प्रधान हाथी को वश मे करने के लिये कहा। हरिवाहन ने अपनी वीणा बजाकर उसे सम्मोहित कर लिया और जैसे ही वह उस पर चढा, अचानक वह हाथी उसे लेकर आकाश मे उड गया। समरकेतु और अन्य राजपुत्रो ने तुरन्त उसका अनुसरण किया किन्तु उसका कोई पता नही चला। इस प्रकार उसके अपहरण से निराश हुए समरकेतु को दूसरे दिन दूतो ने हाथी के दिखाई देने का समाचार दिया, किन्तु हरिवाहन का कोई सूत्र नहीं मिला। अत दुखी होकर समरकेतु ने आत्महत्या का निश्चय किया, तभी कमलगुप्त का एक सदेशवाहक हरिवाहन का पत्र लेकर आया और उसने यह भी बताया कि किस प्रकार कमलगुप्त को अचानक यह पत्र मिला और उसका प्रतिलेख एक शुक के द्वारा ले जाया गया।

इस समाचार से किंचित आश्वस्त होकर, अगले दिन समरकेतु हरिवाहन की खोज मे उत्तर दिशा की ओर चला, जहा मार्ग मे उसकी भेंट कामरूप नरेश के अनुज मित्रधर से हुई। अनेक पर्वतो, अटवियो, नगरो, ग्रामो आदि को पार करते हुए निरन्तर यात्रा करते करते उसके छ मास व्यतीत हो गये। तब एक अत्यन्त दीर्घ एव दुष्कर यात्रा के पश्चात् वह एक शृग पर्वत पर पहुचा वहा उसने अदृष्टपार नामक अद्भुत सरोवर देखा। उसने उसमे स्नान किया और समीपस्थ माधवीलतामदिर के एक मणिशिलापट्ट पर सो गया। स्वप्न मे उसने एक पारिजात वृक्ष देखा तो उसे मित्र-समागम का निश्चय हो गया। तभी उसे अश्ववृन्द की हेषाध्वनि सुनाई पडी। उस ध्वनि का अनुसरण करते हुए वह एक अत्यन्त रमणीय उपवन मे पहुचा। उसकी अलौकिक शोभा से वह अत्यन्त विस्मित हुआ। उसी उपवन के भीतर उसने एक कल्पतरुवन देखा जिसके मध्य सुदर्शन नामक दिव्यायतन उद्भासित हो रहा था। उसमे प्रवेश करके उसने जिनकी चिन्तामणिमय प्रतिमा के दर्शन किये और उनकी स्तुति की।

तदनन्तर उसने मत्तवारण मे स्फटिकशिलापट्ट पर टकित एक प्रशस्ति देखी। वह उस आयतन के अद्भुत शिल्पसौन्दर्य के विषय मे सोच ही रहा था, तभी उसके कानों मे "हरिवाहन" शब्द युक्त श्लोक के पाठ की अस्पष्ट ध्वनि पडी, जिसका अनुसरण करते हुए वह एक मठ मे पहुचा। वहा उसने गन्धर्वक को देखा, जो हरिवाहन की प्रशसा मे एक द्विपदी गा रहा था। तब समरकेतु गन्धर्वक के साथ हरिवाहन को देखने गया, जो उसी समय वैताढ्यपर्वत के

चण्डगह्वर शिखर पर विद्याधरों द्वारा राज्याभिषेक किये जाने के बाद उस दिव्य कानन में आया था। वन में कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक अश्व-वृन्द देखा तथा दिव्य मंगल-गीत की ध्वनि सुनी। तब उन्होंने एक अत्यन्त रम्य रम्भागृह में कुरुविन्दमणिशिला पर एक अतीव लावण्यवती राजकन्या के साथ बैठे हुए हरिवाहन को देखा।

दोनों मित्रों ने मिलकर परमानन्द प्राप्त किया। तभी उनके नगर प्रवेश का समय हो गया। वैताढ्य पर्वत की विशाल अटवी को पार करते हुए उन्होंने बड़े उत्सव के साथ नगर में प्रवेश किया और पौरजनों द्वारा अभिनन्दित होते हुए वे राजमहल में गये। वहां उन्होंने विद्याधर कुमारों के साथ भोजन किया। दूसरे दिन वे सभी वैताढ्य पर्वत पर पहुंचे और समरकेतु के पूछने पर हरिवाहन ने गज-अपहरण से लेकर यहां पहुंचने तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा। यहीं सारा कथा-सूत्र हरिवाहन के हाथ में आ जाता है और आगे की कथा सब उसी के द्वारा वर्णित है।

हरिवाहन ने कहा—वह मदान्ध हाथी मुझे अन्तरिक्ष में बहुत दूर तक उड़ा कर ले गया और एक शृंग पर्वत पर पहुंचने पर उसे वश न करने के प्रयत्न में मैं स्वयं उसके सहित अदृष्टपार नामक सरोवर में गिर पड़ा। सरोवर से बाहर आकर मैंने बालू में कई पद-चिन्ह देखे, जिनमें एक युगल अत्यन्त सुन्दर था। उसका अनुसरण करते हुए मैं एक लतागृह में पहुंचा, जहां रक्ताशोक के नीचे एक अद्वितीय सुन्दरी कन्या खड़ी थी। मैंने उसे अपना परिचय दिया तथा उसके विषय में पूछा किन्तु वह बिना कोई उत्तर दिये ही वहां से चली गई। उसकी उपेक्षा से निराश होकर "यह चित्र में देखी हुई तिलकमंजरी ही है," इस चिंता में वहीं सो गया।

प्रातः काल विचरण करते हुए मैंने एक पद्मरागशिलामय प्रासाद देखा, जहां मत्तवारण पर एक तापस कन्या बैठी थी। उसने जिन की पूजा करके, मेरा स्वागत किया और अपने त्रिभूमिक मठ में ले गयी। मेरे यह पूछने पर कि उसने यह तपस्वी-वेश क्यों धारण किया है, उसने सजल नेत्रों से अपना यह वृतान्त सुनाया।

मलयसुन्दरी की कथा

कांची नगरी में राजा कुसुमशेखर राज्य करता था। उनकी महारानी गन्धर्वदत्ता ने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसके विषय में त्रिकालज्ञ वसुरात ने यह भविष्यवाणी की थी कि इस कन्या से विवाह करने वाले व्यक्ति को विद्याधर चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होगी। दसवें दिन मेरा मलयसुन्दरी यह नामकरण हुआ।

जब मैं सोलह वर्ष की हुई तो रात्रि को शयन करते हुए एक दिन तीव्र ध्वनि से मेरी निद्रा भग हो गई। आख खोलने पर मैंने अपने आपको जैन मंदिर के एक कोने में अनेक राजकन्याओं से घिरा हुआ पाया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह दक्षिण समुद्र मे पचशैल द्वीप पर स्थित महावीर का मंदिर था, जिनके अभिषेक-मगल के लिये राजा विचित्रवीर्य के नेतृत्व मे समस्त विद्याधर एकत्रित हुए थे, उसी अवसर पर नृत्य करने के लिये अनेक राजकन्याओ का अपहरण किया गया था। मेरे नृत्य-कौशल से राजा विचित्रवीर्य अत्यधिक प्रभावित हुए और मुझ से वार्तालाप करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी पुत्री गन्धर्वदत्ता ही मेरी माता है, जो शैशवकाल मे ही नगर विप्लव के समय अपने पिता से वियुक्त हो गई थी और त्रिकालदर्शी मुनि महायश ने यह भविष्यवाणी की थी कि उसकी कन्या को योग्य वर की प्राप्ति होने पर ही उसका अपने पिता से पुन समागम होगा। विचित्रवीर्य ने तुरन्त गन्धर्वक की माता चित्रलेखा को इस सदेह की पुष्टि करने का कार्य सौंप दिया। प्रात.काल होने पर विचित्रवीर्य ने सुवेल पर्वत पर स्थित अपनी राजधानी को प्रस्थान किया।

इसके पश्चात् मैंने भगवान महावीर की मूर्ति के दर्शन किये तथा समुद्र की शोभा देखने के लिये प्राकार भित्ति पर चढी। वही मैंने नाव मे बैठे हुए एक अष्टादश वर्षीय राजकुमार को देखा और देखत ही उस पर आसक्त हो गई। उसके मित्र तारक ने उसका परिचय देते हुए कहा कि यह सिंहलदेश के नरेश चन्द्रकेतु का पुत्र समरकेतु है जो द्वीपान्तर-विजय के प्रसग से यहा आया है। तारक ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक मेरे अन्त करण के ही समान दुर्गम उस मंदिर का मार्ग पूछा। मैंने समरकेतु को कामार्त देखकर उसे कुछ देर प्रतीक्षा करने के लिये कहा। तब तारक ने वक्रोक्ति द्वारा नाव के व्यपदेश से अपने मित्र समरकेतु की ओर से मुझ से प्रणय-निवेदन किया। उसी समय तपनवेग नामक सेवक ने आकर मुझे भगवान महावीर को अर्पित की गई पुष्पमाला और हरिचन्दन लाकर दिया तथा उसके साथ आये पुजारी बालक ने नृत्य के समय मेरी काची मे गिरे हुए पद्मराग मणि को ग्रहण करने के लिये कहा। मैंने कहा कि नायक (समरकेतु तथा मणि) को स्वीकार कर लिया गया है किन्तु उसके अपने स्थान काची (रसना तथा नगरी) पहुचने पर ही ग्रहण किया जायेगा। यह कहकर उसके हाथ से पुष्पमाला लेकर समुद्र-पूजा के व्यपदेस मे उस राजकुमार के गले मे डाल दी, किन्तु समरकेतु ने जैसे ही मेरे दिए हुए चन्दन का तिलक लगाया, उसके प्रभाव से सामने होते हुए भी मैं उसकी दृष्टि से ओझल हो गयी। वह इस आकस्मिक आघात को सहन नहीं कर सका और समुद्र मे कूद गया। उसने शोक से विह्वल

ने भी अपने आपको समुद्र को अर्पित कर दिया, किन्तु आँख खुलने पर मैंने अपने आपको अपनी शयनशाला में सोते हुए पाया, जहां मेरी सखी बन्धुसुन्दरी मेरे पार्श्व में खड़ी थी। बन्धुसुन्दरी को मैंने अपना समस्त वृतान्त कहा। इसके पश्चात् मेरे कुछ दिन बहुत शोक में बीते।

वसन्त के आगमन पर मदन-त्रयोदशी के दिन चेटी ने आकर यह सूचना दी कि आपको कामदेव की पूजा करने हेतु कामदेव मन्दिर जाना है। अगले दिन अयोध्या के राजा मेघवाहन के सेनापति वज्रायुध के साथ आपकी सम्प्रदान-विधि है। शत्रु से सन्धि करने का एक मात्र उपाय यही है। इस समाचार से उद्विग्न मैंने मृत्यु का निश्चय कर लिया। अपने माता पिता से मिली और गृहोद्यान के अपने प्रिय सभी वृक्षों और पक्षियों से विदा लेकर अपने आवास में आई। अस्वस्थता के बहाने से बन्धुसुन्दरी को भी घर भेज दिया, किन्तु बन्धुसुन्दरी मेरे इस विपरीत आचरण से शंकित होकर द्वार के पीछे ही छिप गई। तब प्रमदवन के पक्षद्वार से निकलकर मैं कामदेव मन्दिर में आई। यात्रोत्सव के कारण देख लिए जाने के भय से बाहर से ही प्रणाम कर उद्यान में आई और अशोक वृक्ष की शाखा पर अपने ही आवरण पट्ट से मृत्यु पाश बनाया। सभी लोकपालों को अपने प्रेम का साक्षी बनाकर, अगले जन्म में भी उसी राजकुमार से संगम हो, यह प्रार्थना करते हुए ग्रीवा में फंदा डाल दिया किन्तु तभी बन्धुसुन्दरी ने कामदेव मन्दिर में ठहरे हुए एक राजकुमार की सहायता से मुझे बचा लिया। चेतना आने पर मैंने देखा कि मेरी प्राण रक्षा करने वाला मेरा प्रेमी समरकेतु ही है। मेरे पूछने पर समरकेतु ने बताया कि किस प्रकार वे किसी अलौकिक शक्ति द्वारा समुद्र में डूबने से बचा लिए गए और किनारे पर लाये गये। तारक ने उसे मलयसुन्दरी को खोजने के लिए कांची चलने को कहा, किन्तु उसी समय पिता चन्द्रकेतु का एक दूत यह संदेश लेकर आया कि उसके पिता के मित्र कांची नरेश कुसुमशेखर की सहायता हेतु सेना का नेतृत्व करने के लिए उसे कांची प्रस्थान करना है। इस प्रकार कांची आकर, कामदेवोद्यान में चैत्र-यात्रा में आने वाली प्रत्येक स्त्री का निरीक्षण करने पर भी मलयसुन्दरी के न मिलने पर निराश समरकेतु वहीं उद्यान में अकेला बैठ गया, तभी बन्धुसुन्दरी का आक्रन्दन सुना।

यह सुनकर बन्धुसुन्दरी ने मेरा हाथ समरकेतु के हाथ में सौंप दिया और देखे जाने से पूर्व मेरा अपहरण कर ले जाने के लिए कहा। समरकेतु ने इसे अनुचित बताते हुए कहा कि उसे अपने पिता की आज्ञानुसार पहले कांची नरेश के शत्रु से लोहा लेना है। यह कह कर वह अपने शिविर में लौट गया।

तदनन्तर बन्धुसुन्दरी के साथ मे पुन अपने निवास स्थान मे आ गई। बन्धुसुन्दरी ने विद्याधरो द्वारा मेरे अपहरण से लेकर मेरा समस्त वृत्तान्त मेरी माता गन्धर्वदत्ता से कहा, जिसने पुन मेरे पिता से कहा। मेरे पिता कुसुमशेखर ने एक योजना बनाई, जिसके अनुसार मुझे वृद्धा दासी तरंगलेखा के साथ कुलपति शातातप के आश्रम मे उसी रात भेज दिया गया। वहा मैं एक तपस्वी कन्या के रूप मे रहने लगी।

एक दिन काची से आये एक ब्राह्मण के मुख से मैंने युद्ध का वर्णन सुना, जिसमे शत्रु पक्ष ने स्वपक्ष के सभी वीरो को अज्ञात कारण से दीर्घ निद्रा मे सुला दिया था। यह सुनते ही मैं अचेत हो गई। सज्ञा आने पर, मैं आत्महत्या के विचार से समुद्र की ओर चली, किन्तु तरंगलेखा द्वारा देख लिये जाने पर मैंने पार्श्वस्थित किंपाक वृक्ष का विषैला फल खा लिया, जिसे खाते ही मैं मूर्छित हो गई। मूर्च्छा टूटने पर मैंने अपने आपको समुद्र मे बहते हुए दारु भवन मे नलिनी-पत्र की शैय्या पर सोते हुए पाया। प्रिय-वियोग से दुखी होकर मैंने पुन मरने का निश्चय किया, किन्तु तभी मेरी दृष्टि ताडपत्र पर लिखे एक पत्र पर पडी। यह पत्र समरकेतु का था, जिसमे उसने अपनी कुशलता का समाचार दिया था और मेरे साथ व्यतीत किये गये सुखमय क्षणो का स्मरण किया था। वह लेख पढकर मैं आनन्द मग्न हो गई तथा दारु-भवन से उतर कर उस दिव्य सरोवर मे स्नान किया और वृक्ष के नीचे बैठ गई। उसी समय पुष्प चयन करती हुई चित्रलेखा आ पहुँची, जिसने देखते ही मुझे पहचान लिया। चित्रलेखा ने मेरा परिचय विद्याधर नरेश चक्रसेन की महिषी पत्रलेखा को दिया और मेरी माता गन्धर्वदत्ता के विषय मे बताया, कि किस प्रकार दस वर्ष की अवस्था मे शत्रु सामन्त अजित शत्रु द्वारा वैजयन्ती नगर मे लूटपाट मचाने पर मेरी माता गन्धर्वदत्ता को कुलपति के आश्रम मे पहुँचा दिया गया तथा उनका काची नरेश कुसुमशेखर के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। पत्रलेखा ने मेरे विषय मे जानकर अत्यन्त आत्मीयता से मेरा आलिंगन किया। तत्पश्चात् विद्याधरो से घिरी मैं इस जिनायतन मे आई। पत्रलेखा ने मुझे अपने निवास स्थान चलने का आग्रह किया किन्तु मैंने उस अवस्था में मुनि-व्रत पालन करना ही उचित समझा तथा यहीं अदृष्टपार सरोवर के समीपस्थ भगवान महावीर की पूजा करते हुए एक त्रिभूमिक मठ की मध्य भूमिका मे निवास करने लगी।

यहीं मलयसुन्दरी की कथा, जो उसने हरिवाहन को सुनाई, समाप्त होती है।

पुन हरिवाहन द्वारा वर्णित कथा, जो वह समरकेतु को सुनाता है, प्रारम्भ होती है। हरिवाहन कहता है—"मैंने मलयसुन्दरी की कथा सुनकर उसे

आश्वस्त किया और कहा कि मैं समरकेतु के विषय में जानता हूँ और वह कुशल-पूर्वक है, किन्तु उसे मैं अपनी कुशलता का समाचार किस प्रकार भेजूं। इतने में ही वहां एक शुक आया और मनुष्य की वाणी में इस कार्य को सम्पन्न करने की आज्ञा मांगी। मैंने एक लेख लिखकर उसे मेरे मित्र कमलगुप्त के पास शिविर में पहुँचाने के लिए दिया। शुक के उड़ जाने पर मैं मलयसुन्दरी के साथ उसके मठ में आया।

दूसरे दिन चतुरिका नाम की दासी तिलकमंजरी का संदेश लेकर आई, जिसमें उसकी अस्वस्थता का उल्लेख था। उसने यह भी सूचित किया कि जब से उसने वन में महावारण को जल में प्रवेश करते हुए देखा है, तभी से वह अस्वस्थ है और यह रोग प्रेम सम्बन्धी ही प्रतीत होता है। इस पर मलयसुन्दरी ने अपने यहां माननीय अतिथि हरिवाहन के आगमन के कारण तिलकमजरी के पास जाने में असमर्थता प्रकट की।

इस समाचार से मेरे हृदय में पुनः आशा का संचार हो गया और वह रात्रि मुझे अतिदीर्घ प्रतीत हुई। प्रातःकाल होने पर तिलकमजरी स्वयं दिव्यायतन में आई। मलयसुन्दरी ने मुझे उसका परिचय दिया और चित्रकला, संगीत नाट्यादि विषय पर परस्पर वार्तालाप करने का आग्रह किया। मैंने तिलकमंजरी की उदासीनता देखते हुए उससे बातचीत करना अनुचित समझा, किन्तु उसे अयोध्या भ्रमण करने का निमन्त्रण दिया। तिलकमंजरी इस बार भी प्रत्युत्तर नहीं दे सकी, केवल अपने हाथ से ताम्बूल ही दे सकी और अपने निवास स्थान पर चली गई। उसके कुछ कदम चलने पर ही उसकी प्रधान द्वारपाली मन्दुरा ने आकर मुझे और मलयसुन्दरी को रथनुपुरचक्रवाल नगर चलने के लिए आमन्त्रित किया। मलयसुन्दरी ने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। तब हम विमान में आरुढ़ होकर विद्याधर राजधानी पहुँचे, जहां हमारा राजकीय सम्मान किया गया। तत्पश्चात् तिलकमंजरी के प्रासाद में हमारे लिए विशेष भोज का आयोजन किया गया। भोज की समाप्ति पर महाप्रतिहारी मन्दुरा ने एक शुक के आगमन का समाचार दिया। वह लौहित्य पर्वत पर स्थित शिविर से कमलगुप्त का प्रत्युत्तर लेकर आया था। मैंने उसे अपने उत्संग मे बैठाया। उसी समय तिलकमंजरी की शयनपाली कुन्तला ने निशीथ नामक अद्‌भुत दिव्य वस्त्र लाकर दिया, जिसे धारण करने से अदृश्य होकर भी नगरी का भ्रमण किया जा सकता था। जैसे ही मैंने उस वस्त्र को धारण किया, मेरी गोद से एक नवयुवक उठा, जो गन्धर्वक ही था। इस आश्चर्यजनक समाचार को सुनकर तिलकमंजरी और मलयसुन्दरी भी वहां आ पहुँची। गन्धर्वक ने सभी को प्रणाम कर, अयोध्या प्रस्थान से लेकर अपनी कथा कही।

गन्धर्वक की कथा

अयोध्या नगरी से निकलकर मैं त्रिकूट पर्वतस्थ विद्याधर राजधानी की ओर चला, जहा मैं प्रदोष समय मे पहुँच गया। राजा विचित्रवीर्य से महारानी पत्रलेखा का सदेश कहा और हरिचन्दन विमान लेकर महारानी गन्धर्वदत्ता के दर्शनार्थ काची की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे प्रशान्त वैराश्रम के निकट मुझे अत्यन्त तीव्र आक्रन्दन सुनाई दिया। विमान से उतरकर मैंने देखा कि एक वृद्धा स्त्री सहायता के लिए पुकार रही थी और उसके पास ही विषैले फल को खा लेने से मलयसुन्दरी अचेत पडी थी। मैंने उसे अपने विमान मे नलिनीदल से शैय्या रचकर सुलाया और अपने सहचर चित्रमाय को उसकी देखरेख करने तथा साथ ही यदि मैं दैववशात् शीघ्र न लौट सकू तो अनुकूल वेश धारण कर राजकुमार हरिवाहन को रथनुपूरचक्रवाल नगर पहुँचाने का आदेश दिया। मैं स्वय दिव्य औषधि की खोज मे दक्षिण दिशा की ओर विमान से चला किन्तु एक शृ ग पर्वत के समीप मेरा विमान एक यक्ष के द्वारा रोक दिया गया। मेरे बार-बार कहने पर भी जब वह मार्ग से नहीं हटा तो मैंने उसे अपशब्द कहे जिससे क्रुद्ध होकर उसने मेरे विमान को इतने वेग से फेंका कि वह सीधा अदृष्टपार सरोवर मे जा गिरा। उस महोदर नामक यक्ष ने मुझे बताया कि किस प्रकार उसने मलयसुन्दरी और समरकेतु दोनो को समुद्र मे डूबने से बचाया था। वह यक्ष भगवान आदिनाथ के मन्दिर की रक्षा हेतु स्वय भगवती श्री द्वारा नियुक्त किया गया था। मैंने विमान को मन्दिर के शिखराग्र भाग से ले जाकर भगवान महावीर का अपमान किया था। अत महोदर ने मुझे शुक हो जाने का शाप दिया और अपनी इसी शुकावस्था मे मैंने सदेश प्रेषण का कार्य किया।

गन्धर्वक की इस कथा से सभी विस्मित हो गये। तब मैंने गन्धर्वक से लेकर कमलगुप्त का लेख पढा। उस पढते ही मैं चित्रमाय को साथ लेकर अपने शिविर की ओर चला। वहा पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि समरकेतु मुझे खोजने के लिए ही एक अर्धरात्रि को शिविर से गया था और आज तक लौटकर नही आया। कामरूप नरेश के अनुज से भी इतना ही ज्ञात हो सका कि वह घने जगलो मे उत्तर दिशा की ओर गया है। तब मैंने चित्रमाय को पुनः विद्याधर नगर भेज दिया और स्वय समरकेतु की खोज मे लग गया। चित्रमाय से समाचार पाकर तिलकमजरी ने मेरी सहायतार्थ एक सहस्र विद्याधरो को भेजा। इस प्रकार समरकेतु की खोज मे कई दिन व्यतीत हो गये।

एक दिन शंखपाणि नामक रत्न कोषाध्यक्ष मेरे पास आया और मेरे पिता मेघवाहन द्वारा प्रेषित चन्द्रातप हार और बालारुण अगुलीयक प्रदान की।

मैंने उन्हें गन्धर्वक के साथ तिलकमंजरी और मलयसुन्दरी के लिए उपहार स्वरूप भेज दिया। दूसरे ही दिन चतुरिका ने आकर सूचना दी कि तिलकमंजरी ने जैसे ही उस हार का आलिंगन किया, आपके साथ समागम की उसकी सम्भावना समाप्त हो गई है, किन्तु उसका जीवन आपके ही अधीन है अतः आपके द्वारा वह विस्मरणीय नहीं है।

इस आकस्मिक दुःख के आघात को सहने में असमर्थ मैंने विजयार्घ गिरि के सार्वकामिक प्रपात शिखर से कूदने का निश्चय किया। मार्ग में मैंने एक अतिसुन्दर कन्या को एक नवयुवक के पैरों में गिरकर रोते हुए देखा। पूछने पर उस युवक ने बताया कि वह विद्याधर कुमार अनंगरति है, जो अपने बन्धुजनों द्वारा राज्य के छीन लिए जाने पर, अपने जीवन से विरक्त होकर मरना चाहता है, किन्तु उसकी पत्नी पहले स्वयं मरना चाहती है। मैंने अपना राज्य उसे भेंट में देने का वचन दिया, किन्तु उसने इसे अस्वीकार कर दिया। उसने मुझे दिव्य शक्ति प्राप्त करने के लिये मन्त्र-विद्या प्रदान की, जिससे उसे पुनः अपना ही राज्य प्राप्त हो सके। मैंने इसे स्वीकार कर लिया और छः महीने तक मन्त्र साधना करते हुए कठोर तपस्या की तथा तपस्या भंग करने के सभी प्रयत्नों को विफल कर दिया। अन्ततः एक देवी प्रकट हुई, जिसने कहा कि तुम अपनी साधना से दिव्य शक्ति प्राप्त करने में सफल हुए हो, अतः तुम्हारे पराक्रम से विजित आठों देवता तुम्हारे अधीन है। मैंने उसे अनंगरति की सेवा करने के लिये कहा तब उसने यह रहस्योद्घाटन किया कि वस्तुतः अनंगरति ने प्रधान सचिव शामदबुद्धि के कहने पर, विजयार्धगिरि के उत्तरी राज्य के उत्तराधिकारी के लिये उपयुक्त पात्र प्राप्त करने के लिये यह प्रपंच रचा था, क्योंकि सम्राट विक्रमबाहु राज्य से विरक्त हो गये थे। अतः तुम विद्याधरचक्रवर्तित्व स्वीकार करो। यह कहकर वह देवी अदृश्य हो गई।

उसके जाते ही दिव्य भेरी रव सुनाई दिया, जिसे सुनकर सभी विद्याधर एकत्रित हो गए। वे सभी मुझे विमान में बैठाकर अपनी राजधानी ले गये, जहां विद्याधर चक्रवर्ती के रूप में मेरा अभिषेक किया गया किन्तु मैं तिलकमंजरी के विरह में व्याकुल, निरन्तर उसी का स्मरण करता रहा। तभी प्रधान द्वारपाल ने गन्धर्वक के आगमन की सूचना दी। गन्धर्वक ने तिलकमंजरी के विषय में विस्तार से वर्णन किया।

उसने कहा—आपकी भेजी हुई दिव्य अंगुलीयक को धारण करते ही मलयसुन्दरी के नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी। तिलकमंजरी भी दिव्यहार को पहनते ही म्लान पड़ गयी। जब मैंने दिव्य हार प्राप्ति की कथा सुनाई तो वह

मूर्छित हो गई। दूसरे दिन वे दोनो बिना कोई कारण बनाए तीर्थयात्रा के लिये निकल पडी। मार्ग मे उन्हे एक त्रिकालदर्शी महर्षि के दर्शन हुए जिनका धार्मिक प्रवचन सुनने के लिए वे वहीं ठहर गई। एक विद्याधर कुमार द्वारा प्रश्न किये जाने पर उन्होने उन दोनो के पूर्वजन्म का रहस्योद्घाटन किया।

महर्षि ने कहा—'सौधर्म नामक देवलोक मे ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक अपनी पत्नी प्रियंगुसुन्दरी के साथ निवास करता था। जब उसकी दिव्यायु क्षीण प्राय हुई तो उसे स्वर्गीय वैभव से विरक्ति हो गई। तब वह जन्मान्तर के लिए बोधि–लाभ हेतु तीर्थयात्रा करने के लिए स्वर्ग से चला। मार्ग मे उसकी भेंट शक्रावतार तीर्थ मे राजा मेघवाहन से हुई जिसे उसने अपनी पत्नी का हार उपहार मे दे दिया। इसके पश्चात् वह अपने मित्र सुमाली के पास नन्दीश्वर द्वीप मे आया और उसे भी जिनमतानुसार जीवादि तत्त्वो का भेद बताकर भगवान् जिन के पवित्र मार्ग से अवगत कराया। तत्पश्चात् ससार के सभी पवित्र स्थानो का भ्रमण करके अपनी देह का त्याग कर दिया। दूसरे जन्म मे यही ज्वलनप्रभ राजा मेघवाहन का पुत्र हरिवाहन हुआ। दूसरी ओर पति के इस प्रकार बिना सूचित किये चले जाने से दु खी होकर प्रियंगुसुन्दरी उसे खोजने के लिये जम्बूद्वीप मे आई। जहां उसकी भेंट प्रियम्वदा से हुई, जो स्वय अपने प्रिय सुमाली के वियोग मे व्याकुल थी। दोनो सखिया जयन्तस्वामि के पास पहुँची, जिसने उन्हें कहा कि उन दोनो का अपने अपने प्रिय से एकशृ ग और रत्नकूट पर्वत पर समागम होगा और दिव्य आभूषण की प्राप्ति उसका कारण होगी।

यह सुनकर प्रियंगुसुन्दरी एक शृ ग पर्वत पर पहुची और अपनी दिव्य शक्ति से जिनायतन का निर्माण करके पतिसमागम की प्रतीक्षा मे दिन व्यतीत करने लगी। इसी प्रकार प्रियम्वदा भी रत्नकूट पर्वत पर जिनेन्द्रालय का निर्माण कर पति-आगमन का प्रति-पालन करने लगी।

एक दिन भगवती श्री प्रियंगुसुन्दरी के पास प्रियम्वदा का सदेश लेकर आई कि प्रियम्वदा अपना अत समय निकट जानकर तथा प्रिय-समागम के प्रति निराश होकर, सर्वज्ञ के वचनो का विश्वास खो चुकी है, अतः उसने अपने दिव्यायतन की रक्षा का भार तुम्हें सौंप दिया है और यह दिव्य अगुलीयक मुझे प्रदान कर दी है। भगवती श्री ने प्रियंगुसुन्दरी का भी अत समीप ही जानकर दोनो जिनायतनो की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने यक्ष महोदर को सौंप दिया। इस प्रकार प्रियंगुसुन्दरी ने विद्याधर नरेश चक्रसेन की पुत्री तिलकमजरी के रूप मे जन्म लिया और प्रियम्वदा काची नरेश कुसुमशेखर की पुत्री मलयसुन्दरी के

रूप में जन्मी। दूसरी ओर सुमाली ने सिंहलाधिप चन्द्रकेतु के पुत्र समरकेतु के रूप में जन्म लिया।

महर्षि से अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त सुनकर वे दोनों अपने पटमण्डप में लौट आई। तभी तिलकमंजरी की दाहिनी आंख किसी अनिष्ट की आशंका से फड़कने लगी। उसी समय चित्रमाय ने आकर सूचित किया कि सम्पूर्ण एकशृंग पर्वत का अन्वेषण करने पर भी कुमार हरिवाहन का पता नहीं चला। मलयसुन्दरी के कहने पर तिलकमंजरी स्वयं अपना मणि-विमान लेकर दिन-भर आपको खोजती रही और संध्या-समय निराश होकर अपने निवास स्थान को आ गई। प्रातः संदीपन नामक विद्याधर ने समाचार दिया कि निषादों द्वारा राजकुमार हरिवाहन को विजयार्धपर्वत के सार्वकामिक प्रपात शिखर पर चढ़ते हुए देखा गया, उसके बाद उसका कोई पता नहीं चला।

यह सुनते ही तिलकमंजरी मूर्च्छित हो गई। संज्ञा आने पर उसने भगवान् जिनकी विशेष पूजा की और जन्मान्तर में भी उनसे शरण देने की प्रार्थना की तथा अदृष्टपार सरोवर में प्रवेश करने की इच्छा से जाने लगी किन्तु उसी समय राजा चक्रसेन का महाप्रतीहार यह सूचित करने आया, कि नैमित्तिकों द्वारा हरिवाहन की कुशलता का आश्वासन दिया गया है तथा राजा के आदेश से विद्याधर सैनिक समस्त पृथ्वी पर कुमार का अन्वेषण कर रहे हैं अतः छः मास की अवधि पर्यन्त राजकुमारी यह विचार त्याग दे। तब से तिलकमंजरी ने वनवास ग्रहण कर लिया। जब अवधि समाप्त होने में एक दिन शेष रहा तो उसके देह त्याग का उपक्रम देखकर, स्वयं उससे पहले ही मरण का संकल्प करके मैं सार्वकामिक प्रपात की ओर आया किन्तु आपके विद्याधर-रक्षकों द्वारा पकड़कर आपके चरणों में उपस्थित कर दिया गया।"

गन्धर्वक द्वारा वर्णित हार-दर्शन प्रभृति तिलकमंजरी के इस वृत्तान्त को सुनकर मुझे अपने पूर्वजन्मानुभूत स्वर्ग-निवास के सुखों का स्मरण हो आया और उसी समय मैं अश्व पर आरूढ़ होकर एकशृंग पर्वतस्थ जिनायतन में गया। पूजा करके मैंने गन्धर्वक को मलयसुन्दरी से अपना समस्त वृत्तान्त सुनाने के लिये नियुक्त किया तथा स्वयं शिशिरोपचार ग्रहण करती हुई तिलकमंजरी के पास जाकर उसे आश्वस्त किया। इतने में ही गन्धर्वक के पास तुम (समरकेतु) पहुंच गये। यहीं पर हरिवाहन वर्णित कथा समाप्त होती है।

हरिवाहन के इस अद्भुत आत्मवृत्तान्त से सभी नभचर अत्यधिक आनन्दित हुए, केवल समरकेतु ही अपने पूर्व-जन्म का स्मरण कर शोक-विह्वल हो उठा। विद्याधरपति विचित्रवीर्य का संदेशवाहक कल्याणक लेख लेकर आया। उसमें

लिखित था, कि मलयसुन्दरी का समरकेतु के साथ विवाह निश्चित किया गया है और गन्धर्वदत्ता तथा कुसुमशेखर अत्यधिक उत्कण्ठा से राजकुमार समरकेतु की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मलयसुन्दरी भी समरकेतु के दर्शन से पहले वनवास-वेश का त्याग नही करेगी। अत कल्याणक ने समरकेतु को शीघ्र सुवेल पर्वत पर ले जाने की अनुमति मागी। हरिवाहन ने अत्यन्त आश्चर्य से पूछा कि द्वीपान्तरवासी विद्याधर नरेश को समरकेतु के आगमन का ज्ञान किस प्रकार हुआ। कल्याणक ने कहा कि जैसे ही समरकेतु हरिवाहन के प्रासाद मे आया, मृगाकलेखा नामक तिलकमजरी की प्रधानसहचरी ने यह समाचार राजमहिषी पत्रलेखा को सुनाया। पत्रलेखा ने चित्रलेखा को भेजकर एकशृ ग पर्वत से मलयसुन्दरी को बुला लिया और विचित्रवीर्य को भी तुरन्त सूचित कर दिया गया।

हरिवाहन ने तुरन्त इस आग्रह को स्वीकार कर लिया और विद्याधर-सैन्य सहित समरकेतु को सुवेल पर्वत पर भेज दिया। इधर हरिवाहन का विजयार्धगिरि के उत्तरी क्षेत्र के नृपति के पद पर अभिषेक किया गया। कुछ दिन पश्चात् वह दक्षिणी क्षेत्र के अधिपति चक्रसेन का अतिथि बनकर गया, जहा तिलकमजरी के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ, तदुपरान्त दोनो दम्पत्ति सैन्य सहित अपने निवास स्थान लौट आये। हरिवाहन ने अपने प्रधानपुरुषों को भेजकर मलयसुन्दरी सहित समरकेतु को आमन्त्रित किया तथा उसे अपने समस्त राज्य का अधिकारी बना दिया।

राजा मेघवाहन ने भी राज्य से विरक्त होकर हरिवाहन को शुभ दिन राजसिंहासन पर शास्त्रोक्त विधि से बैठाया तथा स्वय परलोक साधनोन्मुख हो गया। हरिवाहन भी अयोध्या पर सुखपूर्वक एकच्छत्र शासन करने लगा।

अधिकारिक तथा प्रासगिक इतिवृत

कथावस्तु दो प्रकार की कही गयी है—(1) अधिकारिक तथा (2) प्रासगिक। इनमे प्रमुख कथावस्तु अधिकारिक कहलाती है तथा अगरूप कथावस्तु प्रासगिक कहलाती है।[1]

अधिकारिक इतिवृत्त

कथा के प्रधान फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है तथा उस फल या फल-भोक्ता के द्वारा फल-प्राप्ति पर्यन्त निर्वाहित कथा आधिकारिक कहलाती

---

1 तत्राधिकारिक मुख्यमङ्ग प्रासङ्गिक विदु।

—धनजय—दशरूपक, 1/11

है।[1] तिलकमंजरी कथा में नायक हरिवाहन तथा नायिका तिलकमंजरी की प्रेम-कथा आधिकारिक इतिवृत्त है। अन्य सभी उपकथायें तथा अन्तर्कथायें इस प्रमुख कथा के विकास में सहयोग देती हैं।

प्रासंगिक इतिवृत्त

जो कथा दूसरे (अर्थात् आधिकारिक कथा) के प्रयोजन के लिए होती है, किन्तु प्रसंगवश जिसका अपना फल भी सिद्ध हो जाता हो, वह प्रासंगिक कथावस्तु है।[2] प्रासंगिक कथा भी दो प्रकार की है—पताका तथा प्रकरी।

पताका

अनुबन्ध सहित तथा काव्य में दूर तक चलने वाली प्रासंगिक कथा पताका कहलाती है।[3] यह मुख्य नायक के पताका चिन्ह की तरह मुख्य कथा तथा नायक की पोषक होती है। तिलकमंजरी में समरकेतु तथा मलयसुन्दरी की प्रेम-कथा प्रासगिक कथावस्तु के पताका भेद के अन्तर्गत आती है, क्योंकि यह कथा काव्य में दूर तक वर्णित की गई है तथा यह मुख्य कथा के विकास में सहायक है। इस कथा एवं मुख्य कथा के पात्र न केवल एक जन्म में अपितु दोनों जन्मों में परस्पर जुड़े हुए हैं। देवयोनि में ज्वलनप्रभ व सुमालि मित्र हैं तथा प्रियंगुसुन्दरी व प्रियम्वदा सखियां हैं, इसी प्रकार मनुष्य योनि में हरिवाहन तथा समरकेतु परम मित्र हैं और तिलकमंजरी तथा मलयसुन्दरी सखियां हैं। इस कथा का नायक पताकानायक अथवा पीठमर्द कहलाता है। वह चतुर तथा बुद्धिमान होता है तथा प्रधान नायक का अनुचर एवं भक्त होता है। वह प्रधान नायक की अपेक्षा गुणों में कुछ कम होता है।[4] समरकेतु इन समस्त गुणों से युक्त है।

प्रकरी

एक ही प्रदेश एक सीमित रहने वाली प्रासंगिक कथा प्रकरी कहलाती है।[5] तिलकमंजरी में नाविक तारक तथा प्रियदर्शना की प्रेम-कथा इसी प्रकार

---

1. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
   तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्॥ —वही, 1/12
2. प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः। वही, 1/13
3. सानुबन्धं पताकाख्यम्..........। —धनंजय—दशरूपक, 1/13
4. पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।
   तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः॥ —वही, 2/8
5. ....प्रकरी च प्रदेशभाक्। —वही, 1/13

की है। इसके अतिरिक्त गन्धर्वक की कथा, मेघवाहन-मदिरावती, कुसुमशेखर-गन्धर्वदत्ता, अनगरति आदि छोटे-छोटे वृत्त प्रकरी प्रासगिक कथा के भेद के अन्तर्गत आते हैं।

इस प्रकार तिलकमजरी मे कथावस्तु के आधिकारिक, पताका तथा प्रकरी तीनो भेद पाये जाते हैं। इन तीन भेदो के अतिरिक्त विषयवस्तु की दृष्टि से इतिवृत्त पुनः तीन प्रकार का कहा गया है—प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र।[1] प्रख्यात इतिवृत्त इतिहास, पुराणादि पर आधारित होता है। उत्पाद्य कवि-कल्पित होता है तथा मिश्र दोनो प्रकार का। तिलकमजरी का इतिवृत्त स्वय धनपाल की कल्पना से प्रसूत है, अत यह उत्पाद्य श्रेणी का है।

तिलकमजरी का वस्तु-विन्यास

पुनर्जन्म का सिद्धान्त

तिलकमजरी की कथावस्तु पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त की विवेचना धनपाल ने प्रारम्भ मे ही वैमानिक ज्वलनप्रभ के इस कथन मे कर दी है, कि इस भवसागर मे अपने-अपने कर्मो से बधे हुए जीवो का जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्धो से अपने बन्धुओ, मित्रो तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओ से पुन पुन सम्बन्ध होता है।[2] यही सिद्धान्त इस कथा का प्रमुख आधार है। इसमे हरिवाहन तथा तिलकमजरी एव समरकेतु और मलयसुन्दरी के दो जन्मो की कथा प्रस्तुत की गयी है। प्रथमत दैवयोनि मे जन्म लेने वाले ज्वलनप्रभ तथा सुमालि दोनो मित्र अपनी दैवायु समाप्त प्राय जानकर, बोधि-लाभ के लिए तीर्थ यात्रा पर निकलते हैं। ज्वलनप्रभ तथा सुमालि दोनो की पत्निया, प्रियगुसुन्दरी तथा प्रियम्वदा प्रियवियोग से दु खी होकर जयन्तस्वामि सर्वज्ञ के आदेशानुसार स्वर्गलोक छोडकर, भारतवर्ष के एकशृंग और रत्नकूट पर्वतो पर एक-एक जिनायतन का निर्माण कर समागम की प्रतीक्षा करती है, किन्तु इस प्रकार प्रतीक्षा मे ही उनकी दिव्यायु समाप्त हो जाती हैं और वे पृथ्वी पर तिलकमजरी तथा मलयसुन्दरी के रूप मे जन्म लेती हैं। इसी प्रकार ज्वलन-प्रभ और सुमालि भी हरिवाहन और समरकेतु के रूप मे जन्म लेते हैं और दिव्य

---

1 प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।
प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्य कविकल्पितम्॥ —धनजय, दशरूपक, 1/25

2 सम्भवन्ति च भवार्णवे विविधकर्मवशवर्तिना जन्तूनामेकशो जन्मान्तरजात-सबन्धैर्बन्धुभि सुहृदिभरर्थैश्च नानाविधै. सार्धमबाधिता पुनस्ते सम्बन्धा।
—तिलकमजरी, पृ 44

आभूषणों—हार तथा अंगुलीयक से पूर्व जन्म स्मरण हो आने पर उनका एकशृंग व रत्नकूट पर्वतों पर पुनर्मिलन होता है।

लोककथाओं की पद्धति पर आधारित

दो जन्मों के इस कथानक को प्रस्तुत करने के लिए लोककथाओं की अन्तर्कथा-पद्धति को अपनाया गया है। इस पद्धति में प्रमुख समाविष्ट कथा में अन्य समाविष्ट कथा को रख दिया जाता है। जो घटना किसी पात्र पर घटित होती है, वह कथानक के अन्य पात्र के कहे जाने पर, उस अन्य पात्र के मुख से पाठक तथा कथा के अन्य पात्रों तक पहुँचती है। इस प्रकार मुख्य कथा का पात्र अवान्तर कथा के पात्रों के वृत्तान्तों को अपने मुख से दुहराता है, जो उसे अवान्तर कथा के पात्रों ने स्वयं अपने मुख से कहे हैं। यथा मलयसुन्दरी ने अपनी जो कथा नायक हरिवाहन को पहले सुनायी थी, वही हरिवाहन के मुख से समरकेतु आदि अन्य पात्रों तथा पाठकों को कही गयी। कथाओं का यह गर्भीकरण लोककथाओं की विशिष्टता थी, जैसाकि पंचतन्त्र तथा हितोपदेश एवं गुणाढ्य की बृहत्कथा में पाया जाता है। अतः अन्तर्कथा की यह पद्धति लोक-कथाओं से ग्रहण की गयी है।

विभिन्न कथा-मोड़ों का स्पष्टीकरण तथा औचित्य

कहानी की घटनाओं का क्रमपूर्वक वर्णन न करके पूर्वोत्तर की घटनाओं को बीच-बीच में विभिन्न कथा-मोड़ों (फ्लेश बैक) में प्रस्तुत करके उसे रोचक बनाया जाता है। इस प्रकार के कथानक में रोचकता के साथ-साथ जटिलता का भी समावेश हो जाता है, जिसे पाठक अपनी बुद्धि से विभिन्न कथा मोड़ों के परस्पर सम्बन्ध को जोड़कर तथा घटनाओं के पूर्वानुक्रम को समझकर सुलझाता है। तिलकमंजरी कथा को पांच कथा-मोड़ों में प्रस्तुत किया गया है—

प्रथम कथा मोड़

अयोध्या-वर्णन, मेघवाहन वर्णन, मेघवाहन की पुत्र-चिन्ता, विद्याधर मुनि से भेंट, विद्याधर मुनि का जप-विद्या प्रदान करना, वैमानिक ज्वलनप्रभ से भेंट, वेताल का प्रकट होना, लक्ष्मी द्वारा वर प्रदान, हरिवाहन का जन्म, यहां तक घटना-क्रम बिना किसी मोड़ के सीधा चलता है। प्रथम कथा-मोड़ है, विजयवेग द्वारा वज्रायुध तथा कांची नरेश कुसुमायुध के युद्ध का वर्णन।[1] इस कथा मोड़ के द्वारा कथा में उपनायक समरकेतु का प्रवेश कराया गया है तथा मेघवाहन द्वारा नायक हरिवाहन के सखा के रूप में नियुक्त करने के लिए राजपुत्र

1. तिलकमंजरी, पृ. 82–100

अन्वेषण रूप उद्देश्य की पूर्ति की गयी है। इसमे समरकेतु का परिचय मात्र दिया गया है, मलयसुन्दरी से उसके सम्बन्ध के विषय मे कोई उल्लेख नही है, किन्तु इस वर्णन मे कामदेवोत्सव के दिन समरकेतु द्वारा शृंगारवेष धारण करके कामदेव के मन्दिर मे स्त्रियो का निरीक्षण करने का जो उल्लेख किया गया है, उसका सम्बन्ध आगे मलयसुन्दरी की कथा के अन्तर्गत समरकेतु के वृत्तान्त से जुडता है।[1]

द्वितीय कथा मोड

हरिवाहन तथा समरकेतु परम मित्रो के समान परस्पर समय व्यतीत करते हैं, किन्तु एक दिन मत्तकोकिलोद्यान में मजीर द्वारा प्राप्त एक प्रेम पत्र के श्रवण से समरकेतु को अपना पूर्व-वृत्तान्त स्मरण हो आता है तथा कमल गुप्तादि के पूछने पर वह अपना पूर्ववृत्तान्त वर्णित करता है।[2] इस प्रकार कथा पुन वर्तमान से भूत मे चली जाती है। समरकेतु के दिग्विजय का वर्णन ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। समुद्र-यात्रा तथा नौ-अभियान का विशद वर्णन इसकी विशिष्टता है। समुद्र यात्रा का ऐसा स्वाभाविक व विस्तृत वर्णन संस्कृत साहित्य मे अन्यत्र दुर्लभ है। समरकेतु की कथा "एक अद्वितीय रूपवती कन्या को देखा", यही तक आकर अवच्छिन्न हो जाती है, इससे आगे की कथा मलयसुन्दरी के मुख से कही गयी है।[3] समरकेतु के वृत्तान्त के अन्तर्गत तारक अवान्तर कथा भी आ जाती है। इसके पश्चात् कथा मे पुन नाटकीय मोड आता है।

तृतीय कथा मोड

समरकेतु के वृत्तान्त को अधूरा ही छोडकर इस नाटकीय मोड के द्वारा नायिका तिलकमंजरी का प्रथम परिचय गन्धर्वक द्वारा उसके चित्र से दिया जाता है।[4] यहा नायिका तिलकमंजरी प्रत्यक्ष रूप से नही आयी उसके चित्र से उसका परिचय दिया गया है तथा उसके पुष्प-द्वीप के विषय मे सूचना दी गयी है। इस कथा-मोड का प्रमुख उद्देश्य नायिका के चित्र-दर्शन से नायक के हृदय मे प्रेम का अंकुरण है। दूसरा उद्देश्य उपनायिका मलयसुन्दरी को समरकेतु द्वारा पत्र प्रेषित कर उसे आत्महत्या से बचाना है। समरकेतु गन्धर्वक को अपनी कुशलता का पत्र कांची नगरी मे मलयसुन्दरी को देने के लिए कहता है।[5] इस घटना का सम्बन्ध आगे वर्णित मलयसुन्दरी के इस वृत्तान्त से जुडता है, जिसमे वह वज्रायुध

1 तिलकमंजरी, पृ 322-23
2. तिलकमंजरी, पृ 114-161
3 वही, पृ 259-345
4 वही पृ 161, 167-171
5. तिलकमंजरी, पृ 173

के साथ युद्ध में समरकेतु के पराजित होकर दीर्घ-निद्रा प्राप्त करने का समाचार सुनती है तथा जिसे सुनकर वह विषैला फल खा लेती है,[1] इसके पश्चात् की घटनायें गन्धर्वक से प्राप्त होती है ।[2]

चतुर्थ कथा मोड़

गज द्वारा नायक हरिवाहन का अपहरण, यह कथा का महत्वपूर्ण चतुर्थ मोड़ है ।[3] इसका उद्देश्य हरिवाहन का प्रत्यक्ष रूप में तिलकमंजरी के विद्याधर प्रदेश में प्रवेश करना है । दूसरी ओर समरकेतु को हरिवाहन का अन्वेषण करते हुए छः मास से भी अधिक व्यतीत हो जाते हैं । इस अवधि के मध्य हरिवाहन की कुशलता का समाचार भी मिल जाता है । खोजते-खोजते वह एकशृंग पर्वत पहुँचता है, जहां अदृष्टसरोवर के निकट, एक दिव्यायतन देखता है । वहां उसकी भेंट गन्धर्वक से होती है । गन्धर्वक उसे हरिवाहन के पास ले जाता है । इस प्रकार इसी कथा-मोड़ में दोनों मित्र हरिवाहन के गज अपहरण से विमुक्त भी हो जाते हैं और पुनः मिल भी जाते हैं, किन्तु इस वियोग और समायोग के बीच छः मास से भी अधिक समय व्यतीत हो जाता है और हरिवाहन के जीवन में महत्वपूर्ण घटनायें घट जाती हैं । इसी अवधि में घटित घटनाओं का पूर्ण विवरण आगे हरिवाहन अपने मुख से देता है ।

पंचम कथा मोड़

कथा का यह अन्तिम तथा महत्वपूर्ण मोड़ है । इसमें गज-अपहरण से लेकर विद्याधर चक्रवर्तित्व प्राप्ति पर्यन्त का कथानक हरिवाहन अपने मुख से समरकेतु तथा अन्य मित्रों को सुनाता है । इस वर्णन में चार अन्तर्कथायें भी आ गयी हैं—(1) मलयसुन्दरी की कथा (2) गन्धर्वक की कथा (3) अनंगरति की कथा (4) तथा महर्षि द्वारा मुख्य पात्रों के पूर्व जन्म की कथा का उद्घाटन । यहां से सारी कथा भूतकाल में चली जाती है । यह सम्पूर्ण वृत्तान्त हरिवाहन द्वारा उत्तम पुरुष में वर्णित है ।

सर्वप्रथम तिलकमजरी तथा हरिवाहन का प्रथम समागम होता है, किन्तु तिलकमंजरी मुग्धा नायिका होने से कोई उत्तर दिये बिना ही लौट जाती है । उसकी कामावस्था का वर्णन बाद में चारायण कंचुकी मलयसुन्दरी से करता है ।

1. वही, पृ. 334
2. वही, पृ. 378–384
3. वही, पृ. 187

इसके पश्चात् मलयसुन्दरी की कथा[1] प्रारम्भ होती है। इस कथा मे हम मलयसुन्दरी का प्रथम परिचय प्राप्त करते हैं। समरकेतु द्वारा वर्णित जो वृत्तान्त अधूरा छोड दिया गया था, वही समरकेतु तथा मलयसुन्दरी की प्रेम-कथा का अगला वृत्तान्त, मलयसुन्दरी के मुख से वर्णित किया गया। इस वृत्तान्त मे काची नगरी से अर्धरात्रि मे विद्याधरो द्वारा उसके अपहरण से लेकर, समरकेतु से प्रथम समागम, उसका समरकेतु के गले मे माला डालना तथा अदृश्य हो जाना, समरकेतु द्वारा समुद्र मे डूब जाना, उसे देखकर मलयसुन्दरी का भी अपने आपको समुद्र को अर्पित करना, मलयसुन्दरी का पुन काची आगमन, आत्महत्या का प्रयास, समरकेतु द्वारा त्राण, मलयसुन्दरी का प्रशान्तवैराश्रम मे निवास, पुन आत्महत्या का प्रयास, समरकेतु की कुशलता का समाचार मिलना तथा उसके मुनि-व्रत धारण करने तक की घटनाओ तक का वर्णन है।

इस अन्तर्कथा के समाप्त होने पर पुन मुख्य कथा प्रकाश मे आ जाती है। वस्तुत अन्तर्कथा से मुख्य कथा विच्छिन्न नहीं होती, अपितु उसे आगे बढाने मे सहायक होती है, क्योकि अन्तर्कथा तथा मुख्य कथा के पात्र परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं।

इसके पश्चात् तिलकमजरी मलयसुन्दरी से मिलने आती है। तिलक-मजरी यहा भी लज्जावश हरिवाहन को कुछ प्रत्युत्तर नहीं दे पाती, केवल उसे अपने हाथ से ताम्बूल प्रदान करती है। वह हरिवाहन तथा मलयसुन्दरी को अपने भवन मे आने का निमन्त्रण देती है जहा, उनका उचित सत्कार किया जाता है। वहीं शुक के रूप मे गन्धर्वक का आगमन होता है। दिव्य-वस्त्र के द्वारा पुन पुष्प-योनि होने पर वह अयोध्या से समरकेतु का पत्र लेकर जाने से लेकर शुकावस्था प्राप्ति पर्यन्त का वृत्तान्त सुनाता है। इस वृत्तान्त मे यक्ष महोदर द्वारा समुद्र मे डूबे मलयसुन्दरी तथा समरकेतु के उद्धार का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त गन्धर्वक द्वारा पत्रो का आदान-प्रदान इसका प्रमुख उद्देश्य है, जो उसकी शुकावस्था मे ही सम्भव था।

तीसरी अन्तर्कथा अनगरति का वृत्तान्त है, इसका प्रमुख उद्देश्य हरि-वाहन द्वारा छ मास पर्यन्त तपस्या करके विद्याधर चक्रवर्तित्व की प्राप्ति है।

इससे पूर्व हरिवाहन द्वारा तिलकमजरी और मलयसुन्दरी को दिव्य हार तथा अगुलियक प्रेषित किये जाते हैं, जिन्हे धारण करते ही वे अपने पूर्वजन्म के स्मरण से व्याकुल हो उठती हैं। तदनन्तर तीर्थयात्रा के प्रसग मे उन्हे एक

1. तिलकमजरी, पृ 259–345

त्रिकालदर्शी मुनि से अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान होता है। जो कथा प्रारम्भ में ज्वलनप्रभ ने राजा मेघवाहन से शक्रावतार आयतन में संकेतरूप में कही थी, वहीं यहां विस्तार से वर्णित की गई है। यहां आकर कथा की समस्त गुत्थियां सुलझ जाती हैं तथा कथानक का समस्त रूप स्पष्ट हो जाता है तथा वह अपने उद्देश्य के चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है।

इस प्रकार चतुर शिल्पी धनपाल ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से एक सीधे सादे कथानक को पांच सुन्दर नाटकीय मोड़ों में प्रस्तुत करके अत्यन्त रोचक बना दिया है।

तिलकमंजरी के कथानक की लोकप्रियता

गद्यकाव्य के उत्कृष्ट निदर्शन तिलकमंजरी काव्य की संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने सर्वथा उपेक्षा की है। ए. बी. कीथ सदृश विद्वान् भी इस काव्य की गणना परवर्ती गद्यकाव्यों में करते हैं और वह भी केवल यह कहकर कि इसमें कादम्बरी के सदृश अधिकाधिक चित्र खींचकर उसकी नकल करने की कोशिश की गयी है।[1] इन्हीं पाश्चात्य विद्वान का अन्धानुकरण करते हुए भारतीय विद्वान् भी इस ग्रन्थ का अध्ययन किये बिना ही 'इसमें समरकेतु तथा तिलकमंजरी का प्रेम वर्णित किया गया है," इस भ्रमित कथन को दोहराते हैं तथा धनपाल को बाण का अनुकरणकर्ता मात्र कहकर उसके महत्त्व को नगण्य कर देते हैं।[2] भारतीय विद्वानों द्वारा पाश्चात्य विद्वानों का यह अन्धानुकरण तथा इतिहासकारों की परस्पर गतानुगतिकता अत्यन्त शोचनीय है। डॉ० कीथ, डॉ० डे तथा डॉ० कृष्णमाचार्य जैसे प्रसिद्ध विद्वान् एक ही भूल को निरन्तर दोहराते हैं।

धनपाल ने बाण को अपना आदर्श मानकर, उनकी शैली की विशेषताओं को अवश्य अपनाया है, किन्तु उसकी नकल की है, यह कहना अनुचित है।

---

1. Keith, A. B. ; (A) Classical Sanskrit Literature, p. 69, Calcutta, 19:8.
   (B) A History of Sanskrit Literature, p. 331 London, 1961.
2. (A) De, S. K. & Dasgupta, S. N. : A History of Classical Sanskrit Literature Vol. I, p. 431, 1947.
   (B) Krishnamacharior, M : A History of Classical Sanskrit Literature, p. 475, Madras, 1937.

धन बाण से प्रभावित थे, यह तिलकमजरी की प्रस्तावना[1] से स्पष्ट है, किन्तु धनपाल की मौलिक प्रतिभा मे कोई सदेह नहीं किया जा सकता। उन्होने तत्कालीन युग की प्रवृत्ति के अनुकूल होते हुए भी नितान्त भिन्न शैली व भिन्न पृष्ठभूमि मे अपने ग्रन्थ को प्रस्तुत किया है। नि सन्देह तिलकमजरी का गद्यकाव्यो मे अपना विशिष्ट स्थान है। तिलकमजरी ग्यारहवीं शताब्दी मे ही अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी थी, तथा बाण की कादम्बरी के समकक्ष रखी जाने लगी थी।[2] तिलकमजरी का कथानक इतना लोकप्रिय हुआ, कि तीन-तीन परवर्ती कवियों ने इस कथानक को सुरक्षित रखने के लिए इसके आधार पर अपने काव्य लिखे।[3]

तिलकमंजरीसार[4]

ग्रन्थ के अतिम सात पद्यो मे कवि ने अपना परिचय दिया है।[5] पल्लीपाल धनपाल ने इसकी रचना वि स 1261 अर्थात् ई० स० 1205 मे की थी। यह अणहिल्लपुर के निवासी आमन कवि के पुत्र थे। इन्होने अपने पिता की शिक्षा के अन्तर्गत इस ग्रन्थ की रचना की।[6] इन्होने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे धनपाल को नमस्कार किया है।[7] पल्लीपाल धनपाल ने तिलकमजरी के मूल कथानक को ज्यो का त्यो गद्य से पद्य में उतार लिया है, इसलिए उसमे कुछ नवीनता का समावेश हो गया है।[8]

---

1. तिलकमजरी–प्रस्तावना, पद्य 26, 27
2. रूद्रट, काव्यालकार, 16।3, नमि साधु की टीका
3. (क) Velankar, H D., Jinaratnakosa, Part I B O R I, 1944, p 159.
   (ख) कापडिया, हीरालाल रसिकदास, जैन सस्कृत साहित्य नो इतिहास, भाग 2, पृ० 221
4. Kansara, N M , Pallipala Dhanapala's Tilakmanjarisara, Ahmedabad, 1969
5. तिलकमजरीसार, पद्य 1–7
6. धनपालोऽल्पतुश्चापि पितुरश्रान्तशिक्षया।
   सार तिलकमजर्या कथाया किंचिदग्रथत्॥ –वही, पद्य 5
7. नम श्रीधनपालाय येन विज्ञानगुम्फिता।
   क नालङ्कुरूते कर्णस्थिता तिलकमजरी॥
   –तिलकमजरीसार, पद्य 3
8. कथागुम्फ. स एवात्र प्रायेणार्थास्त एव हि।
   किंचिन्नवीनमप्यस्ति रसौचित्येन वर्णनम्॥ –वही, पद्य 5

तिलकमंजरीकथासार[1]

यह पंडित लक्ष्मीधर द्वारा वि०सं० 1281 अर्थात् ई० स० 1225 में लिखा गया था।[2] ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि कहता है कि तिलकमंजरी कथा को संग्रहित करना ही इसकी रचना का उद्देश्य है तथा किंचित् वर्णन के साथ उसका सार प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अर्थ व शब्द भी वही हैं, केवल उनके गुम्फन की विभिन्नता से ही सज्जन सन्तुष्ट हों।[3]

तिलकमंजरीकथोद्धार अथवा तिलकमंजरी-प्रबन्ध

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है, किन्तु हस्तलिखित रूप में प्राप्त है। जिन रत्नकोश[4] तथा हस्तलिखित प्रतियों में इसका नाम तिलकमंजरीप्रबन्ध है,[5] किन्तु ग्रन्थ के प्रारम्भ में लेखक ने इसे तिलकमंजरी का कथोद्धार कहा है।[6] इस ग्रन्थ के रचयिता के विषय में निश्चित मत नहीं है, न ही इसकी रचना का समय निश्चित है। इसका लेखक धर्मसागर के शिष्य पद्मसागर को बताया गया है, किन्तु उपलब्ध प्रमाण इसकी पुष्टि नहीं करते हैं, अतः यह सन्देहास्पद है।[7]

इन तीन ग्रन्थों के अतिरिक्त अभिनव-बाण श्री कृष्णमाचार्य ने इस शताब्दी के प्रारम्भ में इस कथा का संग्रह कर "सहृदय" मासिक पत्र तथा पुस्तक रूप में भी प्रकाशित करके इस कथा को लोकप्रिय बनाया।[8] इसके अतिरिक्त

---

1. लक्ष्मीधर, तिलकमंजरीकथासार, हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली, 12, अहमदाबाद, 1919
2. वही
3. लक्ष्मीधर, तिलकमंजरीकथासार, पद्य 4, 5
4. Velankar, H.D., Jinaratnakosa, Part I, B.O.R.I. 1944, p. 159.
5. (क) इति श्रीतिलकमंजरीप्रबन्धः संपूर्णमगमत्—कान्तिविजयजी भण्डार हस्तलिखित ग्रन्थ सं० 1802, आत्माराम जैन ज्ञान मंदिर, बड़ोदा
   (ख) इति श्रीतिलकमंजरीप्रबन्धः संपूर्णः समाप्तानि—हस्तलिखित ग्रन्थ सं० 791, भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना।
6. कुर्वे तिलकमंजर्याः कथोद्धारं प्रयत्नतः। -तिलकमंजरीकथोद्धार, पद्य 1
7. Kansara, N. M. (Ed), Tilakmanjarisara, Introduction, p. 31–32.
8. मद्रासासन्नवर्तिश्रीरंगाख्यनगरे वास्तव्यैः श्रीमदभिनवबाणोपाधिधारिभिः कृष्णमाचार्यैः सहृदयाख्ये स्वकीये मासिकपत्रे क्रमशः प्रसिद्धीकृतेयं कथा पृथगपि ग्रन्थाकारेण मुद्रापिता रूप्यकद्वयेन प्राप्यते।
   —वीरचन्द्र, प्रभुदास (स०) भूमिका, पृ० 2, तिलकमंजरीकथासार, अहमदाबाद, 1919

प्रमुदास बेचरदास पारेख ने इसका गुजराती भाषा मे सक्षिप्तीकरण किया है।[1]

इनसे प्रमाणित होता है कि तिलकमजरी के कथानक ने तत्कालीन समय से लेकर इस शताब्दी पर्यन्त विद्वज्जनो के हृदय मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था।

तिलकमंजरी के टीकाकार

तिलकमजरी ग्रन्थ पर लिखित दो टीकाए अब तक प्रकाश मे आयी हैं– (1) शान्तिसूरी का टिप्पण, (2) विजयलावण्यसूरि की पराग नामक टीका।

शान्तिसूरि (बारहवी शती)

श्री शान्तिसूरि पूर्णतल्लगच्छ से सम्बन्धित थे।[2] इन्होने तिलकमजरी पर 1050 श्लोक प्रमाण टिप्पण की रचना की है।[3] यह विजयलावण्यसूरीश्वर-ज्ञानमदिर से तीन भागो मे अपूर्ण रूप से प्रकाशित है।[4] ये शातिसूरी, श्री वर्धमान-सूरि के शिष्य थे तथा इनका आविर्भाव विक्रम की बारहवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। इन्होने चन्द्रदूत, मेघाभ्युदय, वृन्दावनयमकम्, राक्षसमहाकाव्यम् घटखर्परकाव्यम्, इन पाच यमकमय काव्यो पर अपनी वृत्ति लिखी है। टिप्पण के प्रारम्भ मे ये लिखते हैं–

तिलकमजरीनाम्न्या कथायाः पदपद्धतिम्।
श्लेषमगादिवैषम्य विवृणोमि यथामति॥2॥

–शान्तिसूरि विरचित टिप्पण

---

1 प्रमुदास, बेचरदास पारेख (स०), तिलकमजरीकथासाराश (गुजराती) हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली न० 8, पाटण

2 श्री शान्तिसूरिरिह श्रीमति पूर्णतल्ले,
गच्छे वरो मतिमना बहुशास्त्रवेत्ता।
तेनाऽमल विरचित बहुधा विमृश्य,
सक्षेपतो वरमिद बुध। टिप्पित भो॥
–पाटण जैन भडार कैटलाग, भाग 1, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज न० 76 मे प्रकाशित, पृ० 87

3 कापडिया, हीरालाल रसिकदास, जैन सस्कृत साहित्यनो इतिहास, भाग 2, पृ० 220

4 विजयलावण्यसूरीश्वरज्ञानमदिर, बोटाद, भाग 1, 2, 3 वि०स० 2008, 2010, 2014

5. जैसलमेर भडारग्रन्थ सूची, अप्रसिद्ध, पृ० 58, 59

ये शांतिसूरि उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार थारापद्र गच्छ के शांतिसूरि से भिन्न हैं। थारापद्र गच्छ के शांतिसूरि का जन्म राधनपुर के पास उण नामक गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम धनदेव तथा माता का नाम धनश्री था। इन शांतिसूरि का बाल्यावस्था का नाम भीम था। थारापद्र गच्छ के श्री विजयसिंहसूरि से दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् ये शांतिसूरि कहलाये। ये पाटण के राजा भीम की सभा में शांतिसूरी "कवीन्द्र" तथा "वादिचक्रवर्ती" के रूप में प्रसिद्ध थे। भोज की सभा में 84 वादियों को परास्त कर "वादि वेताल" पद से विभूषित हुए। ये धनपाल के समकालीन थे तथा इन्होंने धनपाल की प्रार्थना पर तिलकमंजरी का संशोधन किया था। धनपाल के समकालीन होने से इनका समय विक्रम की ग्यारहवीं शती है अतः ये पूर्णतल्लगच्छ के शांतिसूरि अर्थात् तिलकमंजरी के टिप्पणकार से सर्वथा भिन्न हैं।[1]

विजयलावण्यसूरि (बीसवीं सदी का पूर्वार्ध)

इनका जन्म सौराष्ट्र के बोटाद ग्राम में विक्रम सं० 1953 में हुआ था। इनके पिता का नाम जीवनलाल तथा माता का नाम अमृत था। इन्होंने श्री विजयनेमिसूरि से दीक्षा ग्रहण की थी तथा "मुनि श्री लावण्यविजय" नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। इन्होंने तिलकमंजरी पर 'पराग' नामक विशद व्याख्या लिखी है, जो इस ग्रन्थ को समझने में पूर्णरूप से सहायक है। यह भी तीन भागों में अंशतः प्रकाशित है।[2] श्री पन्यास दक्षविजयगणि[3] ने विजयलावण्यसूरिविरचित निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया है—

(1) धातुरत्नाकर, सात भाग, 4 लाख, 50 हजार श्लोक प्रमाण, इनमें समस्त धातुरूपों की व्युत्पति आदि का विवेचन किया गया है।
(2) हेमचन्द्र के शब्दानुशासन की स्वोपज्ञ वृत्ति 'न्यास' के त्रुटित स्थलों की 2000 श्लोक प्रमाण व्याख्या।
(3) हेमचन्द्र के काव्यानुशासन पर वृति
(4) तत्वार्थाधिगमसूत्र पर त्रिसूत्रिप्रकाशिका विवृत्ति
(5) यशोविजयगणि के नयरहस्य पर "प्रमोद" नामक विवृत्ति
(6) सप्तभंगी–नयप्रदीपप्रकरण पर बालावबोधिनी वृत्ति
(7) जैनतर्कभाषा पर तत्वबोधिनी टीका

---

1. मेहता, मोहनलाल, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 3, पृ० 388-89, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 5, 1967
2. विजयलावण्यसूरीश्वरज्ञानमंदिर, बोटाद, भाग 1, 2, 3, वि. सं. 2008, 2010, 2014
3. वही, भाग 1, भूमिका, पृ० 21–22

(8) नयामृततरगिणी ग्रन्थ पर तरगिणीतरणि वृत्ति

(9) हरिभद्रसूरि विरचित शास्त्रवार्तासमुच्चय ग्रन्थ पर 25000 प्रमाण श्लोक वृत्ति

(10) तिलकमजरी पर पराग टीका

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि श्री विजयलावण्यसूरि जैन न्याय तथा व्याकरणशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे ।

इस अध्याय मे तिलकमजरी की कथावस्तु का विवेचन प्रस्तुत किया गया । हमने देखा कि किस प्रकार एक अत्यन्त सरल व सीधे सादे कथानक को तत्कालीन युग मे प्रचलित रूढियो यथा, पुनर्जन्म, देवयोनि एव मनुष्य योनि के व्यक्तियो का परस्पर मिलना, विद्याधर योनि तथा मनुष्य योनि के व्यक्तियो का समागम, श्राप, दिव्य आभूषण, आकाश मे उडना, अपहरण आदि के आधार पर अत्यधिक रोचक व नाटकीय ढग से प्रस्तुत किया गया । इन रूढियो का इस कथा-क को आगे बढाने मे महत्वपूर्ण स्थान है । यद्यपि इस कथा का मूल स्रोत ज्ञात नही हो सका, किन्तु धनपाल के "जिनागमोक्ता" इस सकेत से अनुमान लगाया जा सकता है कि जैन आगमों मे कही गयी कथाओ मे इस कथानक को ग्रहण किया गया है । इसकी पुष्टि इस बात मे भी होती है कि तिलकमजरी कथा जैन धर्म व उसके सिद्धान्तो की पृष्टभूमि पर लिखी गयी है ।

तृतीय अध्याय

धनपाल का पांडित्य

ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा से समन्वित, लोक व्यवहार जन्य अनुभव तथा शास्त्र अर्थात् वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक साहित्य तथा व्याकरण, कोष, अर्थ-शास्त्र, धर्मशास्त्रादि के गूढ़ अध्ययन एवं पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों का पर्यालोचन से उत्पन्न व्युत्पत्ति, काव्य की सृष्टि का कारण बनती है। मम्मट के अनुसार शक्ति, लोक, शास्त्र तथा काव्यादि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता और काव्य के ज्ञाता की शिक्षा के अनुसार पुनः पुनः अभ्यास, ये तीनों समष्टि रूप से काव्योत्पत्ति के कारण हैं।[1]

प्रस्तुत अध्याय में व्युत्पत्ति की दृष्टि से धनपाल की तिलकमंजरी का मूल्यांकन किया गया है। यह अध्ययन (क) वेद-वेदांग, (ख) पौराणिक कथायें, (ग) दार्शनिक सिद्धान्त एवं (घ) अन्य शास्त्र नामक चार भागों में विभाजित किया गया है।

धनपाल उस युग के कवि हैं जिसमें राजाओं के दरबार में वैदग्ध्य तथा पाण्डित्य की सरणि बहा करती थी तथा कवि उस धारा में आकण्ठ निमग्न होकर अपनी काव्य कल्पनाओं को पल्लवित किया करते थे। उनकी रचनाओं में पांडित्य-प्रदर्शन की होड़-सी मची रहती थी। धनपाल के काव्य में भी उनके वैदग्ध्य की झलक पद-पद पर प्राप्त होती है तथा उनके विविधतापूर्ण पाण्डित्य का परिचय मिलता है। मुंज ने उन्हें "सरस्वती" विरुद से सम्मानित किया था।

वेद तथा वेदांग

वेद

वेद के लिए त्रयी शब्द का प्रयोग दो बार किया गया है।[2] वेद के लिए

---

1. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्।
   काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे। —मम्मट, काव्यप्रकाश, 1/3
2. (क) त्रयीमिव महामुनिसहस्रोपासित चरणाम्.... —तिलकमंजरी, पृ. 24
   (ख) त्रयीभक्त्येव गाढांचितहिरण्यगर्भकेशवेशेन.... —वही, पृ. 200

श्रुति शब्द भी दिया गया है ।[1] सामवेद के सामस्वरों का उल्लेख आया है ।[2] ऋक् साम व यजु इन्हें त्रयी के नाम से अभिहित किया जाता है । पाद से युक्त छन्दोबद्ध मन्त्रों को ऋक् या ऋचा कहते हैं । इन ऋचाओं के गायन को साम कहते हैं । इन दोनों से पृथक् गद्य-पद्यात्मक वाक्यों को यजु कहते हैं ।

सवन अर्थात् सोमरस का उल्लेख आया है ।[3] सोमरस की शोभा से युक्त, सामवेद के मन्त्रों के समान, वनावली सहित क्रीडा पर्वतों की प्रान्तभूमिया, द्विजों को आनन्दित करती थी । अग्नि, इन्द्र तथा आदित्य, तीनों लोकों के देवताओं को प्रातः, मध्यान्ह एवं सायकाल तीन बार सोमरस (सवन) दिया जाता है ।

चरण[4] तथा शाखा[5] पद का उल्लेख आया है । चरण का अर्थ है शाखाध्येता, अर्थात् जो किसी एक शाखा का अध्ययन करता है । यज्ञ के लिए सप्ततन्तु शब्द का प्रयोग हुआ है ।[6] ऋग्वेद में भी यज्ञ के लिए सप्ततन्तु शब्द प्रयुक्त हुआ है ।[7]

अप्रतिरथ नामक मन्त्रों का उल्लेख किया गया है । समरकेतु के प्रयाण के समय पुरोहित द्वारा अप्रतिरथ मन्त्रों का पाठ किया जा रहा है ।[8] अप्रतिरथ ऋग्वेद का सूक्त है ।

इन्द्र तथा वृत्रासुर के युद्ध का उल्लेख मिलता है ।[9] ऋग्वेद के इन्द्र सूक्त में इसका वर्णन किया गया है ।

वरुण का पाश विमोचक के रूप में वर्णन किया गया है । मलयसुन्दरी द्वारा गले में पाश डालकर अशोक वृक्ष से लटककर आत्महत्या करने के प्रसग में बन्धुसुन्दरी वरुण का आह्वान करती है ।[10]

---

1 वही, पृ 21

2 सवनराजिभि सामस्वरैरिव क्रीडापर्वतकपरिसरैरानन्दितद्विजा,
—वही, पृ. 11

3. वही, पृ. 11

4. त्रयीमिव महामुनिसहस्रोपासितचरणाम् ·· — तिलकमजरी, पृ 24

5 द्विजातिक्रियाणां शाखोद्धरणम्, —वही, पृ 15

6 असख्यगुणशालिनापि सप्ततन्तुद्यातेन · —वही, पृ 13

7 ऋग्वेद 10/52/4, 10/124

8 अप्रतिरथाध्ययनध्वनिमुखरेणपुर सरपुरोधसा
— तिलकमजरी, पृ. 115

9 वही, पृ 122

10 अतो वरुणो भूत्वा सकरुण कुरु विपाशामिमाम् ।
पाशमोक्षणे तवैव वैचक्षणम् - तिलकमजरी, पृ 308

वैदिक धर्म के अनुसार पुत्रहीन व्यक्ति पुत् नामक नरक में जाता है।[1] तिलकमंजरी में इसका उल्लेख किया गया है।[2]

वेदांग

शिक्षा

वेद का घ्राण शिक्षा को कहा गया है। इसमें वर्णों के उच्चारणादि के के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है। शिक्षा में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित तीन प्रकार के स्वर कहे गये हैं। तिलकमंजरी में उदात्त तथा स्वरित स्वरों का उल्लेख किया गया है।[3]

कल्प

तिलकमंजरी में यज्ञ सम्बन्धी अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। मेघवाहन के राजकुल की यज्ञशालाओं में सान्तातिक अनुष्ठान किये जा रहे थे।[4] मध्याह्न-काल में वैश्वदेवयज्ञ करने का उल्लेख मिलता है।[5] प्रातःकाल मे अग्निहोत्र यज्ञ का वर्णन किया गया है।[6] अग्निहोत्र तथा वैश्वदेवाग्नि का उल्लेख आया है।[7] यज्ञ में प्रयुक्त अरणि अर्थात् निर्मन्थकाष्ठ विशेष का उल्लेख किया गया है।[8]

छन्द

वृहती तथा जगती नामक वैदिक छन्दों का उल्लेख किया गया है। छन्दशास्त्र के लिए छन्दोविचितिशास्त्र नाम दिया गया है।[9] छन्दों में उपजाति छन्द को सर्वोत्कृष्ट माना है।[10] इसके अतिरिक्त तिलकमंजरी में प्रयुक्त विभिन्न छन्दों से धनपाल के इस शास्त्र से सम्बन्धित ज्ञान का पता चलता है।

---

1. पुनाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः
   तस्मात् पुत्र इति ख्यातः इति वैदिकधर्मेण।
   —तिलकमंजरी पराग-टीका, भाग I, पृ. 80
2. ""आत्मानं त्रायस्व पुनाम्नो नारकात् 'इति सोत्प्रासं'
   शासितस्येव गुरुकृतेन श्रुतिधर्मेण। —तिलकमंजरी, पृ. 21
3. उदात्तेनापि स्वरितेन"""" —वही, पृ. 13
4. आरब्धनिर्विच्छेदसान्तानिककर्मकाम्यक्रतुशालम्"" —वही, पृ 63
5. गृहाभिमुखतरुशाखासीनवायसकुलावलोकितवलिपुह्यमानेपुवैश्वदेवानलेपु""
   —तिलकमंजरी, पृ. 68
6. प्रसृततापसाग्निहोत्रधूमान्धकारे""। — वही, पृ. 151
7. ""अग्न्याहिताग्नेरिवा। —वही, पृ. 201 तथा पृ. 68
8. वही, पृ. 201
9. छन्दोविचितिशास्त्रमिव वृहत्या जगत्या भ्राजितम्""
   —तिलकमंजरी, पृ. 115
10. उपजातिमिव छन्दोजातीनाम्"""" —वही, पृ. 159

व्याकरण

व्याकरणशास्त्र का उल्लेख किया गया है।[1] वैयाकरण को शब्द-शास्त्रकार कहा गया है तथा व्याकरण को शब्द-विद्या।[2] शब्द-विद्या को सभी विद्याओं में श्रेष्ठ कहा गया है।[3] समस्त पद का उल्लेख प्राप्त होता है।[4] पदो के विग्रह के विषय मे कहा गया है।[5] स्वर तथा व्यंजन का उल्लेख प्राप्त होता है।[6] ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर एवं व्यजनों का उल्लेख किया गया है।[7] उपसर्ग सहित धातु कही गई है।[8] लिंगत्रय पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग शब्दो का प्रयोग हुआ है।[9] बहुवचन पद का प्रयोग किया गया है।[10]

ज्योतिष

ज्योतिष विद्या के लिए निमित्तशास्त्र शब्द का प्रयोग हुआ है।[11] ज्योतिषी को नैमित्तिक कहा गया है।[12] हरिवाहन के राज्याभिषेक के प्रसंग मे पुरुदश नामक राजनैमित्तिक का उल्लेख आया है।[13] ज्योतिष शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।[14] ज्योतिषी के लिए अन्य शब्द सावत्सर (263), गणक (76) मौहूर्तिक (95,131), ज्योतिर्गणितविद्भि. (115) प्रयुक्त हुए हैं। ज्योतिष के मुहूर्त (75) तिथि (75), वार (75), करण (75), ग्रह (75), लग्न (115), कला (114) आदि पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग हुआ है। ग्रहो की उच्च स्थिति, ग्रह-बल,

---

1 लिपिविशेषदर्शन · व्याकरणादीनि शास्त्राणि —वही, पृ 79
2 वही, पृ 134, 159
3 शब्दविद्यामिव विद्यानाम्, —तिलकमंजरी, पृ 159
4. समस्तानेकपदा अप्याजस्विता विजहु., —वही, पृ. 15
5 पदाना विग्रहा, —वही, पृ 15
6 अस्वरवर्णां अपि पर न व्यजनमशिश्रियन्त शत्रव —वही, पृ 15
7 शब्दशास्त्रकारैरिव विहितह्रस्वदीर्घव्यजनकल्पनै —वही, पृ 134
8 धातुना सोपसर्गत्वम्. —वही, पृ 15
9 शब्द इव संस्कृतोऽपि प्राकृतबुद्धिमाधत्ते।
प्रसिद्धपुंभावोऽपि नपुंसकतया व्यवह्रियते।
सर्वदा स्त्रीलिंगवृत्तिरपि परार्थे प्रवर्तमान: पुंस्त्वमर्जयति। —वही, पृ 406
10. बहुवचनप्रयोग पूज्यनामसु न परप्रयोजनगीकरणेषु, —वही, पृ 260
11. वही, पृ 143, 263
12 वही, पृ 64
13. पुरुदशा नाम राजनैमित्तिको राजधानीपुरप्रवेशाय शनकैर्व्यजिज्ञपत्। —तिलकमंजरी, पृ 403
14. प्रयाणशुद्धिमिव प्रष्टुमुपससर्प परिणतज्योतिषम् ·· —वही, पृ 197

ग्रहों की दशा—फलादि के विषय में उल्लेख प्राप्त होते हैं।[1] होरा का उल्लेख आया है।[2]

अगस्त्य नामक नक्षत्र के उदय का उल्लेख आया है।[3] मकर तथा मिथुन राशियों का संकेत दिया गया है।[4] मृगशिरा नक्षत्र एवं सिंह राशि का उल्लेख किया गया है।[5] स्वाति तथा चित्रा नक्षत्र से युक्त आकाश का वर्णन प्राप्त होता है।[6] मकर, कुलीर (कर्क) तथा मीन राशियों का उल्लेख किया गया है।[7] मेष, वृष, तुला तथा धनु राशियों एवं रोहिणी नक्षत्र का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।[8]

सूर्यग्रहण का उल्लेख किया गया है। सूर्यग्रहण के अवसर पर मदिरावती द्वारा भूमि-दान करने का उल्लेख किया गया है।[9] सूर्य के दक्षिणायन होने का उल्लेख आया है। मकर सक्रमण से प्रारम्भ होकर मीन सक्रमण पर्यन्त छः मास तक सूर्य दक्षिणायन रहता है।[10]

पौराणिक कथायें

तिलकमंजरी में पौराणिक कथाओं का भण्डार भरा पड़ा है जिससे धनपाल के पौराणिक साहित्य के गहन अध्ययन का पता चलता है। रामायण महाभारत एवं पुराण सभी के उद्धरण लिए गए है। कहीं कथाओं का निर्देश उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, विरोधाभास आदि अलंकारों के माध्यम से दिया गया है तो कहीं पौराणिक व्यक्तियों, देवी-देवताओं, राजाओं, साधुओं, अप्सराओं, राक्षसादि का केवल नाम मात्र से संकेत किया गया है। रामायण, महाभारत तथा पुराणों से सम्बन्धित 50 से भी अधिक व्यक्तियों, जिनमें राजा, देवी-देवता, साधु,

---

1. तिलकमंजरी, पृ 75, 76, 263
2. ····उर्ध्वमुखपां होरायामग्रत एवं जातेन —वही, पृ. 76
3. वही, पृ. 25, 56
4. गगनमिव मकरमिथुनाध्यासितम्, —वही, पृ. 204
5. ग्रहचक्रालंकृते मृगभाजिसिंहोद्भासिते नमस्तल इव······ —वही, पृ. 217
6. शरत्नम इव स्वातिचित्रोदयान्वित······ —वही, पृ. 371
7. मकरकुलीरमीनराशिसंकुलेन······ —वही, पृ. 259
8. प्रमुख एव प्रवृत्तमेपस्य ततश्चलितसरोहिणीकवृपस्य क्वापि क्वापि विभाव्यमानतुलाधनुपः प्रभात एव प्रस्थितस्य तारकासार्थस्य······। —तिलकमंजरी, पृ. 150
9. एप दशसीर······सूर्यग्रहणपर्वणि देवाग्रहारः। —वही, पृ. 182
10. दक्षिणायनान्तदिनकृत इव······ —वही, पृ. 202

अप्सरायें राक्षसादि सम्मिलित हैं, की कथायें तिलकमजरी मे आयी है। इनसे धनपाल की पुराणेतिहास सम्बन्धी व्युत्पत्ति की जानकारी प्राप्त होती है। पुराण तथा इतिहास से अनभिज्ञ व्यक्ति ऐसे स्थलो का अर्थ नही जान सकता, जहा पौराणिक कथाओ का उल्लेख किया गया है।

अगस्त्य

अगस्त्य मुनि ने सातो समुद्रो के जल को अपने चुलुक मे भरकर पान कर लिया था।[1] इस प्रसिद्ध कथा का अनेक बार उल्लेख किया गया है।[2] अगस्त्य की घट मे उत्पत्ति मानी गयी है। उर्वशी को देखकर मित्र तथा वरुण का वीर्य यज्ञ के घड़े मे गिर गया था, जिससे अगस्त्य एव वशिष्ठ की उत्पत्ति हुई। कलश-योनि, कुम्भयोनि, कुटज (360) ये नाम भी इसी कथा की ओर सकेत करते हैं। तिलकमजरी मे इस कथा का सकेत तीन स्थानो पर दिया गया है।[3]

एक समय सुमेरु की स्पर्धा से विन्ध्यपर्वत निरन्तर बढने लगा। देवताओ की प्रार्थना पर अगस्त्य मुनि उसके पास गये, तब विन्ध्य उनके पैरो मे गिरकर याचना करने लगा। मुनि ने उसे अपने लौटने पर्यन्त उसी अवस्था मे स्थिर रहने का आदेश दिया, अत मुनि के वचनानुसार वह आज भी उसी स्थिति मे स्थित है। इस कथा[4] का उल्लेख तिलकमजरी मे अनेकधा प्राप्त होता है।[5]

---

1 पद्मपुराण, प्रथम खण्ड 19, महाभारत, 3,105

2 (क) आपीतसप्तार्णवजलस्य रत्नोद्गारमिव तीव्रोदानवेगानिरस्तमगस्त्यस्य, —तिलकमजरी, पृ 23
(ख) कवलितोऽगस्त्यचुलुकस्पर्धयेव ·· · — वही, पृ 249
(ग) ग्रस्तसागरागस्त्यजठरस्य ख्यातिदु खेनेव क्षीणकुक्षिम · · —वही, पृ 125
(घ) अगस्त्यजठरानलमिव पानावसरलग्नम्, — वही, पृ 121

3 (क) कलशयोनिप्रसादनायात· · ·· —वही, पृ 151
(ख) · ·· कुम्भयोनिनेव । —वही, पृ 262

4. महाभारत, 3,104

5 (क) अप्रयत्नभग्नसततवर्धिपु भूभृत्सुद्गतिना ·· कुम्भयोनिनेव····· । —तिलकमजरी, पृ 262
(ख) कलशयोनिप्रसादनायातविन्ध्यशैल ·· ·· —वही, पृ 151
(ग) अभ्यर्थनापदेशस्तम्भितोदयमगस्त्यमुनिभियोद्धमुच्चलिताभिर्विन्ध्य-शिखरावलीभिरिव · —वही, पृ 82
(घ) मेरुमत्सरिणा · विन्ध्यगिरिणेव प्रतिदिन प्रवर्धमानेन ·· —वही, पृ 160

अगस्त्य नक्षत्र के दक्षिण दिशा में चमकने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[1]

अर्जुन

अर्जुन अद्वितीय धनुर्धारी था ।[2] अर्जुन ने शिव से दिव्यास्त्र की प्राप्ति के लिए तपस्या की, जिसकी परीक्षा करने के लिए शिव ने किरात का वेश धारण किया था ।[3]

अभिमन्यु

कौरव-पांडव युद्ध में अभिमन्यु चक्रव्युह में फंस गये थे । इस कथा का संकेत प्राप्त होता है ।[4]

अंगद

अंगद वालि का पुत्र था । अंगदादि वानरों ने त्रिकूट पर्वत के पत्थरों से सेतु का निर्माण किया था (पृ 135) । अंगद के सुग्रीव की सेना में होने का उल्लेख किया गया है (पृ. 55) ।

इन्द्र

तिलकमंजरी में इन्द्र सम्बन्धी अनेक कथाओं का उल्लेख मिलता है । इन्द्र के 25 पर्यायवाची शब्द प्राप्त होते हैं, जिनसे उसकी भिन्न-भिन्न विशेषताओं का पता चलता है । इन्द्र के लिए प्रयुक्त शब्द—शक्र (5,142), सुरेन्द्र (7,74375), शतक्रतु (7), वासव (12,407), बिडौजस (14), पुरन्दर (30), त्रिलोकीपति (30), पाकशासन (39, 62, 163), त्रिदशपति (42), वृत्रशत्रु (39), आखण्डल (43, 71), त्रिदशनाथ (44), सुरपति (42), इन्द्र (62), शतमन्यु (78, 407), देवराज (99), वज्री (99), सक्रन्दन (105), अमरपति (121), जम्भारि (198), सहस्राक्ष (225), पुरुहूत (236), स्वर्णार्थ (262), मघवत् (305), शतमख (371) । इन्द्र स्वर्ग का स्वामि है (230, 42, 44, 121, 262) तथा वह सदा अपने पद के अपहरणके प्रति शंकित रहता है (पृ. 7, 24) । इन्द्र के द्वारा अपने वज्र से पर्वतों के पंख काट दिये जाने का अनेक स्थानों पर उल्लेख आया है (पृ. 71, 14, 35, 72, 262) ।[5]

---

1. भुवनत्रयाभिनन्दितोदयेन कुम्भयोनिनेव·········दक्षिणा दिक् ।
—वही, पृ. 262 तथा 25, 56
2. पार्थवत् पृथिव्यधिकधन्वी········ —वही, पृ. 95
3. वही, पृ. 36
4. अभिमन्युरिव चक्रव्यूहस्य········ अविशन्मध्यम् —वही, पृ. 89
5. ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः ।
पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण ततः शतसहस्रशः ॥
—वाल्मीकि; रामायण, सुन्दरकाण्ड 1, 124

इन्द्र ने जम्भ नामक दैत्य का वध किया था (198)। इन्द्र ने बलादि असुरो को पराजित किया था (पृ 35)। इन्द्र की पत्नी का नाम शची था, जो पुलोम ऋषि की पुत्री थी, अत उसे पुलोमदुहिता भी कहा जाता है। इन्द्र के पुत्र का नाम जयन्त था (105)। इन्द्र विष्णु के ज्येष्ठ भ्राता थे, अत शची को लक्ष्मी की ज्येष्ठजाया कहा गया है।[1] इन्द्र की नगरी अमरावती है (पृ 40)। इन्द्र का वाहन ऐरावत हाथी है (पृ. 74)। एक हजार नेत्र होने से इन्द्र को सहस्राक्ष कहा गया है।[2] इन्द्र ने निवात एव कवच नामक असुरो के साथ युद्ध किया था।[3] इन्द्र तथा वृत्रासुर के प्रसिद्ध सग्राम का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[4] अत तिलकमजरी मे इन्द्र सम्बन्धी वैदिक एव पौराणिक दोनो कथाओ का सकेत प्राप्त होता है।

उर्वशी

यह स्वर्ग की प्रमुख अप्सरा है।[5]

ऐरावत

यह इन्द्र का वाहन है। इसके अपरनाम सुरेन्द्रवाहन (74), ऐरावण (पृ 54, 121), शतमन्युवाहन (78) है। ऐरावत की पत्नी का नाम अभ्रमू है (पृ 57)। ऐरावत पर बैठे इन्द्र का उल्लेख आया है (पृ 105)। ऐरावत की समुद्र से उत्पत्ति हुई थी तथा इन्द्र ने इसका अपहरण कर लिया था (पृ 54)।[6]

कपिल

कपिल मुनि ने सगर के पुत्रो को अपने तेज मे भस्मीभूत कर दिया था। इस कथा का उल्लेख किया गया है।[7]

कुबेर

यह स्वर्ग का कोषाध्यक्ष तथा नवनिधियो का स्वामी है (पृ 57) यह उत्तर दिशा का अधिष्ठाता कहा गया है (पृ 198) इसके अपरनाम धनद (406), वैश्रवण है (23, 198)। चैत्ररथ नामक इसका वन है। नलकूबर कुबेर

---

1 उपनीतश्च जन्मनिकुमारजयन्तस्य ज्येष्ठजायेनि जातपुलकया पुलोमदुहितु — तिलकमजरी, पृ 43
2 ऐरावताधिरूढ सहस्राक्ष इव साक्षादुपलक्ष्यमान, —वही, पृ 105
3 निवातकवचयुद्धमिव मुक्ताफलवज्रेन्द्र ... —वही, पृ 122
4 वृत्रमिवोपकण्ठलग्नवज्रानुविद्धफेनच्छटापहृतहृदयासु — वही पृ 122
5 वही, पृ 42, 172, 312
6 शतमखहृतैरावणादिसहोदरोदन्त ... — वही, पृ 54
7. वही, पृ 9

का पुत्र है (पृ. 163) जो रूप में अद्वितीय है। अलकापुरी कुबेर की राजधानी है (पृ. 23)।

कामदेव

शिव ने अपनी तपस्या भंग करने में प्रयत्नशील कामदेव को अपनी नेत्राग्नि द्वारा भस्मीभूत कर दिया था। इस कथा के अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलते है (पृ. 23, 104, 162, 248, 266, 276)। रति की प्रार्थना से द्रवित होकर उसे पुनर्जन्म प्रदान किया गया, इस कथा का भी उल्लेख आया है।[1] रति कामदेव की पत्नी है, अत उसे रतिभर्तृ कहा गया है। (पृ 323)। कामदेव को पुष्पधन्वा तथा कुसुमास्त्र कहा गया है। उसे पचबाण भी कहा गया है क्योंकि अरविन्द, अशोक, चूत, नवमालिका तथा रक्तोत्पल ये पांच पुष्प उसके बाण हैं।

कुम्भकर्ण

यह रावण का भाई, दीर्घ निद्रा के लिये प्रसिद्ध था (पृ. 135, 1 6)।

कृष्ण

कृष्ण द्वारा यमुना के जल से कालिय सर्प को खींच निकालने की कथा का उल्लेख प्राप्त होता है (पृ. 52)।[2]

कुमार

कुमार कार्तिकेय शर के वन में उत्पन्न हुए थे (पृ. 21)। कुमार की माताएं कृत्तिकाएं थी।[3]

गरुड़

यह पक्षियों का राजा कहा गया है (पृ. 86)। यह विष्णु का वाहन है (पृ. 86)। यह सर्पों का शत्रु है एवं उनका भक्षण करता है (पृ. 122) इसको तार्क्ष्य भी कहते हैं (122)।

जटायु

राम द्वारा जटायु को निवापांजलि प्रदान करने का उल्लेख है (पृ. 135)।

परशुराम

ये जमदग्नि के पुत्र थे, अतः इन्हे जामदग्न्य कहा गया है। परशुराम द्वारा अपने पिता जमदग्नि की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये 21 वार क्षत्रियों

---

1. मकरकेतोरिवास्य स्वत्प्रसादादवगतेन पुनरुज्जीवनेन रतिरिव कृतार्थाहमुपजाता। –तिलकमंजरी, पृ. 347
2. विचकर्ष संकर्षणानुज इव कालिन्दतनयातरंगात् कालियम्। –वही, पृ. 52
3. कृत्तिकापुंजेनेव कमारशब्दविप्रलब्धेन''''तिलकमंजरी, पृ. 100

का विनाश किया गया था। इस कथा का उल्लेख तिलकमंजरी मे मिलता है।[1] परशुराम द्वारा अपने बाणो से क्रौंच पर्वत के छेदन की कथा का उल्लेख भी किया गया है (पृ 8)।

पार्वती

पार्वती हिमालय की पुत्री थी, अत उसे अचलकन्या (पृ 22) *शैलराजदुहिता* (पृ *74*) कहा गया है। गणेश इनके पुत्र थे (पृ *74*)। ये शिव की पत्नी है (पृ 17)।

पाराशर

पाराशर द्वारा धीवरकन्या मत्स्यगन्धा से गान्धर्व विवाह की कथा[2] का उल्लेख प्राप्त होता है।[3]

पृथु

राजा पृथु के आदेश से सुमेरु पर्वत ने गो रूपी पृथ्वी से रत्नादि का दोहन किया था। इस कथा का सकेत प्राप्त होता है।[4]

बलि

बलि के दान की कीर्ति सर्वत्र फैल गयी थी (पृ 203)। विष्णु ने अपने पैर से इसे पाताललोक मे भेज दिया था (पृ 2, 242)।

बलराम

ये कृष्ण के अनुज हैं (पृ 52)। हल धारण करने मे इनका नाम लागली पड़ा (पृ 16)। बलराम ने अपने हल से यमुना की धारा को वृन्दावन मे खीच लिया था।[5] इस कथा का सकेत दिया गया है।[6]

ब्रह्मा

ब्रह्मा की विष्णु के नाभिकमल से उत्पत्ति की कथा का उल्लेख किया गया है।[7] अत इन्हे पुरुषोत्तमनाभिमुख (1) तथा कमलयोनि (24) कहा गया है। अन्य नाम स्वयम्भू (6), प्रजापति (6, 12), ब्रह्मा (24), विधि (24, 299, 176, 243, 313), वेधस (36, 78), हिरण्यगर्भ (200, 206), विधाता

---

1 दुर्विनीतक्षत्रियनरेन्द्रनिहतस्य जनयितुर्जामदग्न्यमुनिरिव ·
तिलकमजरी, पृ 51

2 महाभारत, 1, 63 भागवतपुराण 1, 3

3. योजनगन्धामिव पाराशर · –तिलकमजरी, पृ 129

4 पृथुपार्थिवोपदेशात्सुमेरुमुख्यैः · वही, पृ 277

5 वामनपुराण 5, 8–11

6 लागलीव कालिन्दीजलवेणिका ··· सुदूरमाचकर्ष। तिलकमजरी, पृ 17

7 वही, पृ 1, 241, 206

(248) दिये गये हैं। ब्रह्मा के च र मुखों का वर्णन प्राप्त होता है।[1] अतः इन्हें चतुर्मुख कहा गया है। देवी सरस्वती को ब्रह्मा के मुख में स्थित कहा गया है।[2]

मन्दार

मन्दार पर्वत के द्वारा समुद्र का मन्थन किया गया था (पृ. 76)। मथन से थकित होकर मन्दार का क्रोधित होना (पृ. 214), तथा सुरों एवम् असुरों के द्वारा निर्दयतापूर्वक आलोडन से मन्दार पर्वत का थकना (पृ. 221) वर्णित किया गया है।

मन्दोदरी

यह रावण की पत्नी थी। (पृ 135)।

मैनाक

यह हिमालय का पुत्र है (पृ. 5, 8)। इन्द्र द्वारा पर्वतों के पंख काटने पर यह समुद्र में जाकर छिप गया था (पृ. 5, 8)। इसके समुद्र में निवास का उल्लेख किया गया है (पृ. 100)। मैनाक अन्य सभी पर्वतों के मध्य अकेला पक्ष सहित था (पृ. 102)। इसके समुद्र में छिप जाने पर दुःखी हिमालय के द्वारा इसके अन्वेषण का उल्लेख प्राप्त होता है।[3]

मारीच

मारीच द्वारा स्वर्णमृग का रूप धारण करने की कथा का संकेत मिलता है (पृ. 135)।

मारुति

हनुमान के द्वारा समुद्र के लंघन का उल्लेख हुआ है (पृ. 201)। हनुमान के द्वारा रावण के पुत्र अक्ष का वध करने की दुर्लभ तथा अप्रसिद्ध कथा का उल्लेख हुआ है।[4]

तुम्वरु

यह स्वर्ग का गायक एक गन्धर्व है (पृ 42)।

त्रिजटा

त्रिजटा नामक राक्षसी के राम के विरह से व्याकुल सीता के प्रति सखी भाव का उल्लेख किया गया है (पृ. 135)।

---

1. तिलकमंजरी, पृ. 312
2. वही, पृ. 1, 5
3. (क) मैनाकवियोगदुः खरुदितहिमाचलाश्रु जलमिव–वही, पृ. 203
   (ख) मैनाकमन्वेष्टुमन्तः प्रविष्टहिमवतेव···· –वही, पृ. 8
4. मारुतिना भुजवलेन भग्नोऽक्षः, –तिलकमंजरी, पृ. 135

त्रिशंकु

त्रिशंकु के स्वर्ग एवम् पृथ्वी के मध्य आकाश मे अधोमुख होकर अधर मे लटक जाने की प्रसिद्ध कथा[1] का सकेत दिया गया है (पृ. 23)। त्रिशकु राजा के द्वारा वशिष्ठ पुत्रो के श्राप से चाण्डाल बन जाने की कथा[2] का सकेत भी प्राप्त होता है।[3]

धन्वन्तरि

यह स्वर्ग का वैद्य कहा जाता है (पृ 55, पृ 159)। इसके समुद्र से उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है।[4]

नल

निषध के राजा नल की कथा प्रसिद्ध है।[5] राजा नल का उल्लेख पृ 13 पर किया गया है।[6]

नल

राम की वानरसेना के सेनापति नल नामक वानर का उल्लेख प्राप्त होता है।[7]

यम

यह मृत्यु का देवता है। इसे कृतान्त कहा गया है। यम का वाहन महिष है (पृ. 237)। इसे प्राण चुराने वाला चोर कहा गया है (पृ 410)। ससार का अन्त करने के कारण इसे कृतान्त (52,346,410) तथा अन्तक (185), प्रेतनाथ (318) कहा गया है। इसके अपरनाम धर्मराज (पृ 24) वैवस्वत (120) कीनाश (293,406) है। यम को यमुना के भ्राता के रूप मे वर्णित किया गया है (पृ 93,120,293)।[8] यमराज को कृष्णवर्ण का बताया

---

1 रामायण, 1, 50–61

2 वही

3 (क) त्रिशकोरिव प्रनष्टास्पृश्यसंनिधिपरिहारवासनं ''तिलकमजरी, पृ 134

(ख) त्रिशकुसपर्कजाशौचशोधनाय ' –वही, पृ. 23

4 दिव्योषधिरिव मथनोत्थितस्य धन्वन्तरेर्विस्मृता', –तिलकमजरी, पृ 159

5. महाभारत, आरण्यकपर्व

6 नलपृथुप्रभोऽप्यनलपृथुप्रभ, –अवाहा तिलकमजरी, पृ 13

7. '"सेनापतेर्नलस्य'' –वही, पृ 137

8 (क) आजिविपन्न" यमदर्शनागतया यमुनयेव ' वही, पृ 93

(ख) वैवस्वतानुजादेहलावण्येन लिप्ताभि '" –वही, पृ 120

(ग) कीनाशानुजाजलस्रोतसीव"" –वही, पृ 293

गया है (पृ 24)। क्रोधित यम की हुंकार एवं वक्र भ्रूकुटि का वर्णन किया गया है (86, 52)। यमराज के दूतों का उल्लेख किया गया है (पृ. 40)।

यमुना

यह यम की भगिनी है (पृ. 93,120,293)। बलराम द्वारा इसको अपने हल से खींच लेने की कथा का उल्लेख किया गया है (पृ. 17)।

रम्भा

यह स्वर्ग की अप्सरा है (42,172,312)। इन्द्र की सभा में रम्भा के लास्य नृत्य का उल्लेख आया है (पृ. 42)।

राम

राम दशरथ के पुत्र थे, अतः दाशरथि कहलाये (पृ. 135)। राम-रावण के युद्ध का उल्लेख किया गया है (पृ. 135)। रावण का वध करने के कारण इनका दशास्यदमन (136) नाम पड़ा। अन्य नाम रामचन्द्र (135) रामभद्र (136) हैं। राम द्वारा समुद्र पर सेतु निर्माण के लिये शरों से समुद्र का भेदन करने की कथा का संकेत दिया गया है।[1] राम-रावण युद्ध में वानरसेना द्वारा सेतु निर्माण का संकेत (पृ. 135) मिलता है।

रावण

यह लंकाधिपति राक्षससम्राट था (पृ. 95)। रावण द्वारा पार्वती को प्रसन्न करने के लिये अपना सिर काटकर देने की कथा का संकेत दिया गया है।[2] रावण द्वारा सीता-हरण की कथा का उल्लेख है।[3] सीता की उदासीनता से रावण का दुःखी होना।[4] व रावण द्वारा शिव की उपासना करने का उल्लेख है (पृ 122)। रावण द्वारा कैलाश पर्वत को अपने हाथों से उठा लेने की कथा का संकेत मिलता है।[5]

राहु

राहु द्वारा चन्द्रमा को ग्रसने की कथा का अनेक बार उल्लेख किया

---

1. (क) दाशरथिशरक्षुण्णातुर्कशितत्विषाम्····
   –तिलकमंजरी, पृ 160
   (ख) अनपेक्षितरामविशिखशिखिशिखाऽम्बरेण····जलनिधिना····
   –वही, पृ. 94
2. प्रणत्यनादरकुपित पार्वतीप्रसादनार्थमुपक्रान्तद्वितीयकण्ठच्छेद इव रावणः
   तिलकमंजरी पृ. 53
3. रावणादिवोत्पन्नपरदारग्रहणाभिलाषैः···· वही, पृ. 134
4. जानकीविमुखदुःखक्षामदशकण्ठ···· वही, पृ. 135
5. पौलस्त्यहस्तोल्लासित कैलासमिव हसन्तम्···· वही, पृ. 239

गया है (पृ 203, 47, 87,)। राहु को विधुन्तुद एवम् सैंहिकेय भी कहा जाता है (पृ 203, 87, 47)।

लक्ष्मण

यह राम के भ्राता एवं सुमित्रा के पुत्र थे, अत इन्हें सुमित्रात्मज (पृ 136) तथा सौमित्रि (204) कहा जाता है। लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला थी।[1] रावण के साथ युद्ध करते हुए ये मूर्च्छित हो गये थे।[2]

लक्ष्मी

यह विष्णु की पत्नी है (पृ 43)। इसकी उत्पत्ति समुद्र-मन्थन से हुई थी (पृ 205), अत समुद्र का उसके प्रति वात्सल्य दर्शित किया गया है (पृ 43)। मेघवाहन द्वारा राजलक्ष्मी की आराधना करने का वर्णन किया गया है (पृ 34, 46)। लक्ष्मी श्वेत कमल के आसन पर बैठती है एवम् कमलों के वन मे निवास करती है (पृ 54)। लक्ष्मी का निवास स्थान पद्म नामक महाह्रद कहा गया है (पृ 61)।

वासुकि

वासुकि नाग पाताल का अधिपति है (पृ 12, 57)।[3] समुद्र-मन्थन के समय बलि ने बलपूर्वक वासुकि को खींचा था।[4]

विभीषण

यह रावण का कनिष्ठ भ्राता था (पृ 135)। इसके द्वारा राम को रावण की शक्ति के विषय मे सूचना देकर सहायता की गई थी (पृ 136)। रावण की मृत्यु के पश्चात् लका मे विभीषण का सौराज्य स्थापित होने का उल्लेख किया गया है (पृ. 135)।

विष्णु

तिलकमजरी में विष्णु सम्बन्धी अनेक पौराणिक आख्यानो का संकेत मिलता है। विष्णु के लिए प्रयुक्त विभिन्न शब्द उनकी भिन्न-भिन्न विशेषताओ को लक्षित करते हैं। तिलकमजरी में विष्णु के निम्न 19 पर्याय दिये गये हैं— पुरुषोत्तम (1), अज (2), विष्णु (3), वासुदेव (11), अच्युत (13, 120), कमद्विप (16), दानवारि (20), सकर्षणानुज (52), असुरारि (43, 122), हरि

---

1. सौमित्रिचरितमिव विस्तारितोर्मिलास्यशोभम्, —वही, पृ. 204
2. शक्त्या समिति सुमित्रासुतस्य मूर्च्छानिपतनस्थानम्, —वही, पृ 136
3. वासुकिरपि·····पालयति पातालनगराणि। —तिलकमजरी, पृ 57
4. मथनाविष्टे बलिहठाकृष्टवासुकीफणापीठगलितं.···· —वही, पृ. 122

(43, 121) रथांगपाणि (86), शार्ङ्गि (121), मधुरिपु (42, 122, 241), वैकुण्ठ (160, 234), केशव (200, 239), दामोदर (206), यवनकाल (234), त्रिविक्रम (240), मुरारि (351)।

विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख मिलता है। विष्णु ने वामनावतार में अपने पाद-त्रय से पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्ग तीनों लोकों को नाप लिया था एवं बलि को पाताल भेज दिया। इस कथा का उल्लेख पृ. 2, 3 तथा 42 पर मिलता है। इनके वराहावतार (पृ. 15, 121, 234) का उल्लेख मिलता है, जिसके अन्तर्गत इन्होंने हिरण्याक्ष का वध किया था (पृ 121), इनके द्वारा कूर्मावतार में पृथ्वी को उठाने का संकेत मिलता है (पृ. 121, 15)। विष्णु ने मत्स्यावतार में समुद्र में गिरे हुए वेदों का उद्धार किया था।[1] विष्णु के नरसिंहावतार का उल्लेख मिलता है।[2] इन्होंने कंस का वध किया था, अतः कंसद्विप कहलाये (पृ. 16)। विष्णु सागर में शयन करते हैं (पृ. 16, 20, 120, 121)। शेषनाग इनकी शैय्या है (पृ. 20)। कल्पान्त में विष्णु की योग-निद्रा का उल्लेख किया गया है (पृ. 20)। लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए इन्होंने समुद्र-मंथन हेतु मंदराचल को उखाड़ लिया था (पृ. 11)।

विष्णु को मधुकैटभ नामक राक्षसों का शत्रु वर्णित किया गया है (पृ. 121, 122, 241)। विष्णु को शंख, चक्र, गदा, खड्ग तथा धनुष से युक्त वर्णित किया गया है (276)। इनका शंख पांचजन्य, चक्र सुदर्शन, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग है तथा शार्ङ्ग धनुष है (पृ. 276, 160, 121, 86)। विष्णु का वाहन गरुड़ है (पृ. 86)। समुद्र-मन्थन में विष्णु की भुजारूपी शृंखलाओं से मन्दराचल को बांधने का उल्लेख किया गया है (पृ. 239)।

विष्णु के पादाग्र से गंगा के उद्गम की कथा का उल्लेख किया गया है।[3] विष्णु के उदर में समस्त प्राणियों के निवास का वर्णन आया है।[4]

विश्वकर्मा

यह स्वर्ग का शिल्पी है (पृ. 220)।

---

1. विधेहि वेदोद्धारिणः शकुलस्य केलिम्‥‥‥
—तिलकमंजरी, पृ. 146 तथा 121
2. प्रौढ़केसरिमकरारितैः‥‥‥ —वही, पृ. 121
3. त्रिविक्रममिव पादाग्रनिर्गतत्रिपथगासिन्धुप्रवाहम्।
—तिलकमंजरी, पृ. 240
4. मुरारिजठरावासित इव व्यभाव्यत समग्रोऽपिभूतग्रामः।
—वही, पृ. 351

सगर

सगर के 60, हजार पुत्रो की कथा का उल्लेख किया गया है । सूर्यवंशी सगर राजा ने सौ अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किये जिनमे निन्यानवे यज्ञ पूर्ण हो जाने के बाद जब सौवा यज्ञ चल रहा था तब इन्द्र ने अपने पद के छिन लिए जाने के भय से यज्ञ का अश्व चुराकर, पाताल मे ले जाकर कपिल मुनि के आश्रम मे बाध दिया । सगर के 60,000 पुत्र उस घोड़े को ढूढते-ढूढते जब पृथ्वी खोदकर कपिल मुनि के आश्रम पहुँचे, तो उसे वहा देखकर वे मुनि को ही अपहरणकर्त्ता समझकर अपशब्द कहने लगे । ध्यान भग होने पर मुनि के तेज से वे भी तुरन्त जलकर भस्म हो गये । इस कथा[1] का उल्लेख पृ 9 पर किया गया है ।[2] जिनका पुनरोद्धार उन्ही के वशज भगीरथ ने अपनी तपस्या द्वारा गगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाकर किया । इसी कारण गगा भागीरथी कहलायी ।

सती

ये शिव की पत्नी तथा हिमालय की पुत्री है (पृ 5) । शिव का अपमान होने पर दक्ष की पुत्री सती द्वारा आत्माहुति (पृ 395) देने की कथा वर्णित की गयीहै । अन्यत्र सती के द्वारा शिव के शरीर मे प्रवेश करने का उल्लेख किया गया है ।[3]

समुद्र मन्थन

समुद्र मन्थन की प्रसिद्ध कथा का तिलकमजरी मे अनेको बार उल्लेख किया गया है (पृ 43, 205, 54, 159, 58, 211, 76, 121, 122, 203, 204, 214, 221, 234 239) ।

समुद्र मन्थन से अमृत की उत्पत्ति हुई थी (पृ 205), जिसका वितरण देवताओ मे किया गया था ।[4] ऐरावत की समुद्र-मन्थन से उत्पत्ति एव इन्द्र द्वारा उसका अपहरण (पृ 54), पारिजात वृक्ष की मन्थन से उत्पत्ति (पृ 54), समुद्र से कालकूट की उत्पत्ति पर देवो तथा दानवो का सम्भ्रमित होने (54) का उल्लेख है । चन्द्रमा, कौस्तुभमणि, सुधा, मदिरा इन सबकी प्राप्ति समुद्र-मन्थन से हुई, अत इन्हें लक्ष्मी का सहोदर-समाज कहा गया है (पृ 54)। कामधेनु की क्षीर-सागर से उत्पत्ति का उल्लेख है (पृ 58, 211)। दिव्य अश्व उच्चैःश्रवस की

---

1. रामायण 1 1, 42-44, महा 3, 108, भाग पु 99
2. कपिलकोपानलेन्धनीकृतसगरतनयस्वर्गवार्तामिव प्रष्टु भागीरथीम् ... —वही, पृ 9
3. मैनाकेन महार्णवे हरतनौ सत्या प्रवेशेकृते, —तिलकमजरी, पृ. 5
4. पीयूषदानकृतार्थीकृतसकलाधिसुरसार्थेनमथनविरत —वही, पृ 43

उत्पत्ति भी समुद्र-मन्थन से हुई (पृ. 121)। समुद्र से अप्सराओं की भी उत्पत्ति हुई (पृ. 122)।

सीता

यह जनक की पुत्री है अतः जानकी (पृ. 135) जनकदुहिता (पृ. 136) तथा मैथिली (पृ. 135) नाम है। ये राम की पत्नी थी। सीता की अग्नि-परीक्षा की कथा का उल्लेख किया गया है। राक्षसगृह में निवास करने के अपवाद रूप कलंक के निवारण हेतु सीता की अग्नि-परीक्षा ली गई।[1]

सुग्रीव

सुग्रीव राम का मित्र था। सुग्रीव की सेना में तार, नील तथा अंगद थे (पृ. 55)।[2] सुग्रीव द्वारा स्थापित शिविर भूमि का उल्लेख किया गया है। (पृ. 135)।

शत्रुघ्न

इनकी पत्नी का नाम श्रुतकीर्ति था (पृ. 13)।

शिव

शिव सम्बन्धी अनेक कथाओं का उल्लेख किया है। शिव के लिये प्रयुक्त शब्द उनकी विशेषताओं को प्रकट करते हैं (पृ. 16)। शंकर के द्वारा अन्धक नामक दैत्य का विनाश किया गया (पृ. 5,120,185), अतः इन्हें अन्धकाराति कहते हैं। शिव ने गजासुर का नाश किया (पृ. 185, 87) तथा प्रलयकाल में गजासुर के चर्म को धारण किया (पृ. 14), अतः इन्हें गजदानवारि विशेषण प्राप्त हुआ (पृ. 87)। प्रलयकाल में शिव के महाभैरव रूप का उल्लेख (पृ. 14) किया गया है, उनका अट्टहास (पृ. 84), प्रलयकाल में शिव का ताण्डव नृत्य (पृ. 239) वर्णित किया गया है। शिव विश्व के संहारकर्त्ता कहे गये हैं। शिव का निवास स्थान कैलास पर्वत है (पृ. 23)। शिव की जटा में अर्धचन्द्र (पृ. 23, 313, 44), शिव का गंगा को अपने सिर पर धारण करना (211)। शिव के तृतीय नेत्र से कामदेव का भस्मीभूत होना (23, 104, 162, 248, 266, 276) आदि वर्णित किये गये हैं।

शिव ने समुद्र-मन्थन से निकले विष का पान कर उसे कण्ठ में ही रोक लिया, अतः वे कण्ठेकाल कहलाये।[3]

---

1. अपनीतरक्षोगृहनिवासनिर्वादकलंकाया जनकदुहितुः·····
   –तिलकमंजरी, पृ. 136
2. सुग्रीवसेनामिव स्फुरत्तारनीलांगदाम्,
   –वही, पृ. 55
3. कण्ठेकालकूटकालिकामिव कालाग्नि कण्ठेकालस्य·····
   –तिलकमंजरी, पृ. 134

शिव के द्वारा अर्जुन की परीक्षा के लिये किरात का वेश धारण किया गया था। इस कथा का उल्लेख पृ 239 तथा 36 पर प्राप्त होता है इसी के आधार पर शिव को क्रीडाकिरात कहा गया है (पृ 236)। दक्ष के यज्ञ मे पति का अपमान होने पर सति ने अपनी आहुति दे दी, तब क्रोधित होकर शिव ने अपने शरीर की भस्म से दक्ष के यज्ञ का नाश कर दिया। इस कथा का उल्लेख पृ 395 पर प्राप्त होता है।[1] शिव के शरीर पर भस्म मलने का उल्लेख पृ 239 पर किया गया है। शिव तथा पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप का वर्णन किया गया है।[2]

95406

तिलकमजरी मे शिव के निम्नलिखित 23 नाम आये है शकर (313), रुद्र, (5), हर (5, 101, 266, 225), स्थाणु (6), शूलपाणि (12) महाभैरव (14, 84), शशांकमौलि (16), विशालाक्ष (23), ईशान (23, 162, 276), विषमाक्ष (24), त्र्यम्बक (43, 137, 203, 211), शूलायुध (397), गजदानवारि (87), खण्डपरशु (87, 239) मृगाकमौलि (16), धूर्जटि (104, 121), अन्धकाराति (120), शिव (198), ईश (800) नीललोहित (222), कण्ठेकाल (234), क्रीडाकिरात (239), गिरिश (247)।

शेषनाग

यह नागों का राजा है। फणिराज से मन्दरपर्वत के मध्यभाग को बाधकर समुद्र का मन्थन किया गया था (पृ, 204)। भुजगराज का मन्थन के श्रम से थकित होना (पृ 203), शेषाहि (पृ 23), शेषनाग द्वारा पृथ्वी को अपने फण पर धारण करने का उल्लेख है (पृ 54)।

दार्शनिक सिद्धान्त

धनपाल वैदिक एव पौराणिक साहित्य के अतिरिक्त दर्शनशास्त्र मे भी पूर्णत. निष्णात थे। यह तिलकमजरी मे प्रयुक्त अनेक दार्शनिक उपमाओ, उत्प्रेक्षाओं तथा अन्य उल्लेखों आदि के विवेचन से ज्ञात होता है।

सांख्य

धनपाल ने सांख्य के पुरुष एव प्रकृति, इन दो प्रमुख तत्वो का एक उपमा के प्रसग मे निरूपण किया है।[3] सांख्यमतानुसार अविद्या के कारण प्रकृति

---

1 दक्षाध्वरध्वसिभस्मागभास्वरेण • —वही, पृ 395

2 (क) • शम्भोरिवार्धनारीश्वरस्य, —वही, पृ 253

(ख) " शरीरार्धेन लब्धप्रियागमेंगामचलकन्याम् • —वही, पृ 313

(ग) भवानीव शम्भोर्द्वितीयापि भर्तुरेक शरीरमभवत्। —वही, पृ 263

3 दर्शनादेव चासौ जन्मसहभुव पुमानिव सांख्यपरिकल्पित प्रकृतिममुंचत्। —तिलकमजरी, पृ 278

के साथ पुरुष का पुष्करपलाशवत् निर्लिप्त सम्बन्ध होता है, किन्तु विवेकख्याति होते ही यही पुरुष त्रिगुणात्मिका सुखदुःख मोहस्वरूपा प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद करके अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।[1] इसी सिद्धान्त का संकेत धनपाल ने प्रस्तुत प्रसंग में दिया है। सांख्य दर्शन में सत्त्व, रजस्, तथा तमोगुण युक्त त्रिगुणकल्पना की गई है।[2] तिलकमंजरी में सत्त्व तथा रजोगुण का उल्लेख किया गया है।[3] विषय[4] एवं ज्ञानेन्द्रियों[5] का भी उल्लेख मिलता है।

योग

योग शब्द का प्रयोग किया गया है।[6] चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।[7] एक प्रसंग में कुम्भक प्राणायाम का संकेत प्राप्त होता है।[8] प्राणायाम का अर्थ है श्वास और प्रश्वास की गति को विच्छिन्न कर देना। श्वास बाहरी वायु को भीतर खींचने की क्रिया को कहते हैं और भीतरी वायु को बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है। उन दोनों का संचरण न होना ही प्राणायाम है। कुम्भक प्राणायाम में वायु को भीतर ही स्तम्भित कर दिया जाता है।[9]

एक अन्य उल्लेख में योगी द्वारा स्वरूप के साक्षात्कार का वर्णन है।[10] जिससे असम्प्रज्ञात समाधि का संकेत प्राप्त होता है।[11] अन्यत्र भी इसका संकेत

---

1. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका 64, 65
2. वही, पृ. 12, 13
3. सात्विकैरपि राजसभावाप्त ख्यातिभिः····
   –तिलकमंजरी, पृ. 10
4. स्पर्शगन्धवर्ण····विषयसौख्यमिव,
   –वही, पृ. 335
5. एवं च विकलीभूतसकलेन्द्रिया····   –वही, पृ. 335
6. तिलकमंजरी, पृ. 9
7. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः   पातंजलयोगसूत्र 1/2
8. अप्रयुक्तयोगामिरेकावयव प्रकटाननमरुतामपि गति स्तम्भयन्तीभिः····
   –तिलकमजरी, पृ. 9
9. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः
   –योगसूत्र 2/49
10. योगीज्ञानगोचरं चात्मनो रूपमध्यक्षविषयीकुर्वन्ति,
    –तिलकमंजरी, पृ. 45
11. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्   –योगसूत्र 1/17, 18, 1/3

दिया गया है।[1] समाधि[2] का उल्लेख मिलता है।[3] ध्यान का सकेत दिया गया है।[4] ध्यान एकाग्रता को कहते हैं।[5] पद्मासन, अपवर्ग, मोक्षादि शब्दो का उल्लेख किया गया है।[6]

वेदान्त

वेदान्त के विवर्तवाद का दो स्थानो पर सकेत प्राप्त होता है।[7] विवर्त तथा परिणाम ये दो सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। साख्य तथा योग परिणाम को मानते हैं तथा वेदान्त विवर्तवाद को स्वीकार करता है। विवर्त अतात्विक परिणाम को कहते हैं जैसे रज्जुखण्ड मे सर्प की प्रतीति।

न्याय वैशेषिक

वैशेषिक मत का दो स्थानो पर उल्लेख मिलता है।[8] वैशेषिक मत मे द्रव्य की प्रधानता तथा गुणो की गौणता मानी गई है। कणाद के वैशेषिक दर्शन मे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छ पदार्थों की व्याख्या की गई है। इसमे से द्रव्य पदार्थ को प्रधान एव नित्य माना गया है। द्रव्य अन्य सभी पदार्थों का आधार होने से प्रधान है।[9] द्रव्य समवायिकारण तथा गुणो

---

1 "क्षणदास्वपि समस्तवस्तुजातमुपजातयोगिज्ञान इव विज्ञातनिरवशेप-विशेषमावेदयति। –तिलकमंजरी, पृ 130

2 तदेवार्थमात्रनिर्भास स्वरूपशून्यामिव समाधि। –योगसूत्र 3|3

3 गृहीतगाढचिन्तामौनश्च दृढसमाधिस्थ इव –तिलकमजरी, पृ 130

4 अवधाननिश्चलेन चेतसा परमयोगीव –वही, पृ 141

5 तत्र प्रत्ययैकतानताध्यान। –योगसूत्र 3|2

6 (क) निबद्धपद्मासनाम् –तिलकमजरी, पृ 217
(ख) आबद्धपद्मासनाम्" वही, पृ 255
(ग) बद्धपद्मासनो" –वही, पृ 399
(घ) अपवर्गचलितधीरवर्गभिन्नसूर्यमण्डलरुधिर प्रवाह इव –वही, पृ 96
(ङ) विषमाश्वमण्डलमेदिन प्राप्तमोक्षा, –वही, पृ 89

7 (क) अमुक्तैस्यैव विवर्तैः –वही, पृ 126
(ख) अन्तकमिवोपजातगजविवर्तम्, –वही, पृ 185

8 (क) वैशेषिकमते द्रव्यस्य कूटस्थनित्यता। –तिलकमजरी, पृ 12
(ख) वैशेषिकमते द्रव्यस्य प्राधान्य गुणानामुपसर्जनभावो बभूव। –वही, पृ 15

9 *माधवाचार्य, सर्वदर्शनसग्रह, पृ 400*

का आश्रय होता है। द्रव्य नौ हैं, पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन।[1]

न्याय-दर्शन का उल्लेख किया गया है।[2] तर्क-विध्या का भी निर्देष दिया गया है।[3] नैयायिकों को प्रामाणिक तथा प्रमाणविद् कहा गया है।[4] न्यायशास्त्र में प्रमाणों का निरूपण हुआ है, अतः इसे प्रमाणशास्त्र भी कहा गया है। प्रमाण का अनेक स्थानों पर उल्लेख आया है।[5] प्रमाण का लक्षण है–प्रमाकरणं प्रमाणम् अर्थात् प्रमा का साधन प्रमाण है। प्रमा यथार्थ अनुभव को कहते हैं–यथार्थानुभवः प्रमा। अतः यथार्थानुभव के साधन को ही प्रमाण कहते हैं[6] न्यायशास्त्र में चार प्रमाण माने गये हैं–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान व शब्द प्रमाण।[7] समवायिकारण का उल्लेख मिलता है।[8] पट का समवायिकारण तन्तु है। यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते ततः समवायिकारणम्। यथा पटस्य तन्तु। प्रमेय का उल्लेख किया गया है।[9] ज्ञातव्य विषय को प्रमेय कहते हैं।

बौद्ध

बौद्धों के क्षणिकवाद का संकेत एक उपमा के अन्तर्गत मिलता है।[10] बौद्धों के अनुसार पदार्थों का द्वितीय क्षण में निरन्वय अर्थात् नाश हो जाता है।

बौद्धों के शून्यवाद का भी उल्लेख आया है।[11] बौद्धों में माध्यमिक शून्यवाद को मानते हैं।

---

1. तत्र समवायिकारणं द्रव्यम्। गुणाश्रयो वा। तानि च द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव। –केशवमिश्र, तर्क भाषा, पृ. 170
2. न्यायदर्शनानुरागिभिरपौरैः···· –तिलकमंजरी, पृ. 10
3. सत्तर्कविद्यामिव विधिनिरूपितानवद्य प्रमाणाम्। –वही, पृ. 24
4. (क) प्रमाणविद्भिरप्यप्रमाणविद्भिः···· –वही, पृ. 10
   (ख) परमतज्ञाः पौराः प्रामाणिकाश्च, –वही, पृ. 260
5. वही, पृ. 10. 260, 24
6. केशवमिश्र, तर्कभाषा, पृ. 13, 14
7. प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि –न्यायसूत्र, 1|1|3
8. रीत्युपादानकारणैः···· –तिलकमंजरी, पृ. 234
9. कदाचित् प्रमाणप्रमेयस्वरूपनिरूपणेन···· –वही, पृ. 104
10. यस्य दोष्णि स्फुरद्वेतौ प्रतीये विबुधैध्रुवः।
    बौद्धतर्क इवार्थानां नाशो राज्ञां निरन्वयः॥ –वही, पृ. 16
11. बौद्ध इव सर्वतः शून्यदर्शी····। –वही, पृ. 28

बुद्ध के दशबल नामका उल्लेख मिलता है।[1] दान, शील, क्षमा, अवीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल उपाय, प्रणिधि तथा ज्ञान, इन दस बलो के कारण बुद्ध को दशबल कहा जाता है।[2]

जैन

एक उपमा के प्रसग मे जैन दर्शन का उल्लेख मिलता है।[3] जैन दर्शन को आर्हत–दर्शन भी कहा गया है।[4] "नैगम" तथा "व्यवहार "जैन–दर्शन के पारिभाषिक शब्द हैं। जैन दर्शन मे ज्ञान के दो रूप माने गये हैं, प्रमाण और नय। प्रमाण का अर्थ वस्तु के उस ज्ञान से है, जैसी वह स्वय है और नय का तात्पर्य उस वस्तु के ज्ञाता के विशेष प्रसग अथवा सम्बन्ध मे ज्ञान से है। नय वह दृष्टिकोण है जिससे कि हम किसी वस्तु के विषय मे परामर्श देते हैं। वस्तु के अनेक धर्मों मे से किसी एक धर्म के द्वारा वस्तु का निश्चय करने पर नय का ज्ञान होता है।[5]

नैगम नय तथा व्यवहार नय ये दो नय के भेद हैं।

नैगम नय–किसी क्रिया के उस प्रयोजन से सम्बन्धित है, जो उस क्रिया मे आद्योपान्त उपस्थित है। जैसे कोई व्यक्ति अग्नि, जल, बर्तनादि ले जा रहा है तो यह ज्ञात होता है कि वह भोजन बनाने जा रहा है। यहा अन्य सभी क्रियायें भोजन बनाने के प्रयोजन से की जा रही है।

व्यवहार नय—यह व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित सर्वसाधारण का दृष्टिकोण है। इसमे वस्तुओ पर उनके मूर्त रूप मे विचार किया जाता है और उनकी व्यक्तिगत विशेषताओ पर जोर दिया जाता है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि धनपाल ने भारतीय दर्शन के साख्य, योग, वेदान्त, न्याय-वैशेषिक, बोद्ध तथा जैन इन छ. सिद्धान्तो का सम्यग् अध्ययन किया था।

अन्य शास्त्र

धर्मशास्त्र

तिलकमजरी मे धर्मशास्त्र एव उससे सम्बन्धित अनेक उल्लेख प्राप्त

---

1 ''बालदशबलनीलच्छदकलापाच्छादिताभि '' –वही, पृ 245

2 दान शील क्षमाऽवीर्यं ध्यानप्रज्ञाबलानि च
उपाय: प्रणिधिर्ज्ञानं दश बुद्धबलानि वै ॥
–वही, पराग टीका भाग 3, पृ 148

3 अर्हद्दर्शनस्थितिरिव नैगमव्यवहाराक्षिप्तलोका, –तिलकमजरी, पृ 11

4 माधवाचार्य, सर्वदर्शनसग्रह, पृ 104

5 शर्मा, रामनाथ, भारतीय दर्शन के मूल तत्व, पृ 96

होते हैं। मेघवाहन के मन्त्रिगणों को धर्मशास्त्र का ज्ञाता कहा गया है।[1] स्वयं मेघवाहन धर्म के प्रति पक्षपात रखने के कारण यज्ञादि कर्मों में धर्माधिकारी का स्थान ग्रहण करता था।[2] मेघवाहन की आज्ञा मात्र राज्य में अन्याय का विरोध करती थी, उसके धर्माधिकारी तो धर्म की शोभा थे।[3] पुरुषार्थ का उल्लेख किया गया है।[4] धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष पुरुषार्थचतुष्टय माने गये। प्रथम पुरुषार्थ धर्म का उल्लेख किया गया है।[5]

देव-ऋण, ऋषि-ऋण तथा पितृ-ऋण इन तीनों ऋणों का संकेत मिलता है। यज्ञ के द्वारा देव-ऋण से, वेदाध्ययन के द्वारा ऋषि-ऋण से तथा पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण से मुक्ति प्राप्त होती है।[6]

धर्म, अर्थ तथा काम को त्रिवर्ग कहा जाता है। इस त्रिवर्ग का उल्लेख किया गया है।[7]

जन्म के दसवें दिन नामकरण संस्कार का उल्लेख किया गया है,[8] किन्तु एक अन्य प्रसंग में जन्म के ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार निष्पन्न करने का उल्लेख है।[9]पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार दसवें दिन नामकरण का विधान किया गया है—'दशम्यामुत्थाय पिता नाम कुर्यात्'। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन पुत्र का नामकरण करना चाहिए—'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।' जन्म के ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन भी नामकरण का विधान है—'एकादशे द्वादशे वा पिता नाम कुर्यात्।' नामकरण

---

1. सचिवलोकोऽपि श्रुतत्वाद्धर्मशास्त्राणाम्.........
—तिलकमंजरी, पृ. 20
2. धर्मपक्षपातितया च द्विजातितपस्विजनकार्येषु महत्सु कार्यासनं भेजे।
—वही, पृ. 19
3. आज्ञैवान्यायं न्यषेधयद्धर्मो धर्मस्थेयाः, —वही, पृ. 15
4. सकलपुरुषार्थसिद्धिमिरिव......... —वही, पृ. 9
5. मर्यरितप्रथमपुरुषार्थसामर्थ्ये......... —वही, पृ. 297
6. 'राजन्! अध्वरस्वाध्यायविधानादानृण्यं गतोऽसि नः। पितृणामपि गच्छ' इति याचितप्रसूतेरिव प्रादुर्भूतधर्मवासनया संविहितैर्देवर्षिभिः,
—वही, पृ. 20
7. अनयास्माकमविकला त्रिवर्गसम्पत्तिः, —तिलकमंजरी, पृ. 28
8. समागते च दशमेऽह्नि कारयित्वा.........हरिवाहन इतिशिशोर्नाम चक्रे।
वही, पृ. 78
9. अतिक्रान्ते च दशमेऽह्नि.........मलयसुन्दरीति मे नाम कृतवान्।
—वही, पृ. 263

र ब्राह्मणो को गोदान एव स्वर्णदान देने का वर्णन किया गया है।[1] नामकरण के अतिरिक्त अन्नप्राशन तथा उपनयन सस्कार वेदोक्त विधि से सम्पन्न किये गये थे।[2] उसका छठे वर्ष मे उपनयन सस्कार किया गया था।[3]

गन्धर्व-विवाह का उल्लेख आया है। मलयसुन्दरी की माता गन्धर्वदत्ता का कुसुमशेखर के साथ गान्धर्व-विधि से विवाह सम्पन्न हुआ था।[4] इसी प्रकार तारक का प्रियदर्शना से गान्धर्व-विवाह हुआ था।[5] इसी प्रसग मे प्रतिलोम विवाह का भी उल्लेख आया है।[6] वैश्य पुत्र तारक का विवाह शूद्र कन्या प्रियदर्शना के साथ हुआ था क्योकि दुष्कुल से भी सुन्दर कन्यारत्न का ग्रहण करना शास्त्रानुकूल है।[7]

पितरो को निवाप-दान देने का अनेक बार उल्लेख आया है।[8] निवापाञ्जलि तिलोदक से दी जाती थी।[9] पितृ तर्पण का भी वर्णन आया है।[10] पचमी-श्राद्ध सम्पन्न करने का उल्लेख किया गया है।[11]

याज्ञवल्क्य-स्मृति में ब्रह्मचारी द्वारा ब्रह्मसूत्र धारण करने का विधान किया गया है—दण्डाजिनोपवीतानि मेखला चैव धारयेत् (1/29)। विद्याधरमुनि

---

1 दत्वासमारोपिताभरणा सवत्सा सहस्रो गा सुवर्णं च ··· —वही, पृ 78

2 अखिलवेदोक्तविधिना··· निर्वर्तितान्नप्राशनादिकसकलसस्कारस्य ··· —वही, पृ 78

3 अवतीर्णे च षष्ठे ·· उपनिन्ये च तेभ्य · · —वही, पृ 78-79

4 तामुपयम्यसम्यग्विहितेन विवाहविधिना गान्धर्वेण · —तिलकमजरी, पृ 343

5 वही, पृ 129

6 स्वजातिनिरपेक्षस्तत्रैव · —तिलकमजरी, पृ 129

7 'दुष्कुलादपि ग्राह्यमगनारत्नम्' इत्याचार्यवचनम् ·· —वही, पृ 129

8 (क) वत्स, निवापदानैरिदानीमायुष्मतासभाविता स्म ··· पितृभि, —वही, पृ 20

(ख) दशरथात्मजेन··· निवापाजलि, —वही, पृ 135

(ग) निवापसलिलाजलिभिव प्रदातुम्··· · —वही, पृ 409

9 दत्वा सगरसमाप्तप्राणेभ्यो ·· · तिलोदकं निवापाजलिम् · · वही, पृ 97

10 पुण्यासु कृष्णचतुर्दशीषु दुर्विनीतक्षत्रियनरेन्द्रनिहतस्य · करोमि तर्पणम्। —वही, पृ 51

11 उपकल्प्यमानपचमीश्राद्धम्, —वही, पृ 64

ने ब्रह्मसूत्र धारण किया था [1] व्रतावस्था में राजा मेघवाहन कुश-शय्या पर शयन करते थे ।[2] नैष्ठिक का उल्लेख किया गया है ।[3]

धर्मशास्त्र में दान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । तिलकमंजरी में ब्राह्मणों को दान देने का अनेक स्थानों पर उल्लेख है । श्रोत्रियों को दान में दी गई सवत्सा गायों से राजकुल की बाह्यकक्षा भर गई थी ।[4]

अपराधी व्यक्ति को दण्डित करने के लिए धर्मशास्त्रप्रणीत निग्रहविधियों-का उल्लेख है, जिनमें हाथ पैर काटना, देश-निकाला तथा गधे पर बैठाकर घुमाना ये प्रमुख हैं ।[5]

चान्द्रायण व्रत का उल्लेख मिलता है ।[6] पुत्र की कामना से अनेक प्रकार के व्रत धारण करने वाली अन्तःपुर की नारियों का वर्णन प्राप्त होता है ।[7] शिशुजन्म पर षष्ठी देवी की पूजा का विधान किया गया है ।[8] हरिवाहन के जन्म पर षष्ठी की पूजा की गई थी ।[9] इसी प्रकार जातमातृपटल का लेखन तथा आर्यवृद्धा देवी की पूजा का उल्लेख किया गया है ।[10] पुत्र-जन्म के छठे दिन रात्रि-जागरण करने का वर्णन मिलता है ।[11] गायत्रीमन्त्र के जप का उल्लेख है ।[3]

---

1. ………प्रकटोपलक्षमाणब्रह्मसूत्राम्, —तिलकमंजरी, पृ. 24
2. प्रकल्पितं कुशतल्पमगात् । —वही, पृ. 61
3. प्रतिपन्ननैष्ठिकोचितक्रियः……… —वही, पृ. 34
4. वही, पृ. 64
5. यदीदृशेऽप्यपराधे नैनमन्यायकारिणं करचरणकल्पनेन वा स्वदेश निर्वासनेन वा रासभसमारोपणेन वान्येन वा धर्मशास्त्रप्रणीतनीतिना निग्रहणेन विनयं ग्राहयति । —तिलकमंजरी, पृ. 112
6. चान्द्रायणादिविविधव्रतविधिः……… —वही, पृ. 345
7. पुत्रकाम्यन्तीभिरन्तःपुरकामिनीभिर्विधीयमानविविधव्रतविशेषम्, —वही, पृ. 65
8. मातृकासु पूज्यतमा सा च षष्ठी प्रकीर्त्तिता शिशूनां प्रतिविश्वेषु प्रतिपालनकारिणी । तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्त्तिकेयस्य कामिनीम् । —वही, पराग टीका, भाग 2, पृ. 185
9. आहरत भगवतीं षष्ठीदेवीम्, —वही, पृ. 77
10. आलिखत जातमातृपटलम्, आरभध्वमार्यवृद्धासपर्याम्, —तिलकमंजरी, पृ. 77
11. अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे, —वही, पृ. 78

पचाग्नि तप का उल्लेख है ।[1] महापातक[2] तथा दिव्य[3] आदि धर्मशास्त्र सम्बन्धी अन्य पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया गया है ।

आयुर्वेद

तिलकमजरी में आयुर्वेद का उल्लेख किया गया है । आयुर्वेद मे पारगत वैद्य हरिवाहन की देखभाल करते थे ।[4] इसके अतिरिक्त सन्निपात नामक व्याधि का उल्लेख अनेक बार किया गया है । मेघवाहन ऐश्वर्य रूपी सन्निपात से व्यामोहित नही था ।[5] सन्निपात ज्वर को रोगो मे प्रमुख कहा गया है ।[6] सन्निपात ज्वर मे मृत्यु की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है ।[7]

गलग्रह नामक रोग का सकेत मिलता है ।[8] चरक के अनुमार जिस मनुष्य का कफ स्थिर होकर गले के अन्दर ठहरा हुआ शोथ उत्पन्न करता है, उसे गलग्रह हो जाता है ।[9]

बहुगुल्म नामक उदर रोग उपवर्णित किया गया है ।[10] गुल्म हृदय तथा नाभि के बीच मे सचरणशील अथवा अचल तथा बढने-घटने वाली गोलाकार ग्रथि को कहते हैं ।[11] आयुर्वेद मे गुल्म के पाच भेद बताये गये हैं—(1) वातज (2) पित्तज (3) कफज (4) त्रिदोषज तथा रक्तज ।[12] यहा वातज गुल्म की ओर सकेत है ।

राजयक्ष्मा जिसे आजकल टी बी कहते हैं, का उल्लेख आया है ।[13]

---

1 वही, पृ 257
2 पचतप साधनविधानसलग्नं ·· वही, पृ 236
3 वही, पृ 12,253
4 वही, पृ 15
5 सर्वायुर्वेदपारगैभिषग्भि ·… —वही, पृ 78
6 अजडीकृत परमैश्वर्यसन्निपातेन, —वही, पृ. 14
7 सन्निपातज्वरपुर सरारोगा · · —वही, पृ 376
8 दत्तदीर्घनिद्रामहासन्निपाता , —वही, पृ 89
9 तिमीना गलग्रह , — तिलकमजरी, पृ 15
10 यस्य श्लेष्मा प्रकुपितस्तिष्ठत्यन्तर्गले स्थिर ।
आसु सजनयेच्छोथं जायतेऽस्य गलग्रह ॥ —चरकसहिता, 18/22
11. वातरोगोपहृत्तमिव बहुगुल्मसकुलोदरम्, —तिलकमजरी, पृ 212
12. भावप्रकाश, भाग 2, श्लोक 5
13 वही, श्लोक 1
14 सकलविपक्षराजराजयक्ष्मा ·… —तिलकमजरी, पृ 163

गणित

तिलकमजरी में गणित का संख्यान शास्त्र के नाम से अभिहित किया गया है ।[1] रेखा गणित का संकेत भी दिया गया है । रेखा गणित के लिए क्षेत्र-गणित शब्द प्रचलित था ।[2] रेखा गणित में प्रयुक्त लम्ब, भुज तथा कर्ण शब्दों का उल्लेख है ।

संगीत

तिलकमंजरी में संगीत सम्बन्धी विषयों एवं शब्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ है । इसमें संगीत के लिए गीतशास्त्र तथा संगीतज्ञ के लिए गान्धर्विक उपाध्याय शब्दों का प्रयोग किया गया है ।[3] संगीत की गोष्ठी का उल्लेख किया गया है तथा गायक को गाथक कहा गया है ।[4]

'संगीतकम्' शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है ।[5] गीत, नृत्य तथा वाद्य इन तीनों को सगीतक कहते हैं—

'गीतनृत्यवाद्यत्रयं प्रेक्षणार्थं कृतं संगीतकमुच्यते'

राग शब्द का अनेक बार प्रयोग किया गया है (पृ. 18, 70, 186) विशिष्ट रागों में पंचम तथा गान्धार का उल्लेख किया गया है ।[6] पंचम राग को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।[7] जिसमें नाभि से उठकर वायु वक्ष, हृदय तथा कण्ठ में विचरण करती हुई मध्यम स्थान को प्राप्त होती है उसे पंचम राग कहते हैं ।[8]

---

1. संख्यानशास्त्रेणेव नवदशालंकृतेन········ —वही, पृ. 229
2. क्षेत्रगणितमिव लम्बभुजकर्णोद्भासितम्, —वही, पृ 24
3. गीतशास्त्रपरिज्ञानदूरारूढगर्वैर्गान्धर्विकोपाध्यायैः········ — तिलकमंजरी, पृ. 70
4. (क) ········गीतगोष्ठीस्वरविचारा, —वही, पृ. 41 तथा 184
   (ख) वही, पृ. 18, 174
5. आनर्तितशिखण्डिना दत्तमार्जनमृदंगस्तनितगम्भीरेण स्वरेण संगीतकमिव प्रस्तावयन्········ — वही, पृ. 34 तथा 268
6. वही, पृ. 70, 57, 42
7. पंचमश्रुतिमिव गीतीनाम्, —वही, पृ. 159
8. वायुः समुत्थितो नाभेरुरोहृत्कण्ठमूर्धसु ।
   विचरन् मध्यमस्थानप्राप्त्या पंचम उच्यते ।।
   —तिलकमंजरी, पराग टीका, भाग 2, पृ. 172

स्वर का अनेक स्थानो पर उल्लेख है (41, 227, 372)। पचम एव षड्ज स्वरों का उल्लेख किया गया है।[1] जो श्रुति के बाद हो तथा अनुरणात्मक श्रोत्राभिराम और रजक हो, उसे स्वर कहते हैं।[2] स्वर सात हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार मध्यम, पचम, धैवत तथा निषाद।[3]

गीत का अनेकधा उल्लेख किया गया है। राग या जाति, पद, ताल तथा मार्ग—इन चार अगों से युक्त गान गीत कहलाता है।[4]

ग्राम शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है (186, 42, 57, 70)। ग्राम स्वरसघात विशेष को कहते हैं।[5] गान्धार-ग्राम का उल्लेख किया गया है।[6]

मूर्च्छना[7] शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है (पृ 57, 120, 42)। गीति शब्द का उल्लेख हुआ है।[8] स्थायी, आरोही तथा अवरोही वर्णों से अलकृत पद एव लय से युक्त गान-क्रिया गीति कहलाती है।[9] केका-गीति का उल्लेख आया है।[10] इसके अतिरिक्त आरोह तथा अवरोह,[11] ताल तथा लय[12] काकली-गीत,[13]

---

1 (क) सूच्यमानपचमस्वरप्रवृत्ति • —तिलकमजरी, पृ 227
(ख) क्रियमाणषड्जस्वरानुवाद इव ‥ · · —वही, पृ. 227
(ग) षड्जादिस्वरविभागनिर्णयेषु ‥ ‥ —वही, पृ 363

2 सगीत दर्पण, प्रथम खण्ड, 1/57

3 षड्ज ऋषभगान्धारौ मध्यम पचमस्तथा।
धैवतश्च निषादश्च स्वरा सप्त प्रकीर्तिता॥
—सगीतादामोदर, तृतीय स्तबक, पृ. 30

4 कैलाशचन्द्र देव, भरत का सगीत सिद्धान्त, पृ. 250

5. यथा कुटुम्बिन सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि।
तथा स्वराणा सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते॥
—तिलकमजरी, पराग टीका, भाग 1, पृ 120

6. तिलकमजरी, पृ 42, 57

7 स्वर सम्मूर्च्छितो यत्ररागतप्रतिपद्यते।
मूर्च्छनाभिति ता प्राहु कवयो ग्रामसम्भवाम्॥
—तिलकमजरी, पराग, भाग 2, 120

8 कल्पतरुतलनिषण्णकिनरारब्धगान्धारग्रामगीतिरमणीयेषु,
—तिलकमजरी, पृ 57

9. कैलाशचन्द्र देव भरत का सगीत सिद्धान्त, पृ. 245

10. विनोदयितुमिव ‥ ‥ मधुरकेकागीतिभि. ‥‥‥
—तिलकमजरी, पृ 180

11. कृतारोहावरोहया‥‥‥दृष्ट्या ता व्यभावयत् —वही, पृ 162

12. वही, पृ 142

13. किनरकुलानां काकलीगीतमाकर्णयति, —वही, पृ 169

गमक,[1] श्रुति,[2] तान[3] आदि संगीत के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। सात स्वरों से उनपचास प्रकार की तानों की उत्पत्ति होती है। जहां मूर्च्छना के प्रयोग के लिए विस्तार किया जाय उसे तान कहते हैं।[4]

चित्रकला

तिलकमंजरी में चित्रकला से सम्बन्धित अनेक उल्लेख आए हैं तथा इनसे यह प्रमाणित होता है कि उस युग में यह कला अपने सर्वोत्कर्ष पर थी। चित्रकला को आलेख्यशास्त्र तथा चित्रविद्या कहा गया है तथा चित्रविद्या के शिक्षक को चित्रविद्योपाध्याय कहा है।[5] हरिवाहन ने चित्रकला में विशेष निपुणता प्राप्त की थी।[6] हरिवाहन तिलकमंजरी के चित्र-दर्शन से ही उस पर आसक्त हो गया था।[7] हरिवाहन ने गन्धर्वक लिखित तिलकमजरी के चित्र की, चित्रकला की दृष्टि से सम्यक समीक्षा की थी।[8] चित्र-लेखन में चित्त की एकाग्रता अत्यन्त आवश्यक है।[9]

चित्रलेखा चित्रकला में अत्यन्त प्रवीण थी, अतः तिलकमंजरी की माता पत्रलेखा ने उसे सुन्दर आकृति वाले राजकुमारों के विद्ध चित्र बनाने का आदेश दिया था।[10] विद्ध एवं अविद्ध यह चित्रकला के दो प्रकार थे। विद्ध चित्र वे होते थे, जिनमें वस्तु का यथार्थ चित्रण होता था। हरिवाहन के चित्रपट पर लिखित विद्ध रूपों का राजकन्यायें अपहरण करा लेती थीं।[11] मलयसुन्दरी ने

---

1. स्पष्टमूर्च्छनागमकरचितम्…… —वही, पृ. 186
2. पंचमश्रुतिमिव गीतीनाम्, —वही, पृ. 159
3. कलमविकलग्रामतानम्…… —वही, पृ 186
4. विस्तार्यन्ते प्रयोगायमूर्च्छना शेषसंश्रया।
   तानास्तेऽप्यूनपंचाशत् सप्तस्वरसमुद्भवा॥
   – तिलकमंजरी, पराग टीका, भाग, 3 पृ. 41
5. तिलकमंजरी, पृ. 177
6. विशेषतश्चित्रकर्माणि वीणावाद्ये च प्रवीणताप्राप। —तिलकमंजरी पृ. 79
7. वही, पृ 162
8. वही, पृ. 166
9. किं पुनश्चित्तैकाग्रतातिशयनिर्वर्तनीयचित्रम। —वही, पृ. 171
10. त्वंहि चित्रकर्मणि परं प्रवीणा। … …चित्रकौशलदर्शनव्याजेन दर्शय निसर्गसुन्दराकृतीनाभवनिगोचरनरेन्द्रदारकाणां यथास्वमङ्कितानि नामाभिर्यथावस्थितानि विद्धरूपाणि। —वही, पृ. 170
11. …द्वीपान्तरमहाराज… चित्रफलकारोपितो विद्धरूपो… कुमारः। —वही, पृ. 163

समरकेतु को एक बार देख लेने के बाद ही उसका चित्र बना लिया था।[1] काची नगरी में आकर समरकेतु ने सुन्दरी राजकन्याओ के विद्ध रूपो का अवलोकन किया था।[2]

चित्रकला मे विदग्धता के लिए चित्रगति शब्द प्रयुक्त हुआ है।[3] चित्र-लेखन मे प्रयुक्त नीले, पीले एव पाटल वर्णों का उल्लेख किया गया है। अगुलीयक के रत्नो से निकलने वाली नीली, पीली तथा पाटल वर्ण की द्युति से आकाश मे मानो वह (गन्धर्वक) राजपुत्र को प्रसन्न करने के लिए दूसरा ही चित्र-निर्माण कर रहा था।[4] चित्र मे विभिन्न रगो का यथोचित समायोजन किया जाता था।[5] तिलकमजरी स्वय चित्रकला मे अत्यन्त प्रवीण थी, अत मलयसुन्दरी ने हरिवाहन को तिलकमजरी से चित्रकला के विषय मे प्रश्न करने का अनुरोध किया।[6]

सामुद्रिकशास्त्र

सामुद्रिकशास्त्र के ज्ञाता को सामुद्रविद् कहा गया है।[7] तिलकमजरी की प्रस्तावना मे भोज के चरणो को सरोज, कलश, छत्र इत्यादि चिह्नो से युक्त कहा गया है।[8] निम्नलिखित चिह्नो से युक्त व्यक्ति को राजा कहा गया है—छत्र तामरस धनू रथवरो दम्भोलिकूर्माङ्कुशा वापीस्वस्तिकतोरणानि च सर पचानन. पादप। चक्र शङ्खगजौसमुद्रकलशौप्रासादमत्स्यायवा यूपस्तूपकमण्डलून्यवनिभृत् सच्चामरो दर्पण ॥[9] भोज को ही लम्बी और मासल भुजाओं वाला कहा गया है।[10] सामुद्रशास्त्र मे दीर्घ भुजाओ को प्रशस्त माना गया है।[11]

---

1. यथादृष्टमाकार तस्य नृपकुमारस्य सचार्य चित्रफलके —वही, पृ 296
2. राजकन्याना विद्धरूपाण्यादरप्रवर्तितं ··· —वही, पृ 322
3. तिलकमजरी, पृ 165
4. नीलपीतपाटलं ·· चित्रकर्मनर्मनिर्माणमम्बरेकुर्वाण —वही, पृ 164
5. यथोचितमवस्थापितवर्णसमुदाया ·· —वही, पृ. 166
6. वही, पृ 363
7. अवितथादेशसामुद्रविदाख्यातप्रसवलक्षणाना ··· —वही, पृ 64
8. वही, पृ 6
9. तिलकमजरी, पराग टीका, भाग 1, पृ 36
10. वही, पृ 6
11. बाहूवामविवलितौ वृत्तावाजानुलम्बितौ पीनौ।
    पाणी फणछत्राङ्कौ करिकरतुल्यौ समौ नृपतेः॥
    —सामुद्रिकशास्त्र, पृ. 34

प्रशस्त रेखाओं से युक्त ललाट का वर्णन किया गया है ।[1] छत्र के आकार के सिर का उल्लेख हुआ है ।[2]

मेघवाहन चक्रवर्ती के चिह्नों से युक्त था तथा उसका वक्षस्थल श्रीवृक्ष से चिह्नित था ।[3] दण्ड, अंकुश, चक्र, धनुष, श्रीवत्स, वज्र तथा मत्स्य ये चक्रवर्ती के चिह्न कहे गये हैं–

दण्डाङ्कुशो चक्रचापो श्रीवत्सः कुलिशं तथा ।
मत्स्यश्चैतानि चिह्नानि कथ्यन्ते चक्रवर्तिनाम् ॥[4]

हरिवाहन चक्रवर्तित्व के समस्त लक्षणों से युक्त था ।[5] दाहिने हाथ में कमल, शंख तथा छत्र के चिह्न प्रशस्त माने गये हैं ।[6] अंगूठे के मूल की स्थूल रेखाओं से संतान विषयक ज्ञान प्राप्त होने का वर्णन किया गया है ।[7] तिलकमंजरी के पदचिन्हों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है । उसकी पादपंक्ति शास्त्रोक्त प्रमाणयुक्त तथा कोमलावयवों से युक्त थी । वह कमल, चक्र, चामर तथा छत्रादि के सदृश निरन्तर गम्भीर प्रशस्त रेखाओं से अंकित थी ।[8]

साहित्यशास्त्र

तिलकमंजरी में साहित्यशास्त्र सम्बन्धी अनेक विषयों का उल्लेख प्राप्त होता है । प्रसाद, ओज तथा माधुर्य, काव्य के इन तीन गुणों का उल्लेख किया गया है । सुकवि की वाणी रीत्यानुसार प्रसाद गुण से युक्त कही गई है ।[9] ओज

---

1. अतिप्रशस्तललितललाटलेखाक्षरम्···· –तिलकमंजरी, पृ. 51
2. छत्रसदृशाकारम्···· –वही, पृ. 51
3. (क) चक्रवर्तिलक्षणैः स खलु····राजा मेघवाहनः, –वही, पृ. 39
   (ख) पृथुश्रीवृक्षलांछिते वक्षसि···· –वही, पृ. 39
4. हर्षचरित, रंगनाथ की टीका
5. स्फुटविभाव्यमानसकलचक्रवर्तिलक्षणाम्···· तिलकमंजरी, पृ. 77
6. श्लाघ्यशतपत्रशंखातपत्रलक्षणो दक्षिणपाणिः । –वही, पृ. 175
7. (क) अंगुष्ठकादिप्रश्नं प्रति प्रवर्तयता···· –वही, पृ. 64
   (ख) गृहीतवामकरतलांगुष्ठमूलस्थूलरेखासंख्यानाम्···· –वही, पृ. 64
8. आगमोक्तप्रमाणप्रतिपन्नसकलसुकुमारावयवामब्जचक्रचामरच्छत्रानुकाराभिरनल्पबहुभिरविच्छिन्ननिम्नाभि ···· प्रशस्तलेखाभिः···· –तिलकमंजरी, पृ. 245
9. सुकविवाचमिव मार्गानुसारिप्रसन्नदृष्टिपाताम्···· –वही, पृ. 24

तथा प्रसाद गुण का उल्लेख मिलता है।[1] मदिरावती के वर्णन मे अलकार एव माधुर्य गुण का उल्लेख आया है।[2] विरतिभग नामक काव्य-दोष का उपनिबन्धन किया गया है।[3] राजा मेघवाहन द्वारा कण्ठछेद के प्रसग मे शोक तथा जुगुप्सा नामक स्थायिभावो का उल्लेख आया है।[4] स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, स्तम्भ आदि सात्विक भावों का वर्णन किया गया है।[5] अमर्ष, मद, हर्ष, गर्व उग्रतादि व्यभिचारी भावो का निर्देष किया गया है।[6]

हरिवाहन, समरकेतु तथा उनके मित्रो ने मत्तकोकिल उद्यान मे काव्य-गोष्ठी का आयोजन किया, जिसमे प्रमुखत चित्रालकारो का विवेचन किया गया था।[7] इस प्रसग मे साहित्यशास्त्र सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्दो का उल्लेख किया गया है। उस गोष्ठी मे विद्वानो की सभा मे प्रसिद्ध पहेलिया बूझी गई।[8] प्रहेलिका का एक अन्य स्थान पर भी उल्लेख किया गया है।[9] उसी गोष्ठी मे बिन्दुच्युतक, मात्राच्युतक, अक्षरच्युतक श्लोको की विवेचना की गयी।[10] बिन्दुच्युतक मे बिन्दु के हटा दिये जाने पर, मात्राच्युतक मे मात्रा हटाने पर तथा अक्षरच्युतक में अक्षर हटाने पर दूसरे अर्थ की प्रतीति होने लगती है। बिन्दुमती

---

1 (क) प्रसत्तिमिव काव्यगुणसम्पदाम्, —वही, पृ 159
(ख) ओजस्विभिरपि प्रसन्नै —वही, पृ 10
(ग) समस्तानेकपदाअप्योजस्विता विजट्ट, —वही, पृ 15

2 उज्झितालकारामप्यकृत्रिमेणकान्तिसुकुमारतादिगुणपरिगृहीतेनागमा धुर्येण सुकविवाचमिव सहृदयाना हृदयमावजन्तीम् —वही, पृ 71

3 कुकविकाव्येषु यतिभ्र शदर्शनम्, —वही, पृ 15

4 अथ भीमकर्मावलोकन स्थायिभिरिव शोकमयजुगुप्साप्रभृतिभि ··· —वही, पृ 53

5 असाधारणधैर्यदर्शनादाहितव्रीडैरिव सात्विकैरपि स्वेदवैवर्ण्यवेपथुस्तम्भादि-भिरपास्तसनिधि, —वही, पृ 53

6 अव्याजसाहसावर्जितमनोवृत्तिभिरिव व्यभिचारिभि · भावै·, —वही, पृ 53

7. चित्रपदभङ्गसूचितानेकसुन्दरोदारार्था प्रवृत्ता कथचिनस्य चित्रालकार-भूयिष्ठाकाव्यकोष्ठी। —तिलकमजरी, पृ 108

8 तत्र च पठ्यमानासु विद्वत्सभालब्धख्यातिषु प्रहेलिकाजातिषु·· —वही, पृ 108

9 वही, पृ 394

10 बिन्दुमात्राक्षरच्युतकश्लोकेषु ·· —वही, पृ 108

का उल्लेख भी आया है।[1] विन्दुमती में श्लोक के व्यंजनों के स्थान पर बिन्दु रख दिये जाते हैं और अ को छोड़कर अन्य स्वरों के चिह्न लगा दिय जाते हैं। इसमें बिन्दुओं और स्वरों के चिह्नों की सहायता से श्लोक बनाया जाता है। इन सबके उदाहरण धर्मदाससूरि के विदग्धमुखमंडन में प्राप्त होते हैं। गोष्ठी में विविध प्रकार के बुद्धिकौशल से युक्त प्रश्नोत्तर किये गये।[2] प्रश्नोत्तर का अन्यत्र भी उल्लेख आया है।[3] गूढचतुर्थपाद का उल्लेख एक परिसंख्या अलंकार द्वारा किया गया है।[4] गूढचतुर्थपाद में श्लोक के तीन चरणों में चतुर्थ चरण छिपा रहता है।

वैदर्भी रीति तथा जाति अलंकार का उल्लेख भी आया है।[5]

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र का अनेक बार उल्लेख किया गया है। सेनापति वज्रायुध ने अर्थशास्त्र में निष्णात अमात्यों से परामर्श कर कांची की ओर प्रस्थान किया था।[6] मेघवाहन के अमात्यवर्ग ने समस्त नीतिशास्त्रों का सम्यग् अध्ययन किया था।[7] समरकेतु ने नीतिविद्या का सम्यक् अध्ययन किया था।[8] समुद्र-यात्रा के प्रसंग में समरकेतु के मुख से धनपाल ने अर्थशास्त्र पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है। समरकेतु ने अपने कर्णधार तारक से कहा कि वह अर्थशास्त्र सम्मत मार्ग से प्रयाण के प्रतिबन्धक देशकालादि कारणों को विघ्न की आशंका से भयभीत मंत्री के समान अकारण ही न दर्शाये।[9] इसी प्रकार समरकेतु कहता है कि फलाभिलाषी

---

1. वही, पृ. 394
2. चिन्त्यमानेषु मन्दमतिजनितनिर्वेदेषु प्रश्नोत्तरप्रभेदेषु····
   –वही, पृ. 108
3. कदाचित्प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकायमकचक्रबिन्दुमत्यादिभिश्चित्रालंकारकाव्यैः प्रपंचितविनोदः, –वही, पृ. 394
4. गूढचतुर्थानां पादाकृष्टयः, –तिलकमंजरी, पृ. 15
5. (क) वैदर्भीमिव रीतीनाम्, –वही, पृ. 159
   (ख) जाति मिवालंकृतीनाम्, –वही, पृ. 159
6. सेनापतिरर्थशास्त्रपरामर्शपूतमतिभिरमात्यैः सहकृतकार्यवस्तुनिर्णयः····
   –वही, पृ. 82
7. विदितनिः शेषनीतिशास्त्रसंहतेः···· –वही, पृ. 16
8. अधीतनीतिविधम्···· –वही, पृ. 114
9. मैकान्ततो विनिपातभीरुर्मन्त्रीव यात्राभियोगभंगार्थमर्थशास्त्रप्रदर्शितेन वर्त्मना देशकालसहायवैकल्यादीनि कारणान्यकारणमेव दर्शय।
   –वही, पृ. 143

पुरुष को सदा अनिवार्यत. नीति का पालन नही करना चाहिये ।[1] विधि के सहायक होने पर साहसी पुरुष की अनीति भी फल प्रदान करती है ।[2] राजा मेघवाहन ने नीतिशास्त्र मे विशेष अध्ययन किया था ।[3] समरकेतु को 'सुविदित दण्डनीते' (पृ 102) कहा गया है । दण्डनीति को राजा की प्रतीहारी के समान बताया गया है ।[4] नीतिशास्त्र को बुद्धि को तीक्ष्ण करने वाली कसौटी कहा गया है ।[5] दो स्थानो पर राज्यनीति का उल्लेख किया गया है । राज्यनीति के समान उसमे वर्ण एव समुदाय को यथाविधि स्थापित कर दिया गया था ।[6] राज्यनीति मे सत्री अर्थात् गुप्तचर के द्वारा परराष्ट्र के समाचार देने पर धन की प्राप्ति होती थी ।[7] नीतिमार्ग को तीन शक्तियो से अधिष्ठित कहा गया है ।[8] ये तीन शक्तिया प्रभाव, उत्साह तथा मन्त्र हैं ।[9]

षड्गुणो का उल्लेख किया गया है । मेघवाहन षड्गुणो के प्रयोग मे चतुर था ।[10] सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव व मन्त्र ये छ गुण कहे गये है ।[11] मेघवाहन ने चारों विद्याओं मे निपुणता प्राप्त की थी ।[12] ये चार विद्याए आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति है ।[13] एक अन्य प्रसग में चौदह विद्याए

---

1 फलाभिलाषिणा पुरुषेण नैकान्ततो नीतिनिष्ठेन भवितव्यम् ।
—तिलकमञ्जरी पृ 155

2 वही, पृ 155

3 अनायासगृहीतसकलशास्त्रार्थस्यापि नीतिशास्त्रेषु —वही, पृ 13

4 सन्निहितदण्डनीतिप्रतीहारीसमाकृष्टामि —वही, पृ 13

5 नीतिशास्त्रशाणनिशितनिर्मलप्रज्ञा ।" —वही, पृ 262

6 राज्यनीतिरिव यथोचितमवस्थापितवर्णसमुदाया —वही, पृ 166

7 राज्यनीतिरिव सत्रिप्रतिपाद्यमानवार्ताधिगतार्था —वही, पृ 11

8 (क) आयतिशालिनीभि शक्तिभिरिव नीतिमार्गेण —वही, पृ 54
(ख) नीतिशास्त्रनित्यविहितासत्तिर्व्यक्तव्यक्तशक्तित्रय" —वही, पृ 167

9 तिसृभि प्रभावोत्साहमन्त्ररूपैस्त्रिभि कारणैरुद्भूताभि शक्तिभिरिव
तिलकमजरी, पराग टीका, भाग 1, —पृ 142

10 षाड्गुण्यप्रयोगचतुर, —तिलकमजरी, पृ 13

11 "सन्धिश्चविग्रह यानमासन च समाश्रयम्' द्वैधीभाव च सविद्यान्मन्त्रस्यैतास्तु षड्गुणान् ।"
— तिलकमजरी, पराग टीका, भाग 1, पृ 59

12 चतसृष्वपि विद्यासु लब्धप्रकर्ष, तिलकमजरी, पृ 13

13 आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।
विद्याश्चैताश्चतस्रस्तु लोकसस्थितिहेतव ॥
—तिलकमजरी, पराग टीका, भाग 1, पृ 59

कही गयी हैं। हरिवाहन ने दस वर्ष की अवस्था में सभी उपविद्याओं सहित चौदह विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था।[1] षड्ङ्गों सहित चारों वेद, मीमांसा, आन्वीक्षिकी, धर्मशास्त्र तथा पुराण ये चौदह विद्याएं कही गयी हैं।।[2]

अर्थशास्त्र में सोलह वर्ष की आयुपर्यन्त विद्याध्ययन का विधान किया गया है। हरिवाहन ने सोलह वर्ष की आयु तक विद्याध्ययन किया था तथा षोडष वर्ष के पूर्ण होने पर मेघवाहन ने उसे अपने राजभवन में प्रविष्ट कराया।[3] समरनीति के अनुसार युद्ध में पराजित होने पर योद्धा अपने शस्त्र का त्याग कर देता है।[4] नीति के अनुसार युद्ध केवल दिन में ही होता था तथा रात्रि-युद्ध वीर क्षत्रियों के लिए हेय माना जाता था। रात्रि-युद्ध को सौप्तिक युद्ध कहते थे।[5] रात्रि युद्ध नीति के विरुद्ध माना गया है।[6]

कामशास्त्र

कामशास्त्र एवं कामशास्त्र सम्बन्धित विषयों का बहुलता से उल्लेख किया गया है। कामसूत्र का तीन बार उल्लेख आया है।[7] कामशास्त्र के लिए रतितन्त्र शब्द का भी प्रयोग मिलता है।[8] मेघवाहन द्वारा रतिसमर के विस्तार का वर्णन किया गया है।[9] दन्त-दशन, नख-क्षत, कच-ग्रह तथा कर-प्रहार आदि

---

1. दशभिरब्दैश्चतुर्दशापि विद्यास्थानानि सह सर्वाभिरुपविद्याभिर्विदांचकार। -तिलकमंजरी, पृ. 79
2. षडङ्गवेदाश्चत्वारो मीमांसाऽन्वीक्षिकी तथा। धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या एताश्चतुर्दश।। —तिलकमंजरी, पराग टीका भाग 2, पृ. 188
3. अतिक्रान्ते षोडशे वर्षे हर्षनिर्भरो राजा विसर्जितराकारणाय.... —तिलकमंजरी, पृ. 79
4. तिलकमंजरी, पृ. 93
5. क्षुद्रक्षत्रियलोकमुद्रितः सौप्तिकयुद्धमार्गः। —वही, पृ. 94
6. ....नायं क्रमो नयस्य, —वही, पृ. 95
7. (क)....साक्षादिव कामसूत्रविद्याभिः, —वही, पृ. 10
   (ख) कामसूत्रपारगैरप्यविदितवैशिकैः, —वही, पृ. 10
   (ग) कामसूत्रध्यात्मशास्त्रम्, —वही, पृ. 260
8. रतितन्त्रपरम्परापरामर्शरसिकमनसः.... —वही, पृ. 107
9. वही, पृ. 17

कामशास्त्रोक्त क्रियाओ का वर्णन किया गया है।[1] नौ प्रकार की रतियों का उल्लेख आया है।[2]

मत्त-कोकिल उद्यान मे प्रवृत्त काव्य-गोष्ठी मे मजीर नामक बन्दीपुत्र ने ताडपत्र लिखित एक अनग-लेख प्रस्तुत किया था। यह अनग-लेख प्रस्तुत किया था। यह अनग-लेख एक सक्षिप्त प्रेम-पत्र प्रतीत होता है, जिसमे विवाह के गुप्त स्थान का सकेत दिया गया है।[3] प्रथम दर्शन से प्रेम का आविर्भाव तथा उससे उत्पन्न होने वाले विकारो का वर्णन मलयसुन्दरी एव समरकेतु के प्रथम मिलन के प्रसग मे आता है।[4]

रतिकाल मे व्यक्त स्त्रियो के शब्द विशेष "मणित" का दो बार उल्लेख आया है।[5] वाजीकरण नामक कामशास्त्रोक्त पारिभाषिक शब्द का उल्लेख किया गया है।[6] हरिवाहन समस्त चौसठ कलाओ मे प्रवीण था।[7] तिलकमजरी ने समस्त कलाओ मे निपुणता प्राप्त की थी।[8]

नाट्यशास्त्र

तिलकमजरी मे नाट्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विषयो के अनेकश उल्लेख प्राप्त होते हैं, जो धनपाल के नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित विस्तृत ज्ञान का परिचय प्रदान करते हैं। नाट्यशास्त्र के लिए नाट्यवेद शब्द का प्रयोग किया गया है।[9] अयोध्या के नागरिको को नाट्यशास्त्र का अभ्यस्त बताया गया है।[10] नट के लिए शैलूष शब्द का प्रयोग हुआ है।[11] नर्तक एव नर्तकियो का अनेक बार उल्लेख किया गया है। नर्तकियो के लिए लासिकाजन शब्द भी प्रयुक्त

---

1 (क) निवेदयितुमिव दन्तच्छदच्छेदम्, —वही, पृ 278 तथा पृ 17, 365
(ख) कथयितुमिव नखच्छेदवैदग्ध्यम्, —वही, पृ 278
(ग) प्रपचयितुमिव ताडनक्रमम्, —वही, पृ 278 तथा पृ 15, 17
2 नवरतेपु बद्धरागामिरपि नीचरतेष्वसक्ताभि, वही, पृ 10
3 वही, पृ 108-9
4 तिलकमजरी, पृ 277-81
5 (क) अतिशयितसुरतप्रगल्भकेरलीकण्ठमणितम्" —वही, पृ 186
(ख) विदग्धकामिनीकेलिमन्दिरमिव मणितारावं" —वही, पृ 215
6 वाजीकरणयोगोपयोगो व्याधिभेपजम्, —वही, पृ 260
7. प्रथममनुविकलचतुःषष्टिकलाश्रयतया" —वही, पृ 362
8. लब्धपताका कलासु सकलास्वपि कौशलेन वत्सा —वही, पृ 363
9 तिलकमजरी, पृ 18 तथा 270
10 अभ्यस्तनाट्यशास्त्रैरप्यदर्शितमूनेत्रविकारै, —वही, पृ 10
11 रगशाला रागशैलूषस्य, —वही, पृ 23

हुआ है।[1] ताण्डव एवं लास्य नृत्य की इन दोनों विधियों[2] का अनेकधा उल्लेख किया गया है। नाट्यशास्त्र सम्बन्धी रंगशाला,[3] नाट्यशाला[4], रंगभूमि,[5] प्रेक्षाविधि,[6] प्रेक्षानृत्य,[7] नान्दी,[8] आदि पारिभाषिक शब्दों के अनेक उल्लेख आये हैं। स्वर्ग में स्वयं भरतमुनि द्वारा प्रणीत दिव्य प्रेक्षाविधि का सजीव चित्रण किया गया है। उन्नत प्रासाद की नाट्यशाला में रंगभूमि रचित कर स्वयं भरतमुनि ने दिव्य प्रेक्षाविधि का आयोजन किया, जो स्वयं ध्वनित मेघरूपी मृदंगों से मनोहर थी। एक कोने में बैठे तुम्बरु वीणा पर गान्धार बजा रहे थे। वेणु पर किन्नरगण स्वर्ग की प्रसिद्ध मूर्च्छना गा रहे थे। रम्भा रघु दिलीपादि प्रसिद्ध राजाओं के चरित का अभिनय कर रही थी। इस प्रकार समस्त अष्टादश द्वीपों के राजा दिव्य नाट्यविधि का आनन्द प्राप्त कर रहे थे।[9]

रस, अभिनय तथा भाव का उल्लेख प्राप्त होता है।[10] स्थायिभाव, व्यभिचारिभाव तथा सात्विक भावों का उल्लेख भी किया गया है।[11] मुग्धा एवं प्रौढ़ा इन दो नायिका भेदों का उल्लेख प्राप्त होता है।[12] प्रोषित भर्तृका एवं अभिसारिका नायिका भेदों का वर्णन भी आया है।[13] नाट्य अथवा नाटक के दस भेदों का उल्लेख एवं वीथि तथा डिम नामक भेदों का कथन किया गया है।[14]

---

1. कुरवकफलानि रंगशालासु लासिकाजनस्य निजावलोकनेन लास्यलीलायितानि···· तिलकमंजरी, पृ 61
2. वही, पृ. 61, 18, 87, 239
3. वही, पृ. 23, 61
4. वही. पृ. 41
5. वही, पृ. 57
6. वही, पृ. 57
7. वही, पृ. 75
8. वही, पृ. 76
9. भरतमुनिना स्वयमागत्य··· प्रेक्षाविधिम्। — वही, पृ. 57
10. (क) कदाचिद्रसाभिनयभावप्रपंचोपवर्णनेन, —वही, पृ. 104
    (ख) अभिनयन्ति सम्यगमिनेयमर्थजातम्, —वही, पृ. 268
    (ग) आवहन्ति च सहृदयहृदयवर्तिनो रसस्य परमं परिपोषम्···· —वही, पृ. 268
11. वही, पृ. 53
12. निसर्गमुग्धापि प्रौढवनितेव···· —तिलकमंजरी, पृ. 128
13. वही, पृ. 296 तथा 121
14. असम्यग्ज्ञातदशरूपकैरिव सर्वदाडिमीकृतवीथिभिः ····वही, पृ. 370

इस कथन से दशरूपक नामक रचना का भी सकेत मिलता है। इसके रचयिता धनजय, धनपाल के समकालीन कवि थे। नाट्य के नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथि, अक, ईहामृग ये दस भेद हैं।[1]

रस की वृत्तियो एव कैशिकी वृत्ति का उल्लेख आया है।[2] रस की चार वृत्तिया कही गई हैं कौशिकी, सात्वती, आरभटी तथा भारती। कैशिकी वृत्ति गीत, नृत्य, विलासादि शृ गारमयी चेष्टाओं के कारण कोमल होती है।[3]

उपर्युक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धनपाल बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। तिलकमजरी उनके विस्तृत शास्त्रीय ज्ञान तथा व्युत्पत्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वे न केवल रामायण, महाभारत, पुराण वेद-वेदागो तथा विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तो के ज्ञाता थे, अपितु वे धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, सगीत, चित्रकला, सामुद्रिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नाट्यशास्त्रादि विभिन्न विषयो मे भी पूर्ण हस्तक्षेप रखते थे।

---

1 नाटक सप्रकरण भाणः प्रहसन डिम ।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ॥
—धनजय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश कारिका 8

2 तिलकमजरी, कैशिकीमिव रसवृत्तीनाम् पृ. 159

3 तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा, तत्र कैशिकी ।
गीतनृत्यविलासाद्यै र्मृदुः शृ गारचेष्टितैः ॥
—*धनजय, दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, कारिका 47*

चतुर्थ अध्याय

तिलकमंजरी का साहित्यिक अध्ययन

कथा तथा आख्यायिका

विभिन्न साहित्यशास्त्रियों ने गद्य-काव्य के दो भाग किये हैं—कथा तथा आख्यायिका। भामह,[1] दण्डी,[2] रुद्रट,[3] आनन्दवर्धन[4] तथा विश्वनाथ[5] ने अपने-अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इस विषय पर विवेचन किया है। भामह के अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु वास्तविक तथा ऊदात्त होती है, जिसे नायक स्वयं वक्ता के रूप में कहता है। यह उच्छवास नामक विभागों में विभक्त रहती है, जिसके प्रारम्भ में तथा अन्त में भावी घटनाओं के सूचक पद्य वक्त्र तथा अपरवक्त्र छंदों में निबद्ध होते हैं। कन्या हरण, संग्राम, वियोग तथा विजय के सूचक कुछ वर्णन इसमें कवि की अपनी कल्पना से सम्मिलित करता है। इसके विपरीत कथा में न तो वक्त्र और न अपरवक्त्र छंद युक्त पद्य होते है और न ही उच्छवासों का विभाग रहता है। कथा का वक्ता भी नायक से इतर कोई व्यक्ति होता है तथा कथा-वस्तु कवि की कल्पना से प्रसूत होती है। कथा संस्कृत अथवा अपभ्रंश भाषा में लिखी जाती है।[6]

इस प्रकार भामह के अनुसार कथावस्तु, वक्ता, विभाग, छन्द तथा भाषा, ये कथा व आख्यायिका के विभाजक तत्व हैं। दण्डी ने भामह के इस वर्गीकरण की बड़े जोरदार शब्दों में आलोचना की तथा कथा एवं आख्यायिका को एक ही गद्य जाति की दो विभिन्न संज्ञायें बताया।[7] वस्तुतः बाणभट्ट ने कादम्बरी तथा

---

1. भामह, काव्यालंकार 1, 25–29
2. दण्डी, काव्यादर्श 1, 23–30
3. रुद्रट, काव्यालंकार 16, 20–30
4. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक
5. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण 7, 332–36
6. भामह—काव्यालंकार 1, 25–29
7. तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।

—दण्डी, काव्यादर्श, 1/23–30

हर्षचरित द्वारा इस द्विरूप गद्य अर्थात् कथा एव आख्यायिका दोनो का प्रथम निदर्शन प्रस्तुत किया, जिन्हे लक्ष्य ग्रथ मानकर परवर्ती साहित्यशास्त्रियो ने गद्य की इन दोनो विधाओं को विभक्त करने वाले लक्षण स्थापित किए। रुद्रट के काव्यालकार से इसकी पुष्टि होती है। रुद्रट ने काव्य, कथा, आख्यायिकादि प्रबन्धो को दो प्रकार का कहा है– उत्पाद्य तथा अनुत्पाद्य। उत्पाद्य प्रबन्ध मे कवि कल्पना प्रसूत कथा निबद्ध रहती है, नायक प्रसिद्ध भी हो सकता है अथवा कल्पित भी।[1] प्रसिद्ध नायक वाले उत्पाद्य प्रबन्ध के लिए टिप्पणीकार नमिसाधु ने माघकाव्य का उदाहरण दिया है तथा प्रकारान्तर के लिए तिलकमजरी तथा बाण-कथा को उद्धत किया है।[2] परवर्ती कवियो द्वारा तिलकमजरी का यह सर्व-प्रथम प्रामाणिक उल्लेख है। इससे सिद्ध होता है कि 11वी सदी के उत्तरार्द्ध मे तिलकमजरी कथा के रूप मे अत्यन्त प्रसिद्ध हो गई थी। रुद्रट ने कथा का लक्षण करते हुए कहा है—कथा मे कवि को सर्वप्रथम पद्यो द्वारा अपने इष्ट देवताओ तथा गुरुओ को नमस्कार करके सक्षेप मे अपने कुल का वर्णन तथा स्वकर्तृत्व का उल्लेख करना चाहिए।[3] तत्पश्चात् छोटे-छोटे तथा अनुप्रास युक्त गद्य मे पुर-वर्णन पूर्वक कथा की रचना करनी चाहिए।[4] प्रारम्भ मे प्रमुख कथा के अवतरण के लिए उससे सम्बद्ध कथान्तर का भली-भाति विन्यास करना चाहिए।[5] कन्या-प्राप्ति (अथवा राज्यलाभ आदि) उसका फल हो तथा शृगार रस का उसमे भली प्रकार विन्यास किया जाय, सस्कृत से भिन्न भाषा होने पर कथा पद्य मे निबद्ध होनी चाहिए।[6]

आख्यायिका का लक्षण इस प्रकार किया गया है—आख्यायिका मे कवि को (कथा के समान ही) देवो तथा गुरुओ को नमस्कार करके, उनके रहते हुए काव्य-रचना मे उसका उत्साह नही होता है यह कहते हुए अन्य कवियो की प्रशस्ति करनी चाहिए।[7] इसके पश्चात् उसकी रचना मे, राजा के प्रति भक्ति, पर-गुण सकीर्तन की प्रकृति अथवा अन्य कोई स्पष्ट हेतु बताये।[8] तत्पश्चात् कथा

---

1 रुद्रट—काव्यालकार 16/3

2 नमिसाधु की टिप्पणी—प्रकारान्तरमाह—कल्पिता युक्ता घटमानोत्पत्तिर्यस्य तमित्य भूत नायकमपि कुत्रचित्कुर्यात् आस्तामितिवृत्तम्। अत्र च तिलक-मजरी बाणकथा वा निदर्शनम्।

3 रुद्रट, काव्यालकार, 16–20

4 वही, 16–21

5 वही, 16–22

6 वही, 16–23

7 वही, 16–24

8 वही, 16–25

के समान ही अपना तथा अपने वंश का गद्य में ही परिचय देते हुए आख्यायिका की रचना करे ।[1] सर्ग के समान ही उच्छवासों में उसका विभाग करे, प्रथम उच्छवास के सिवाय, जिनके प्रारम्भ में आगामी घटनाओं की सूचक दो श्लिष्ट आर्याओं की रचना करनी चाहिए ।[2] भूत, वर्तमान अथवा भावी घटनाओं के विषय में संशय उत्पन्न होने पर संशययुक्त व्यक्ति के सामने अन्य किसी व्यक्ति द्वारा संशय का निवारण करने हेतु अन्योक्ति, समासोक्ति तथा श्लेष में से एक अथवा दो अलंकारों वाले श्लोकों का पाठन करवाये । ये श्लोक आर्या, अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा अथवा विषयानुकूल अन्य छन्दों में (प्रायः मालिनी में) रचित हों ।[3] रूद्रट द्वारा लिखित कथा तथा आख्यायिका का यह विभाग निश्चित रूप से बाण की कृतियों पर आधारित है । वस्तुतः सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया जाय तो कथा तथा आख्यायिका में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता । तिलकमंजरी के विवेचन से भी यही सिद्ध होता है । दोनों की शैली में भी कोई अन्तर नहीं होता है । दोनों को विभाजित करने वाली प्रमुख रेखा है प्रतिपाद्य वस्तु, जो कथा में कल्पित होती है तथा आख्यायिका में इतिहास प्रसिद्ध ।

तिलकमंजरी : एक कथा

धनपाल ने स्वयं तिलकमंजरी को कथा कहा है—समस्त वाङ्मय के ज्ञाता होने पर भी जैन सिद्धान्तों में निबद्ध कथाओं के प्रति कुतूहल उत्पन्न होने पर पवित्र चरित्र वाले राजा भोज के मनोरंजन के लिए अद्भुत रसों वाली इस कथा की रचना की ।[4]

अब देखना यह है कि काव्यशास्त्रियों की परिभाषाओं की कसौटी पर यह कितनी खरी उतरती है । तिलकमंजरी के प्रारम्भ में 53 पद्यों में प्रस्तावना लिखी गयी है, इनमें 26 पद्य पथ्या छंद में, 13 शार्दूलविक्रीडित छंद में, 3 भविपुला में, 3 मविपुला में, 2 उपजाति में, 3 वसन्ततिलका में, 1 मालिनी, एक मन्दाक्रान्ता तथा एक नविपुला छंद में रचे गए हैं । 53 पद्यों में कुल 9 छंदों का प्रयोग हुआ है । इन पद्यों में सर्वप्रथम जिन ऋषभदेव तथा महावीर की स्तुति की गयी है, तत्पश्चात् सरस्वती तथा कवि की वाणी की स्तुति, सत्कवि-प्रशंसा एवं दुर्जन-निन्दा तथा प्रचलित गद्यशैली के प्रति अपना अभिमत प्रकट किया गया है । तत्पश्चात् धनपाल ने अपने पूर्ववर्ती 17 कवियों की प्रशंसा की है, यहां धनपाल ने साहित्यशास्त्र के लक्षण का उल्लंघन किया है, क्योंकि रूद्रट के अनु-

---

1. रूद्रट—काव्यालंकार, 16–26
2. वही, 16–27
3. वही, 16, 28–30
4. तिलकमंजरी, पद्य 50

सार आख्यायिका मे पूर्ववर्ती कवियो को नमस्कार करने का विधान है न कि कथा मे ।[1] इसके पश्चात् कवि ने अपने आश्रयदाता परमार राजाओं की 12 पद्यो मे प्रशस्ति लिखी है। तत्पश्चात् कथा रचना के उद्देश्य का उल्लेख किया गया है, जिसमे अपने आश्रयदाता के प्रति भक्ति प्रदर्शित की गयी है। यहा भी धनपाल ने रुद्रट के नियमो के विपरीत आख्यायिका के लक्षण का कथा मे समावेश किया है ।[2] तदनन्तर धनपाल अपने वश का सक्षेप मे दो पद्यो मे वर्णन करते हुए स्वकर्तृत्व का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार धनपाल ने 53 पद्यो मे तिलकमजरी की प्रस्तावना लिखी है। इसके बाद पूरी कथा गद्य मे बिना किसी विभाग के लिखी गयी है, जिसका प्रारम्भ नगर वर्णन से किया गया है। बीच बीच मे प्रसगानुकूल कुल 43 पद्यो का समावेश किया गया है। रुद्रट के अनुसार आख्यायिका मे आर्या, अपवक्त्र, पुष्पिताग्रा तथा मालिनी छदो मे पद्यो की रचना होनी चाहिए। तिलकमजरी मे ये सभी छद प ये गये हैं, अत धनपाल ने यहा भी कथा के नियमो का उल्लघन किया है ।[3] तिलकमजरी की कथा स्वय धनपाल द्वारा निर्मित है, न कि इतिहास प्रसिद्ध । तिलकमजरी का प्रधान रस शृगार है, जो नायक हरिवाहन द्वारा अन्त मे नायिका तिलकमजरी की प्राप्ति मे फलीभूत होता है। यह रुद्रट के कथा लक्षणो के अनुकूल है। प्रमुख कथा मे समरकेतु तथा मलयसुन्दरी के प्रेम रूपी कथान्तर का वर्णन किया गया है, जो प्रमुख कथा को आगे बढाने मे सहायक होता है तथा जिसे विभिन्न कथा मोडो मे प्रस्तुत करके अत्यन्त रोचक बनाया गया है। यह भी भामह के कथा-लक्षण के अनुकूल है। तिलकमजरी की लगभग आधी प्रमुख कथा हरिवाहन के मुख से कही गयी है ।[4] हरिवाहन की कथा मे ही, जो समरकेतु तथा हरिवाहन के विद्याधर नगर मे मिलने पर प्रारम्भ होती है, मलयसुन्दरी की कथा, गन्धर्वक का वृत्तात आदि अन्तर्निहित हैं। भामह के अनुसार कथा का वक्ता नायक से इतर व्यक्ति होना चाहिए, किन्तु तिलकमजरी मे कथा का वक्ता नायक हरिवाहन ही है।

इन सभी बातो पर विचार करने से यह प्रमाणित हो जाता है कि धनपाल के समय मे आलकारिको द्वारा कथा व आख्यायिका के विषय मे बन ये गये नियम शिथिल हो गये थे, तथा गद्य की ये दोनो विधायें परस्पर काफी घुल-मिल गयी थी। विषय-वस्तु को छोडकर कथा तथा आख्यायिका के अन्य भेद गौण हो गये थे।

---

1 रुद्रट, काव्यालकार 16–24
2. रुद्रट, काव्यालकार 16–25
3 रुद्रट, काव्यालकार 16–30
4 तिलकमजरी, पृ 241–420

धनपाल की भाषा-शैली

शैली

धनपाल ने तिलकमंजरी की प्रस्तावना में काव्य-गुणों के वर्णन के व्याज से अपनी गद्य-शैली का आदर्श प्रस्तुत किया है।[1] इन पद्यों में धनपाल ने अपने पूर्ववर्ती गद्य-कवियों के गद्य की त्रुटियों को स्पष्ट रूप से बताया है।

धनपाल ने कहा है कि अतिदीर्घ, बहुतरपदघटित समास से युक्त तथा अधिक वर्णन वाले गद्य से लोग भयभीत होकर उसी प्रकार विरक्त होते हैं, जैसे घने दण्डकवन में रहने वाले अनेक वर्ण वाले व्याघ्र से।[2]

इस पद्य में धनपाल ने संस्कृत गद्यकाव्य की दो प्रमुख विशेषताओं, दीर्घ समास तथा प्रचुर वर्णन की ओर संकेत किया है। समास को संस्कृत गद्य का प्राण कहा गया है। समास ने अधिकतम अर्थ को न्यूनतम शब्दों में व्यक्त करने की सामर्थ्य प्रदान की है। समास बहुलता ओज-गुण का प्रधान लक्षण है तथा ओज गद्य का प्राण है। अतः दण्डी ने कहा है—"ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।"[3] इसी ओज गुण के कारण गद्य में विचित्र प्रकार की भावग्राहिता तथा गाढबन्धता का संचार होता है। धनपाल का आविर्भाव उस युग में हुआ था जब काव्य-क्षेत्र में कालिदास की सरल-सुगम स्वाभाविक शैली के स्थान पर भारवि, माघ की अलंकृत शैली प्रतिष्ठित हो चुकी थी तथा गद्य-काव्य के क्षेत्र में सुबन्धु, बाण तथा दण्डी की विकटगाढबन्धयुक्त गद्य शैली अपने चरमोत्कर्ष पर थी। सप्तम शती में गद्य का जो परिष्कृत रूप इन तीनों गद्यकवियों की कृतियों में देखने को मिला, वह उसके पश्चात् तीन शताब्दियों तक लुप्त प्रायःसा हो गया। दशम शताब्दी से पूर्व किसी उत्तम गद्य रचना का उल्लेख संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। धनपाल ने इस अभाव का अनुभव किया तथा गद्य को पुनर्जीवित करने का श्लाघनीय प्रयास किया। इस प्रयास में धनपाल ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के गद्य की त्रुटियों को पहचाना तथा अपने गद्य को उनसे सर्वथा मुक्त रखा। धनपाल ने परम्परा से हटकर, जन-मानस के अध्ययन के फलस्वरूप उसकी रुचियों को ध्यान में रखते हुए अपनी वाणी को मुखरित किया है। यही उल्लेख करते हुए धनपाल ने कहा है कि दण्ड के समान लम्बे-लम्बे समास तथा अत्यधिक विस्तृत वर्णन जन के हृदय में विरक्ति व भय उत्पन्न करते हैं। इस कथन में धनपाल ने स्पष्ट रूप से बाण की शैली की ओर संकेत किया है। ऐसा

---

1. तिलकमंजरी—प्रस्तावना, पद्य 15, 16, 17
2. अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात्।
   व्याघ्रादिवभयाघ्रातो गद्याद्व्यावर्तते जनः॥ —वही, पद्य 15
3. दण्डी, काव्यादर्श, 1–30

प्रतीत होता है कि धनपाल की इसी उपमा से प्रेरित होकर वेबर ने बाण के गद्य को उस भारतीय जगल के समान कहा है जिसमे यात्री के लिए अपना रास्ता साफ किये बिना आगे बढना कठिन है, उस पर भी उसे अपरिचित शब्दो रूपी हिंस्र पशुओ से भयभीत होना पडता है।[1]

दीर्घ समास व प्रचुर वर्णन के समान ही श्लेष-बहुलता को भी धनपाल ने काव्यास्वादन मे बाधक माना है। सुबन्धु तथा बाण दोनो को श्लेष अत्यन्त प्रिय हैं। सुबन्धु की दृष्टि मे सत्काव्य वही है जिसमे अलकारो का चमत्कार श्लेष का प्राचुर्य तथा वक्रोक्ति का सन्निवेश विशेष रूप से रहता है।[2] सुबन्धु ने स्वय भी अपने प्रबन्ध को 'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपच विन्यासवैदग्धनिधि" बनाने की प्रतीज्ञा की थी। सुबन्धु वस्तुत श्लेष कवि है तथा उन्होने अपनी सारी प्रतिभा श्लेष से अपने काव्य को चमत्कृत करने मे ही लगा दी। सुबन्धु के समान बाण को भी श्लेष अत्यन्त प्रिय है तथा वे भी अपने गद्य को निरन्तरश्लेषघन बनाने मे गौरव का अनुभव करते हैं, किन्तु सुबन्धु की अपेक्षा बाण के श्लेष अधिक स्पष्ट है।[3]

जहा सुबन्धु का आदर्श गद्य 'प्रत्यक्षरश्लेषमय' है तथा बाण का आदर्श गद्य 'निरन्तरश्लेषघन' है। वहीं धनपाल के गद्य का आदर्श 'नातिश्लेषघन' है। अत धनपाल ने कहा है—सहृदयो के हृदय को हरने वाली तथा सरस पदावली से युक्त काव्याकृति भी अत्यधिक श्लेष युक्त होने पर, स्याही से स्निग्ध अक्षरो वाली किन्तु अक्षरो के अत्यधिक सम्मिश्रण से युक्त लिपि के समान प्रशसा को प्राप्त नहीं करती है।[4]

धनपाल का गद्य न तो सुबन्धु के गद्य के समान प्रत्यक्षश्लेषमय है और न ही बाण के गद्य के सदृश समासो से लदा हुआ व गाढबन्धता से मण्डित है। धनपाल ने मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने काव्य को समासाढ्यता व श्लेष बहुलता से विभूषित करने के स्थान पर सुबोध, सरल व यथार्थ का दिग्दर्शन कराने वाली शैली से अलकृत किया है।

गद्य-काव्य मे गद्य एव पद्य का उचित सन्तुलन भी आवश्यक है, क्योकि अनवरत गद्य निबद्ध कथा श्रोताओ मे निर्वेद को उत्पन्न करती है तथा पद्यबहुल

---

1 कीथ, ए बी. सस्कृत साहित्य का इतिहास, अनुवादक मगलदेवशास्त्री, पृ 326

2 सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्काव्यविरचनमिव, —सुबन्धु, वासवदत्ता

3 निरन्तरश्लेषघना सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव।
नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेष स्पष्ट स्फुटो रस ॥
—बाणभट्ट, हर्षचरित 1-18

4 वर्णयुक्ति दधानापि स्निग्धाजनमनोहराम्।
नातिश्लेषघना श्लाघा कृतिर्लिपिरिवाश्नुते ॥ —तिलकमजरी, पद्य 16

चम्पू भी कथावस्तु के रसास्वादन में बाधक होता है।[1] अतः बीच-बीच में पद्यों से उपस्कृत गद्य जहां काव्य के रसास्वाद को द्विगुणित कर देता है, वहीं पद्यों की भरमार उसमें बाधक बन जाती है। धनपाल ने तिलकमंजरी के प्रारम्भ में गद्य का जो यह आदर्श उपस्थित किया है, अपने काव्य में उन्होंने उसका आद्योपान्त निर्वाह किया है। अतः उनकी भाषा अत्यन्त प्रवाहमयी, प्रांजल, ओजस्वी तथा प्रभावोत्पादक बन गयी है।

यद्यपि कवि किसी एक ही वर्णन-शैली का क्रीतदास नहीं होता, वर्ण्य-विषय तथा प्रसंग के अनुसार वह अपनी शैली को परिवर्तित करता है, किन्तु प्रमुखतया प्रत्येक कवि की वर्णन करने की अपनी एक शैली स्वतः ही बन जाती है। वृत्ति, रीति, मार्ग, संघटना तथा शैली शब्द समानार्थक हैं। एक ही पदार्थ को भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न नामों से व्यवहृत किया है। उद्भट ने जिसे वृत्ति कहा है, वामन ने उसे ही रीति कहा है, कुन्तक तथा दण्डी ने मार्ग एवं आनन्दवर्धन ने संघटना कहा है। उद्भट ने अपने काव्यालंकारसारसंग्रह में तीन प्रकार की वृत्तियां कही हैं, उपनागरिका, परुषा तथा कोमला। वामन ने इन्हीं तीनों रीतियों को वैदर्भी, गौडी तथा पांचाली नाम से अभिहित किया है।[2]

धनपाल की प्रतिपाद्य शैली वैदर्भी है। वामन के अनुसार वैदर्भी रीति तो समस्त गुणों से युक्त होती है, परन्तु गौडीया रीति में केवल ओज और कान्ति ये दो ही गुण होते हैं और पांचाली में केवल माधुर्य तथा सौकुमार्य ये दो ही गुण रहते हैं। वामन के अनुसार ओज प्रसादादि समस्त गुणों से युक्त और दोष की मात्रा से रहित वीणा के शब्द के समान मनोहारिणी वैदर्भी रीति होती है।[3] मम्मट ने माधुर्यव्यंजक वर्णों से युक्त वृत्ति को उपनागरिका कहा है।[4] विश्वनाथ

1. अश्रान्तगद्यसन्ताना श्रोतॄणां निर्विदे कथा।
   जहाति पद्यप्रचुरा चम्पूरपि कथारसम्॥ —तिलकमंजरी, पद्य 17
2. सा त्रेधा वैदर्भी गौडीया पांचालि चेति
   —वामन, काव्यालंकारसूत्र, 1, 2, 9
3. समग्रगुणा वैदर्भी
   ओजः प्रसादप्रमुखैर्गुणैरुपेता वैदर्भी नाम रीतिः
   अस्पृष्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणगुम्फिता।
   विपंचीस्वरसौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यते॥
   —वामन काव्यालंकारसूत्र, 1, 2, 11
4. माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते। —मम्मट, काव्यप्रकाश, 9, 107

ने समास रहित अथवा अल्प समास युक्त, माधुर्य गुण के व्यंजक वर्णों की ललित रचना को वैदर्भी रीति का नाम दिया है।[1]

धनपाल ने तिलकमंजरी मे रीतियो मे वैदर्भी को ही सर्वाधिक उद्भासित कहा है।[2] धनपाल की इस विशिष्ट शैली को प्रदर्शित करने हेतु नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(1) यथा न धर्म. सीदति, यथा नार्थ क्षय व्रजति, यथा न राजलक्ष्मी-रुन्मनायते, यथा न कीर्तिमन्दायते, यथा न प्रतापो निर्वाति, यथा न गुणाः श्यामायन्ते, यथा न श्रुतमुपहस्यते, यथा न परिजनो विरज्यते, यथा न शस्त्रवत्सलरलायन्ते तथा सर्वमन्वतिष्ठत् —पृ 19

(2) अनयास्माकमविकला त्रिवर्गसम्पत्ति, अनुद्वेजको राज्यचिन्ता-भार, आकीर्णा महीस्पृहणीया भोगा, सफल यौवनम् अजनितव्रीड क्रीडारस, अभिलषणीयाविलासा, प्रीतिदायिनो महोत्सवा, रमणीयो जीवलोक —पृ 28

(3) आचारमिव चारित्रस्य, प्रतिज्ञानिर्वाहमिव ज्ञानस्य शुद्धि-सचयमिव शौचस्य, धर्माधिकारमिव धर्मस्य, सर्वस्वदायमिव दयाया. —पृ 25

प्रमुखतया वैदर्भी रीति का प्रयोग करते हुए भी धनपाल वर्ण्य-विषय तथा प्रसगानुसार पाचाली एव गौडी रीति का भी आश्रय लेते हैं। धनपाल को वैदर्भी के समान ही पाचाली शैली के प्रयोग मे सिद्धहस्तता प्राप्त है। विभिन्न प्रसगो पर वे इसी शैली मे अपने अर्थों को मुखरित करते हैं। माधुर्य एव सुकुमा-रता युक्त पाचाली शैली कही गयी है।[3] पाचाली शैली मे गद्य प्राय पाच या छ पदो वाले समास से युक्त होता है।[4] राजशेखर के अनुसार पाचाली रीति मे छोटे-छोटे समास, किंचित् अनुप्रास व उपचार का प्रयोग होता है—यत् ···· ईषद्समास ईषदनुप्रासमुपचारगर्भं च जगाद सा पाचाली रीति।[5] शब्द तथा अर्थ

1 माधुर्यव्यजकैर्वर्णैरचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥
—विश्वनाथ साहित्य दर्पण, 9, 23

2 वैदर्भीमिव रीतिनाम् —तिलकमंजरी, पृ 159

3 माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पाचाली —वामन, काव्यालकारसूत्रवृत्ति 1, 2, 13

4 समस्तपचपपदामोज कान्तिविवर्जितम्।
मधुरासुकुमाराच पाचाली कवयो विदु॥
—भोज, सरस्वतीकण्ठाभरण, 2, 30

5 राजशेखर काव्यमीमांसा, पृ 19

का समान गुम्फन पांचाली रीति की विशिष्टता है ।[1] तिलकमंजरी में शब्द और अर्थ का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है । विकट वस्तुओं के वर्णन में विकट पदों का प्रयोग किया गया है तथा सुकुमार प्रसंगों की अवतारणा में कोमल पदावली आयोजित की गई है । इस शैली को निर्देशित करने वाले कुछ उदाहरण दिये जाते हैं —

(1) मृदुपवनचलितमृद्विकालतावलयेषु वियति विलसतामसितागुरुधूपधूमयोनिनामासारवारिणेवोपसिच्यमानेष्वतिनीलसुरभिषु गृहोपवनेषु वनितासरवैविलासिभिरनुभूयमानमधुपानोत्सवा —पृ. 8, 9

(2) अलिकुलक्वणमुखरया शतमखहूतैरावणादिसहोदरोदन्तदानायप्रहितया पारिजातदूत्येव स्निग्धसान्द्रया मन्दारमञ्जर्या समाश्रितैकश्रवणाम् —पृ. 54

(3) क्वचिद्‌दावदहनाश्लिष्टवंशीवनश्रूयमाणश्रवणनिष्ठुरध्वानदारया, क्वचिदकुण्ठकण्ठीखारावचकितसारगलोचनांशुशारया, क्वचित्तरुतलासीनशबरीविरच्यमानकरिकुम्भमुक्तामिः शबलगुंजाफलप्रालम्बया —पृ. 200

वैदर्भी तथा पांचाली के समान ही धनपाल ने तिलकमंजरी में गौडी शैली को भी प्रसंगानुसार प्रयुक्त किया है । अटवी वर्णन, वैताढ्य वर्णन तथा युद्ध वर्णन में इसके उदाहरण स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं । कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(1) मुक्तनवजलासारकरिघटासहस्त्रमेघमण्डलान्धकारिताष्टदिग्भागेषु घनस्तनितघर्घरघूर्णमानरथनिर्घोषेषु दर्पोत्पतत्पदातिकरतलतुलिततरवारितडिल्लताप्रतानदन्तुरितान्तरिक्षकुक्षिषु प्रचण्डानिलप्रणुन्नकरकोपलप्रकरपातमुखरसप्तिरखुरपुटध्वाननितजगज्जवरेषु —पृ. 16

(2) ... समत्सरसुभटसिंहनादबधिरीकृताम्यर्णवासिजनकर्णघोरणिनीरन्प्रपापाणक्षेपक्षणमात्रस्थलीकृताम्बरतलानि निर्दयप्रहतत्पूर्यश्रवणयासितकातरकरशस्त्राणि यन्त्रविक्षिप्तान्नितप्ततैलच्छटाविघटाभानविकटपदातिगुम्फानि —पृ. 83

(3) ... क्वचित्प्रलयवातविधूतपुष्करावर्तकमेघमुक्तैः क्वचित्कुलिशकर्कशहिरण्याक्षवक्षोभिघातदलितमहावराहदंष्ट्राङ्कुरोच्छलितैः क्वचित्कमठपतिपृष्ठकषणोत्थपावकप्रदीप्तमन्दरनितम्बवेणुस्तम्बनिष्ठ्यूतैः —121

लम्बे-लम्बे समासों से युक्त तथा उत्कट पदों से युक्त गौडी शैली कहलाती है । वामन के अनुसार ओज और कान्ति नामक गुणों से युक्त गौडी शैली होती

---

6. शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचालीरीतिरिष्यते ।
शीलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥
—जल्हण, सूक्तिमुक्तावली, पद्य 27

है।[1] गाढपदबन्धता को ओज कहा गया है।[2] मम्मट ने भी ओज के प्रकाशक वर्णों से युक्त वृत्ति को परुषा कहा है।[3] धनपाल ने गौडी रीति का प्रयोग विकट प्रसगो के वर्णन मे ही किया है।

साहित्यशास्त्र के अनुसार गद्य के चार प्रकार हैं—मुक्तक, वृत्तगंधि उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक। मुक्तक गद्य समास रहित होता है, वृत्तगंधि मे पद्य का अश होता है उत्कलिकाप्राय दीर्घ समासो से मण्डित होता है तथा छोटे-छोटे समासो वाला गद्य चूर्णक कहलाता है।[4] उत्कलिका गद्य शैली को तण्डक भी कहा जाता था[5] एव समासरहित मुक्तक शैली को आविद्ध भी कहा जाता था।[6] तिलकमजरी मे यद्यपि चारो प्रकार का गद्य प्रयुक्त हुआ है, किन्तु धनपाल ने प्राय चूर्णक अर्थात् छोटे-छोटे समासो वाली गद्य शैली का ही अधिक उपयोग किया है। नीचे इन सभी शैलियो को उदाहृत किया जाता है।

मुक्तक—यह गद्य समास रहित होता है जहा भी तिलकमजरी मे सवादतत्व की प्रधानता है अथवा भावतत्व की प्रधानता है वहा यह शैली पायी जाती है। धनपाल ने सवादो मे समासरहित सरलभाषा का प्रयोग किया है यथा वेताल तथा मेघवाहन, लक्ष्मी तथा मेघवाहन एव मलयसुन्दरी तथा विचित्रवीर्य के सवाद। यथा—

(1) नरेन्द्र, न वयं पक्षिण न पशव न मनुष्या। कथं फलानि मूलान्यन्न चाहराम। क्षपाचरा खलु वयम् —पृ 50–51

(2) इद राज्यम्, एषा मे पृथ्वी, एतानि वसूनि, असो हस्त्यश्वरथपदाति प्रायो बाह्य परिच्छद, इद शरीरम् —पृ. 26

---

1. ओज कान्तिमती गोडीया
   माधुर्य सौकुमार्योपपन्नावात् समासबहुला अत्युल्वणपदा च।
   —वामन, काव्यालकारसूत्रवृत्ति, 1/2/12
2. गाढपदबन्धत्वमोज —वही, 3/1/5
3. ओज प्रकाशकस्तैस्तु परुषा —मम्मट, काव्यप्रकाश, 9/80
4. वृत्तगन्धोज्झित गद्य मुक्तक वृत्तगन्धि च।
   भवेदुत्कलिकाप्राय चूर्णक च चतुर्विधम्॥
   आद्यं समासरहित वृत्तभागयुत परम्।
   अन्यद्दीर्घसमासाढ्य तुर्यं च ल्पसमासकम्॥
   —विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 6/330–32
5. अग्रवाल वासुदेवशरण, कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ 15
6. वही, हर्षचरित . एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ 4

(3) स वारण: श्रान्त इव, सुप्त इव, कीलितश्च, गलितचैतन्य इव, क्षणमात्रमभवत् । —पृ. 186

(4) अतिवेगव्यापृतोऽस्य तत्र क्षणे प्रोत इव तूणीमुखेषु, लिखित इव मौर्व्याम्, उत्कीर्ण इव पुङ्खेषु, अवतसित इव श्रवणान्ते — पृ. 90

(5) ··· क्षणं बाहुशिरसि, क्षणं कृपाणधाराम्भसि, क्षणमातपत्रे, क्षणं महाध्वजेषु, क्षणं चामरेष्वकृष्टत: । —पृ. 91

हरिवाहन द्वारा वर्णित समस्त वृत्तान्त सुनकर समरकेतु की जो मनोदशा हुयी, उसका धनपाल ने अत्यन्त स्वाभाविक चित्र इसी शैली में खींचा है—स तु न कांचिदेक्षत्, न किंचिदाभाषत्, न कस्यचिद्वचनमशृणोत्, न कस्यचित् प्रतिवच: प्रायच्छत् । केवलं वंचित इव, छलित इव, मुषित इव केनाऽप्यावेशित इव — पृ 420

कोमल पदों की योजना इस शैली की विशिष्टता है । यथा—मुहुर्घार्वित्वा दुकूलांचले धार्यमाण, मुहु: प्रसार्य भुजलते पृष्ठत: परिरम्यमाणं, मुहुर्निपत्य पादयो: प्रसाधमानं — पृ. 397

चूर्ण— धनपाल ने तिलकमंजरी में प्रायेण इसी शैली का प्रयोग किया है । एक दृष्टान्त प्रस्तुत है - कुरुत हरिचन्दनोपलेपहारि मन्दिराङ्गणम्, रचयत स्थानस्थानेषु रत्नचूर्णस्वस्तिकान्, दत्त द्वारि नूतनं चूतपल्लवदाम — पृ. 77

उत्कलिकाप्राय - तिलकमंजरी में जहां भी वर्णन तत्व की प्रधानता है, यथा अयोध्या-वर्णन, मेघवाहन-वर्णन, युद्ध वर्णन, वेताल-वर्णन, कामरूप-देश वर्णन, अटवी-वर्णन, अदृष्ट सरोवर-वर्णन, आराम-वर्णन, आयतन-वर्णन, वैताढ्य-वर्णन आदि स्थलों पर इस शैली का प्रचुरता से उपयोग किया गया है । धनपाल की यह विशिष्टता है कि वे वर्णन स्थल पर भी इस शैली के बीच-बीच में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं, तथा निरन्तर अधिक लम्बे-लम्बे समासों से वर्णन को बोझिल नहीं बनाते । युद्ध जैसे विकट प्रसंग में भी यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है ।[1] उदाहरणार्थ — परस्परवधनिबद्धकक्षयोश्च···प्रसृतरमसोत्तालगजदानवारिगर्तत्रिदशदारिकान्विष्यमाणरमणसार्थो निपीतनखशाचिस्वरविसारिशिवाफेत्कारडामर: सतारकावर्ष इव वेतालदृष्टिभि: सोल्कापात इव निशितप्रासवृष्टिभि: सनिर्घातपात इव गदाप्रहारै: ··· पृ. 87

वर्णन शैली—धनपाल जब किसी विशिष्ट व्यक्ति का वर्णन करते हैं अथवा किसी विशिष्ट स्थान का चित्र प्रस्तुत करते हैं, तो प्राय: पहले वे एक लम्बे वाक्य में उसके प्रमुख स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं, तत्पश्चात् य:, यम्, येन, यस्मिन् आदि सर्वनामों से प्रारम्भ होने वाले वाक्यों द्वारा उसके स्वरूप का

---

1. तिलकमंजरी, पृ. 82–93

विस्तृत वर्णन करते हैं। यथा मेघवाहन के वर्णन मे– "तस्या च · सार्वभौमो राजा मेघवाहनो नाम" इस लम्बे वाक्य से उसका प्रथम परिचय दिया गया है। तदनन्तर यस्य, य, यस्मिन् से प्रारम्भ होने वाले सात वाक्यो द्वारा उसकी अन्य विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। इस वर्णन को और अधिक विस्तृत बनाने के लिए तथा विषय का पूरा-पूरा स्पष्ट चित्र खीचने के लिए आगे उसने कदाचित् शब्द से प्रारम्भ होने वाले 13 वाक्यो की रचना की, जिसमे मेघवाहन के अन्य क्रिया-कलाप व मनोरजन के साधनो का वर्णन किया गया है।[1] इसी प्रकार अयोध्या नगरी के वर्णन मे पहले 'अस्ति रम्यतानिरस्त यथार्थाभिधाना नगरी।" इस लम्बे वाक्य से उसके मुख्य स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया है, तत्पश्चात् या, यस्या, यस्याम् यत्र वाले 9 वाक्यो से उसका सश्लिष्ट चित्र खीचा गया है।[2] वर्णन प्रसगो मे सर्वत्र यही वृत्ति दृष्टिगत होती है।

भाषा तथा सस्कृत भाषा पर अधिकार

भाषा—कवि चित्रकार अपने हृदयगत भावो को भाषा रूपी रगो से रगकर अपने चित्रो को सहृदयो के हृदय मे उतारता है, अत भाषा, कवि एव सहृदय रूपी दो किनारो को मिलाने वाली तरग है। सहृदय के हृदय को आकर्षित करने के लिए कवि अपनी भाषा का शृगार करता है। इसके लिए वह सुन्दर व आकर्षक शब्द योजनाओ सहित वाक्यो की रचना करता है। गति व सचालन वाक्य के प्रमुख सौंदर्य-सघटक उपादान हैं तथा इसके लिए ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा के अतिरिक्त निरन्तर अभ्यास की आवश्यक्ता होती है।

धनपाल की भाषा अत्यन्त ओजस्वी एव प्रवाहमयी है। उनकी भाषा मे सर्वत्र शब्दगत सौन्दर्य व अर्थ का उचित समन्वय प्राप्त होता है, केवल शब्द श्रवण मात्र से अर्थ की अभिव्यजना हो जाती है। शब्द कवि के हृदयगत भावो के साथ-साथ स्वाभाविक, सहज रूप से अवतरित होते हैं न कि जानबूझकर लादे हुए प्रतीत होते हैं।

कवि की प्रवाहमयी भाषा को प्रदर्शित करने वाले कुछ सुन्दर वाक्य रचनाओ के उदाहरण दिये जाते हैं—

(1) धनपाल अनेक उत्प्रेक्षाओ के एक साथ प्रयोग द्वारा वाक्य को गतिमान बनाते हैं, जैसे—

पृथ्वीमय इव स्थैर्ये, तिग्माशुमय इव तेजसि, सरस्वतीमय इव वचसि, लक्ष्मीमय इव लावण्ये, सुधामय इव माधुर्ये, तपोमय इवासाध्यसाधनेषु,—पृ 14

---

1 तिलकमजरी, पृ 12-18
2 वही, पृ 7-12

(2) एक ही पद से प्रारम्भ होने वाले अनेक वाक्यों की एक साथ योजना करके काव्य में प्रवाह उत्पन्न करते हैं। यथा—

(अ) सर्वसागरैरिवोत्पादितगाम्भीर्यः, सर्वगिरिभिरिवाविर्भावितोन्नतिः, सर्वज्वलनैरिव जनितप्रतापः, सर्वचन्द्रोदयैरिव रचितकीर्तिः, सर्वमुनिभिरिवनिर्मितोपशमः, सर्वकेसरिभिरिव कल्पितपराक्रम· —पृ. 13-14

(आ) ··· मुहुः केशपाशे, मुहुर्मुखशशिनि, मुहुरधरपत्रे, मुहुरक्षिपात्रयोः, मुहुर्नाभिचक्राभोगे, मुहुर्जघनभारे, मुहुरूरुस्तम्भयोः, मुहुश्चरणवारिरुहयोः कृतारोहावरोहया दृष्टया तां व्यभावयत् —पृ. 162

(इ) क्षणं बाहुशिरसि, क्षणं धनुषि, क्षण कृपाणधाराम्भसि, क्षणमातपत्रे,, क्षणं मदाध्वजेषु, क्षणं चामरेष्वकुरुत स्थितिम् —पृ. 91

(ई) यथा न धर्मः सीदति, यथा नार्थः क्षयं प्रजति, यथा न राजलक्ष्मीरुन्मनायते, यथा न कीर्तिमन्दायते, यथा न प्रतापो निर्वाति, यथा न गुणाः श्यामायन्ते यथा न श्रुतमुपहस्यते, यथा न परिजनों विरज्यते······ —पृ. 19

(3) वर्ण व मात्राओं की समानता से वाक्य में सौन्दर्योत्पत्ति की गयी है—

(अ) एक ही वर्ण से प्रारम्भ होने वाले अनेक शब्दों का एक साथ प्रयोग—शरच्छेदैमूँकं मांसमेदे मन्दं मेदसि मुखरमस्थिषु मन्थरं स्नायुग्रन्थिषु···· —पृ 90

(आ) पद के प्रारम्भ के वर्ण से अगला पद प्रारम्भ करना —

(1) ······सरलां संकेतेषु कुंचितां कुशस्तम्बेषु खण्डितां खण्डशैलेषु वलितां वृक्षमूलेषु कुटिलां पंकपटलेषु विरला बालवननदीवेणिकोत्तरेषु··· पृ. 254

(2) कोलकायकाली कुपति··· ··· केलिमिव कालीयस्य······ मूर्च्छितां मूर्च्छामिव महीगोलस्य······कण्ठेकालकूटकालिकामिवकालाग्निकण्ठेकालस्य···· पद्धतिमिव पातालपंकस्य······ — पृ. 233

(3) ·······नन्दनमिव नन्दनस्य, तिलकमिव त्रिलोक्या, रतिगृहमिव रतेरायुधागारमिव कुसुमायुधस्य······ —पृ. 212

(4) अतिशीतलतया च कन्दमिव हिमाद्रेरुदरमिव क्षीरोदस्य, हृदयमिव हेमन्तस्य, शरीरान्तरमिव शिशिरानिलस्य···· — पृ. 212

(5) आचारमिव चारित्रस्य, प्रतिज्ञानिर्वाहमिव ज्ञानस्य, शुद्धिसंचयमिव शौचस्य, धर्माधिकारमिव धर्मस्य, सर्वस्वदायमिव दयायाः······ —पृ. 25

(इ) समान मात्राओं इकार, ईकार, आकार द्वारा वाक्य में सौन्दर्य का का आधान किया गया है।

(1) मदनमयमिव शृंगारमयमिव प्रीतिमयमिवानन्दमयमिव विलासमयमि रम्यतामयमिवोत्सवमयमिव सकलजीवमाकलयन्न .... —पृ 213

(2) सुखमया इव धृतिमया इव अमृतमया इव प्रीतिमया इव —पृ. 104

(3) विस्मयमयीव कौतुकमयीवाश्चर्यमयीव प्रमोदमयीव क्रीडामयीव उत्सवमयीव निर्वृत्तिमयीव धृतिमयीव हासमयीव —पृ 62

(4) क्षितावमर्षमय इव क्रौर्यमय इव वैरमय इव व्याजमय इव हिंसामय इव विभाव्यमाने जगति —पृ० 88

(ई) पदो के अन्तिम अन्तिम वर्णो की समानता से वाक्य मे चमत्कार पैदा किया गया है—

.. " आत्मा निवारणीयो घृत्या न वृत्या दृष्टया न काययष्टया मनसा न वचसा . सव्यश्चतुरवर्णरेखा मानगलेखा देवतायतनवने न रतिभवने . . देवतास्तुतिगीतानि न निजचरणनुपूररणितानि मागधीश्लोकैर्न सुरतदूतीलोकैः, " देवतार्चनकेतकदले न कपोलतले पृ 31-32

सस्कृत भाषा पर अधिकार

तिलकमजरी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धनपाल को सस्कृत भाषा पर पूर्ण आचार्यत्व प्राप्त था। उनकी विद्वता पर मुग्ध होकर ही मुज ने उन्हे अपनी सभा मे "सरस्वती" की उपाधि से विभूषित किया था।[1]

धनपाल प्रसग व भाव के अनुकूल उचित शब्दो के चयन मे अत्यन्त निपुण हैं। उनके शब्द ही अर्थ को प्रतिध्वनित करने मे समर्थ होते हैं। युद्ध के प्रसग का यह दृष्टान्त प्रस्तुत है, जिससे युद्ध की ध्वनि स्पष्ट रूप से निकलती है—*महाप्रलयसनिभः समरसघट्ट. सर्वतश्च गात्रसघट्टरणितघण्टानामरिद्वीपावलोकनक्रोधधावितानामिभपतीना च* वाजिना हूंषितेन, हर्षोत्तालमूलताडिततुरगबद्धरहसा च स्यन्दनानां चीत्कृतेन, सकोपधानुष्कनिर्दयास्फोटितज्याना च चापयष्टीना टङ्कृतेन,खरखुरप्रदलितदण्डानां च पर्यस्यता रथकेतनाना कडत्कारेण निष्ठुरधनुर्यन्त्रनिष्ठयूताना च निर्गच्छता नाराचानां सूत्कारेण, वेगोह्यमानविवशवैतालकोलाहलघनेन च रुधिरापगानां घूत्कारेण ..*साक्रन्दमिव साट्टहसमिव सास्फोटनरवमिव ब्रह्माण्डमभवत्।* पृ 87

धनपाल युद्ध के वर्णन मे जितने निपुण हैं, उतने ही स्त्रिया के आभूषणो की मधुर झकार करने मे भी हैं—सस्वरोपसृतवेला ... जघनपुलिनसारसीनां रसनाना शिञ्जितेन " . कनककङ्कणाना क्वणितेन . " मुक्ताहाराणां रणितेन "'

---

[1] अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तिरचनेय सर्वविद्याब्धिना।
श्रीमुंजेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृत.॥
—तिलकमजरी, पद्य 53

तारतरोच्चारेण नतिरभसविच्युतानामासाद्यासाद्य सोपानमणिफलकमाबद्धफालानां सीमन्तकालंकारमाणिक्यानां जवावतरणजन्मना स्वादूकृतः स्वनसंतानेन...... अलिगणानां गुङ्कृतेन......मधुरगम्भीरेण चरणपातधमारवेण संवर्धितः...... स्त्रैणस्य मसृणतारो नूपुराणामुच्चचार झात्कारः। —पृ. 158

उनके अर्थ को ध्वनित करने वाली कुछ अन्य संगीतमय वाक्य रचनाओं के उदाहरण दिये जाते हैं—

(1) सकलकलोच्छलत्प्राज्यपरिमलव्यंजितत्लाज्यतरुविटूक्षेपैः पृ. 117

(2) उत्कर्णतर्णकाकर्णितमल्यमानमथितमन्थनीमन्थरनिर्घोषैः पृ. 117

(3) पदे पदे रणितमधुकरजालकिंकिणीचक्रवालेन वकुलमालामेखलागुणेन —पृ. 107

शब्दभण्डार

धनपाल के पास अक्षय शब्द-भण्डार है। प्रायः वे एक ही अर्थ व भाव को द्योतित करने वाले मिलते-जुलते अनेक शब्दों को एक साथ प्रयुक्त करते हैं, जिससे उस भाव की प्रबलता स्पष्ट हो जाती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) मूर्तैरिवाधिष्ठिता, कृतान्तदूतैरिव कटाक्षिता, कलिकालेनेव कवलिता, समग्रपापग्रहपीडाभिरिव क्रोडीकृता...... —पृ. 40

(2) प्रकीर्ण इव गुंजाफलेषु, अंकुरित इव राजशुकचंचुकोटिषु, पल्लवित इव कृकवाकुचूडाचक्रेषु, मंजरित इव सिंहकेसरसटासु, फलित इव कपिकुटुम्बिनी कपोलकूटेषु, प्रसारित इव हरितालस्थलीषु, क्षुल्ल इव शबरराजसुन्दरीसान्द्रनखदन्तक्षतेषु, राशीकृत इव पद्मरागसानुप्रभोल्लासेषु...... पृ. 151-52

(3) प्रवर्त्यमानापि च गुरुभिः, प्रबोध्यमानापि धर्मशास्त्रविद्भिः, प्रलोभ्यमानापि अनेकधा विद्याधरेन्द्रकुलकुमारैः, प्रसाध्यमानापि प्रियसखीभिः, विक्रियमाणापि प्रकटितालीकोपाभिः ...... —पृ. 169

(4) सर्वसागरैरिवोत्पादितगाम्भीर्यः, सर्वगिरिभिरिवाविर्भावितोन्नतिः, सर्वज्वलनैरिव जनितप्रतापः, सर्वचन्द्रोदयैरिव रचितकीर्तिः, सर्वमुनिभिरिव निर्मितोपशमः, सर्वकेसरिभिरिव कल्पितपराक्रमः............उपबृंहितप्रभावः...... — पृ. 13-14

(5) पातालपंकादिवोन्मग्नम्, प्रलयघनदुर्दिनादिव निःसृतम्, कृतान्तमुखकुहरादिवाकृष्टम्, महाकालकरकपालोदरादिवोच्छलितम्, तक्षकाशीविषवेगवेदनयेवोन्मुक्तम्...... —पृ. 192

पर्याय

तिलकमजरी मे शब्दो की अपार राशि बिखरी पडी है, जिनको मिलाकर एक कोष बनाया जा सकता है, यह धनपाल के गहन अध्ययन का परिणाम है। धनपाल ने एक संस्कृत-नाममाला भी रची थी, किन्तु वह प्राप्त नही होती, केवल उसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थ सूची मे मिला है। हेमचन्द्र ने तो 'व्युत्पत्तिर्धनपालत' कहकर उसकी प्रशसा की है। धनपाल की शब्द-सामर्थ्य को प्रदर्शित करने हेतु सूर्य चन्द्रमा, शिव, कामदेव, समूह तथा ध्वनि शब्दो के पर्याय तिलकमजरी से सगृहीत किये गये हैं। तिलकमजरी मे प्राय इनका सर्वत्र प्रयोग होने से पृष्ठ सख्या का उद्धरण नही दिया गया है—

(1) सूर्य —वासरमणि, सप्तसप्ति, दिनकर, भास्वत्, गभस्तिमालिन्, अहिमाशु, खराशु, अर्क, ग्रहग्रामणी, हरिदश्व ,भास्कर, मरीचिमालिन्, चण्डाशु, तिग्माशु, उष्णदीधिति, तपन्, दिनेश, रवि, अनूरुसारथि, ब्रध्न, अरुणसारथि, अनूरू, अरुण, पतग, सूर्य, उष्णरश्मि, तिग्मभानु, मित्रम, दिवसकर, ललाटन्तप, दिवसमणि, तरणि, धुमणि, चण्डदीधिति, अहिमगभस्तिम्।

(2) चन्द्रमा—हिमकर, अमृतकर, शशधर, निशीथ, हरिणलाछन, श्वेतकिरण, मृगाक, इन्दु, शशि, चन्द्र, ऋक्षपति, रजनिजानि, नक्षत्रनाथ, ग्रहपति, सिताशु, राजा, हरिणाक, एणाक, शशाक, निशाकर, हिमगमस्तिन्, हिमाशु, *सुधाशु, शीतरश्मि, तारकाराज।*

(3) शिव—हर, स्थाणु, रुद्र, शूलपाणि, भैरव, मृगाकमौलि, विषमाक्ष, विशालाक्ष, ईशान, शिपिविष्ट, शिव, खण्डपरशु, त्र्यम्बक, धूर्जटि, गजदानवारि, शूलायुध, अन्धकाराति, क्रीडाकिरात।

(4) कामदेव—अनग, कामदेव, कन्दर्प, कुसुमबाण, मनसिशय, कुसुमेषु, कुसुमायुध, मानसभू, मकरलक्ष्मा, मकरध्वज, कुसुमसायक, मदन, सकल्पयोनि, मन्मथ, कुसुमधनुप, स्मर, मार, मनोभव, मनसिज, पचेषु, चित्तयोनि, प्रद्युम्न, कुसुमकार्मुक, विषमबाण, स्मरणयोनि, अयुग्मेषु, विषमसायक, रतिभर्त्तृ, रतिपति, मीनध्वज।

(5) समूह—ग्राम, निकर, प्रकर, कलाप, चक्र, श्रेणि, मण्डल, वर्ग, गण, व्रात, पटल, निवह, जाल, सार्थ, सन्तान, राशि, व्रज, सहति, विसर, वृन्द, सघात, समाज, कुल, चक्रवाल, सघ, निकाय, कदम्ब, जाति, ओघ, पेटक।

(6) ध्वनि—ध्वान, रव, रणित, शिजित, क्वणित, स्वन, गुजन, आख चीत्कार, मुखरित, निर्घोष, स्तनित, घर्घर, झात्कार, निनाद, निनद, नाद, हाहाख, क्वाण, झंकार, फाकृत, किलकिलाख, कोलाहल, बृहित, हेषित, चीत्कृत, कडत्कार, सूत्कार, धूत्कार, टकृत, गर्जित।

अलंकार-योजना

अलंकृत शैली धनपाल के समय में दरबारी कवियों की विशेषता थी। धनपाल के मत में कान्ति, सुकुमारता आदि स्वाभाविक गुणों से युक्त काव्य, अलंकार रहित होते हुए भी सहृदयों के हृदय को आकृष्ट करता है।[1] धनपाल ने अलंकारों की अपेक्षा काव्य में गुणों को अधिक महत्व दिया है और गुणों में भी प्रसाद गुण को।[2] अलंकारों में धनपाल के मत में स्वाभावोक्ति को सर्वोत्कृष्ट कहा गया है।[3]

अपने काव्य को अलंकारों की सुषमा से जगमगाने में धनपाल अत्यन्त निपुण हैं। उनके अलंकार-प्रयोग की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(1) धनपाल शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों के समन्वय मे अत्यन्त चतुर हैं। तिलकमंजरी में सर्वत्र अनुप्रास, यमक की छटा बिखरी हुई है, तथा स्थान-स्थान पर अर्थालंकारों से तिलकमंजरी का शृंगार किया गया है।

(2) धनपाल को परिसंख्या अलंकार के प्रयोग में विशेष निपुणता प्राप्त है। तिलकमंजरी में इस अलंकार का प्रयोग बहुलता से किया गया है। अतः कहा जा सकता है, 'उपमा कालिदासस्य. "उत्प्रेक्षाबाणभट्टस्य," परिसंख्या-धनपालस्य"। श्लिष्ट परिसंख्या का इतना चमत्कारिक प्रयोग अन्य संस्कृत काव्य में नहीं मिलता है। परिसंख्या के अतिरिक्त धनपाल को विरोधाभास तथा उत्प्रेक्षा अलंकार अत्यन्त प्रिय हैं। अतः परिसंख्या, विरोधाभास तथा उत्प्रेक्षा अलकार के प्रयोग में धनपाल की विशिष्टता है।

(3) विशिष्ट व्यक्ति अथवा स्थान के वर्णन में धनपाल अलंकारों की झड़ी लगा देते हैं। जैसाकि अयोध्या तथा मेघवाहन के वर्णन से ज्ञात होता है। इनमें प्रायः एक के बाद एक करके सभी प्रमुख अलंकार क्रमबद्ध रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

(4) धनपाल न केवल अलंकारों के प्रयोग में ही चतुर हैं, अपितु वे उपमान चयन में भी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते है। उनके उपमान अत्यन्त समीचीन व प्रसंगोपात्त होते हैं। वर्ण्य विषय तथा प्रसंग के अनुसार उपमान का चयन धनपाल के अलंकारों की चौथी विशेषता है। नायिका तारक के प्रसंग में

---

1. उज्झितालंकारामप्यकृत्रिमेणकान्तिसुकुमारतादिगुणपरिगृहीतेनांगमाधुर्येण सुकविवाचमिव सहृदयाना हृदयमावर्जयन्तीम्।
—तिलकमंजरी, पृ. 71

1. प्रसत्तिमिव काव्यगुणसंपदाम्,
—तिलकमंजरी, पृ. 159

2. जातिमिवालंकृतीनाम्,
—वही, पृ. 159

सभी समुद्र सम्बन्धी वस्तुओ को उपमान बनाया गया है ।[1] इसी प्रकार इसके सहयोगी मल्लाहो के प्रसग मे सभी उपमान कृष्णवर्णी तथा जलसम्बन्धी वस्तुओ के हैं ।[2] गोपललनाओं के प्रसग मे उनकी तुलना सभी गोरस सम्बन्धी वस्तुओ से की गयी है ।[3] वेताल के नखो की कालि को गधे की तुण्ड के समान घूसर वर्ण का कहा गया है ।[4] अत धनपाल अपने अलकार-प्रयोग मे औचित्यत्व के प्रति पूर्ण रूप से सचेत थे । अलकार का उचित प्रयोग जहा काव्य का सौन्दर्य बढाता हैं, वहीं अनुचित होने पर रस का बाधक बन जाता है । क्षेमेन्द्र (11 वी शती) के अनुसार अलकार वही हैं जो उचित स्थान पर प्रयुक्त किये जायें ।[5] काव्य के शोभाधायक धर्मो को अलकार कहा जाता है ।[6] "अलकरोति इति अलकार." यह अलकार शब्द की व्युत्पत्ति है । अत जो काव्य के शरीर भूत शब्द तथा अर्थ को अलकृत करे, वह अलकार है ।

अलकारो का विभाजन प्रमुखतया दो विभागो मे किया गया है। शब्दालकार तथा अर्थालकार । जो अलकार शब्द परिवृत्ति को सहन कर लेते हैं, वे अर्थालकार कहलाते हैं तथा शब्द परिवृत्ति को सहन नहीं करने वाले शब्दालकार कहलाते हैं ।

शब्दालंकार

शब्दालकारो मे अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा पुनरुक्तवदाभास का प्रयोग तिलकमजरी मे हुआ है ।

(1) अनुप्रास—वर्णो का साम्य अनुप्रास कहा जाता है[1] अर्थात् स्वर भिन्न होने पर भी केवल व्यजनो की समानता होने पर अनुप्रास अलकार होता

---

1 इन्दुकान्ततटवालण्य ललाटेन, शुक्तिसौन्दर्य श्रवणयुगलेन, मौक्तिकाकार दन्तकुड्मलंविद्रुमरागमोष्ठेन
—तिलकमजरी, पृ. 126

2. काककोकिलकलविककण्ठकालकायैर्मकररिवालपसेविलुमकूपारमध्यादेवहेलया-निर्गतैर्मद्गुभिरिव'
—वही, पृ 126

3. वही, पृ 118

4 आवद्धास्थिनूपुरेण स्थवीयसा चरणयुगलेन रासभप्रोथधूमर नखप्रभाविसरम्
—वही, पृ 46

5 क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा, पृ 1, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, बनारस, 1933

6. काव्यशोभाकरान् धर्मानलकारान् प्रचक्षते ।
—दण्डी, काव्यादर्श, 2/1

है। अनुप्रास का तिलकमंजरी में सर्वत्र प्रयोग किया गया है। कुछ उल्लेखनीय उद्धरण प्रस्तुत हैं—

(अ) वंजुलनिकुंजपुंजमानमंजुकुक्कुटक्कणितेन —पृ. 210

(ब) आरब्धकेलिकलहकोकिलकुलाकुलितकलिकांचित —पृ. 211

(स) विपदिव विरता विभावरी —पृ. 28

(2) यमक—अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णों की पुनरावृत्ति यमक कहलाती है।[2] मेघवाहन के वर्णन में यमक का सुन्दर उदाहरण है—

दृष्ट्वा वैरस्य वैरस्यमुज्झितास्त्रो रिपुव्रजः।
यस्मिन् विश्वस्य विश्वस्य कुलस्य कुशलं व्यधात्॥[3]

(3) श्लेष—धनपाल ने इस अलंकार का प्रायः उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या तथा विरोधाभास अलंकारों के साथ संसृष्ट रूप में प्रयोग किया है। श्लेष के तीन उदाहरण दिये जाते हैं—(प्रारम्भिक स्तुति पद्य मे समंग तथा वचन-श्लेष का उदाहरण मिलता है)—

प्राज्यप्रभावः प्रभवो धर्मस्यास्तरजस्तमाः।
ददतां निर्वृतात्मा न आद्योऽन्येऽपि मुदं जिनाः॥[4]

इस पद्य में 'जिनाः' तथा 'आद्यो' दोनों के पक्ष मे अर्थ घटित होने से एकवचन-बहुवचन श्लेष है, तथा 'प्राज्यप्रभाः' तथा 'प्राज्यप्रभावः' पद में समंग श्लेष है।

श्लेष का अन्य उदाहरण—

शेषे सेवाविशेषं ये न जानन्ति द्विजिह्वताम्।
यान्तो हीनकुलाः किं ते न लज्जन्ते ? मनीषिणाम्॥[5]

सज्जन की सेवा न करने वाले दो-मुंहे नीच कुल में उत्पन्न लोग क्या सज्जनों के मध्य नहीं लज्जित होते हैं ? अथवा जो दो जीभ धारण करने वाले अहीनकुलों में उत्पन्न होने वाले शेष (नागराज) की सेवा नहीं जानते, वे मनीषियों के बीच क्या लज्जित नहीं होते। इस पद्य में शेषे से, हीनकुलाः द्विजिह्वतां पदों में श्लेष है।

युद्ध के प्रसंग में श्लेष का सुन्दर उदाहरण मिलता है—"उन दोनों सेनाओं का कुछ समय, नवदम्पत्ति के कर-पल्लव के समान कांची के ग्रहण

---

1. वर्णसाम्यमनुप्रासः। मम्मट, काव्यप्रकाश, 9/103
2. अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः यमकम्। —वही, 9/116
3. तिलकमंजरी, पृ. 16
4. तिलकमंजरी, पृ. 1
5. वही, पृ. 2

तथा रक्षण मे अत्यन्त आग्रह युक्त होकर वीता।'[1] यहा 'काची' शब्द मे श्लेष है, काची का नगरी तथा करधनी अर्थ है। तारक की नौ-अभ्यर्थना में श्लेष के द्वारा नौ के बहाने से मलयसुन्दरी से प्रणय-याचना की गयी है।[2] यह प्रसग धनपाल के श्लेष-प्रयोग की निपुणता प्रदर्शित करता है।

पुनरुक्तवदाभास—विभिन्न आकार वाले शब्दो मे समानार्थकता न रहते हुए भी जो समानार्थता की सी प्रतीति होती है। वह पुनरुक्तवदाभास अलकार है।[3] इसमे पहले पुनरुक्ति मे प्रतीति होती है किन्तु अन्त मे नहीं रहती। यथा–धूर्जटिललाटलोचनाग्निनेव हृदयेनानगीकृतकदर्पयो[4] इसमे 'अनग' तथा 'कन्दर्प' मे पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है।

अर्थालकार

विभिन्न आलकारिको ने अर्थालकारो के अनेक भेद परिगणित किए है, तथा वे इनकी सख्या के विषय मे एक मत नही है। वस्तुत सभी अलकारो के मूल मे चार बातें हैं, जिनके आधार पर अनेक भेद-प्रभेद बनते हैं। आचार्य रुद्रट के मत मे (1) वास्तव (2) औपम्य (3) अतिशय तथा (4) श्लेष इन चार तत्वो के मूल मे सभी अर्थालकार समा जाते हैं। कुछ अलकार वास्तविकता पर आधारित होते हैं, कुछ औपम्य मूलक होते हैं, कुछ अतिशय व्यजक होते हैं तथा कुछ श्लेष पर आधारित होते हैं।[5] वस्तु के यथावत् स्वरूप का चित्रण वास्तव मे है। सहोक्ति, समुच्चय, यथासख्य, भाव, पर्याय, विषम, दीपक आदि अलकार वास्तव जाति मे परिगणित होते हैं।[6] जहा वस्तु के सम्यक् वर्णन के लिए उसी के समान अन्य वस्तु का उल्लेख किया जाता है, वहा औपम्य माना जाता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, सशय, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त आदि अलकार इस श्रेणी मे आते हैं।[7]

किसी वस्तु को उसके प्रसिद्ध स्वरूप से भिन्न अलौकिक ढग से कहना अतिशय कहा जाता है। इस वर्ग मे अतिशयोक्ति, विशेष, तद्गुण, विषम आदि

---

1 एव च काचीग्रहणरक्षणविधावधिरूढगाढाभिनिवेशयोरासीनवोढदम्पतिकर-पल्लवयो —तिलकमजरी, पृ 83

2 वही, पृ 283–286

3 पुनरुक्तवदाभासो विभिन्नाकारशब्दगा एकार्थतेव। —मम्मट काव्यप्रकाश, 9/121

4 तिलकमजरी, पृ 104

5. रुद्रट, काव्यालकार 7/9

6 रुद्रट, काव्यालकार 7/10

7. वही, 8/1

अलंकार हैं।[1] इसी प्रकार जहां अनेकार्थक पदों से रचित एक काव्य से अनेक अर्थ लगाये जाते हैं, वहां अर्थ-श्लेष होता है।[2] अतः इन्हीं चार मूल तत्वों को ध्यान में रखते हुए कवि कुछ हेरा-फेरी के साथ भिन्न-भिन्न तरीकों से अपने मनोभाव प्रकट करता है, उसी से अलंकार के अनेक भेद-प्रभेद बन जाते हैं।

तिलकमजरी में सभी प्रमुख अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है। तिलकमंजरी में अलंकारों का सर्वत्र ही प्रचुर प्रयोग होने के कारण सभी का उद्धरण देना असंभव है, अतः स्थाली-पुलाव न्याय से प्रत्येक अलंकार के दो-दो, तीन-तीन उदाहरण यहां दिये जायेंगे। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, ससन्देह, समासोक्ति निदर्शना, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, अर्थान्तर-न्यास, विरोधाभास, स्वाभावोक्ति, सम, विषम, तद्गुण सहोक्ति, व्याजस्तुति, परिसंख्या, काव्यलिंग, कारणमाला, इन 23 प्रमुख अर्थालंकारों का लक्षण तथा उदाहरण सहित क्रमशः विवेचन किया जायेगा।

(1) उपमा—उपमा को समस्त अलंकारों का मूल कहा गया है। प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी अलंकारिकों ने उपमा के अनेक भेद-प्रभेद करके उसी में अनेक अलंकारों का अन्तर्भाव कर यह सिद्ध कर दिया है कि उपमा काव्या-लंकारों में प्राणभूत है। महिमभट्ट ने 'सर्वेष्वलंकारेषूपमा जीवितायते' कहकर उपमा की महिमा का गान किया है। रूय्यक ने उपमा को अनेक अलंकारों में बीज-भूत कहा है।[3] अप्पय-दीक्षित (16वीं शती) के अनुसार उपमा वह नटी है जो काव्यरूपी नाट्यशाला में अकेली ही विभिन्न अलंकारों के रूपों को धारण कर अपना नृत्य दिखाती हुई सहृदयों के हृदय को आह्लादित करती है।[4] राजशेखर ने उपमा को अलकारों का शिरोरत्न, काव्य का सर्वस्व यहां तक कि कवियों की माता के समान कहा है।[5] उपमा के इसी प्राधान्य के कारण सभी अलंकारिकों ने अर्थालंकारों में सर्वप्रथम उपमा का ही उल्लेख किया है।

---

1. वही, 9/1
2. वही, 10/1
3. रूय्यक, अलंकारसर्वस्व, उपमैवानेकालंकारबीजभूता
   —उद्धृत, अलंकार मीमांसा : रामचन्द्र द्विवेदी, पृ. 206
4. उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।
   रञ्जयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः॥
   —अप्पयदीक्षित, चित्रमीमांसा, पृ. 5, काव्यमाला 38, 1907
5. अलंकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।
   उपमा कविवंशस्य मातेवेति मतिर्मम॥
   —उद्धृत, केशवमिश्र, अलंकारशेखर पृ. 32

मम्मट (11वीं शती) के अनुसार उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर उनके समान धर्म का वर्णन उपमा कहलाता है ।[1] वह उपमा दो प्रकार की कही गयी है — (1) लुप्तोपमा (2) पूर्णोपमा ।[2]

उपमा में उपमान, उपमेय, साधारण धर्म तथा वाचक शब्द, इन चार तत्वों का समावेश होता है इन चारो के शब्दत उपस्थित रहने पर *पूर्णोपमा होती है तथा लुप्तोपमा मे इन चारो मे से किसी न किसी का लोप* रहता है ।

(1) लुप्तोपमा—लुप्तोपमा का एक सुन्दर उदाहरण तिलकमजरी मे मिलता है—'कुन्दनिमला ते स्मितद्य ुतिः' (पृ 113) इसमे वाचक शब्द लुप्त है । इसी प्रकार—'कुसुमायुध इव आयुधद्वितीय ' (पृ 19) इसमे उपमेयभूत मेघवाहन का शब्दत उल्लेख नही किया गया है अत यह लुप्तोपमा है ।

(2) पूर्णोपमा—यह श्रौती तथा आर्थी, इन दो प्रकार की कही गयी है । यथा, इव, वा का प्रयोग होने पर श्रौती उपमा होती है तथा तुल्य, सदृश आदि के प्रयोग होने पर आर्थी उपमा होती है ।[3]

(अ) श्रौती पूर्णोपमा—लक्ष्मी के वर्णन मे श्लेषोत्थापित श्रौती पूर्णोपमा का उदाहरण मिलता है—"अनेक तथा विस्तृत पत्तो के फणावलय से सुशोभित, लम्बे विशाल मृणालदण्ड के शरीर से युक्त तथा चन्द्रमा की पाण्डुवर्ण कान्ति वाले कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी शेषनाग पर स्थित पृथ्वी के समान जान पडती थी ।[4]

(आ) आर्थी पूर्णोपमा—का सुन्दर उदाहरण प्रात काल के वर्णन मे प्राप्त होता है—"प्रभातकाल मे तारे पके हुए अनार के दाने के समान (लाल) हो गये हैं, अधकार के जीर्णतन्तु पल्लवो से तुलनीय हो गये हैं तथा पश्चिम दिशा की भित्ति पर स्थित ज्योतिहीन, पाण्डुवर्णी पूर्णचन्द्र का बिम्ब मकडी के जीर्ण जाले के समान प्रतीत होता है ।"[5] ये सभी उपमान धनपाल की मौलिक व असाधारण प्रतिभा के प्रतीक हैं ।

---

1. मम्मट, काव्यप्रकाश, साधर्म्यमुपमाभेदे, 10, 124
2. पूर्णालुप्ता च —वी, 10, 125
3. मम्मट, काव्यप्रकाश, 10-126
4. विततदलसहस्रफणावलयशोभिनि पृथुलदीर्घनालभोगे शेषभुजग इव मेदिनी-मिन्दुकरपाण्डुरत्विषि पुण्डरीके कृतावस्थानाम् ......
—तिलकमजरी, पृ 54
5. जाता, दाडिमबीजपाकसुहृद सन्ध्योदये तारका
यान्ति प्लुष्टजरत्पलालतुलना तान्तास्तमस्तन्तव ।
ज्योत्स्नापायविपाण्डु मण्डलमपि प्रत्यड्नभोभित्तिभावपूर्णेन्दोर्ज-
रदूर्णनाभनिलयप्रागल्भ्यमभ्यस्यति ॥ —तिलकमजरी, पृ 238

इसी प्रकार के एक अप्रसिद्ध उपमान का अन्य उदाहरण प्रस्तुत है—'यह सूर्य धीवर के समान तारों रूपी मछलियों के समूह से युक्त आकाश रूपी ताधलाव से अंधकार रूपी जाल को किरणों के हाथों से खींच रहा है।'[1] इसमें रूपक से संसृष्ट उपमा है।

पौराणिक उपमान

धनपाल प्रायः रामायण, महाभारत तथा पौराणिक कथाओं से उपमान ग्रहण करते हैं, इसी प्रकार की कुछ उपमाओं के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) पार्थवत् पृथिव्यामेकधन्वी समरकेतुर्नाम। —पृ. 95
(2) त्रिविक्रममिव पादाग्रनिर्गतत्रिपथगासिन्धुप्रवाहम्, —पृ. 240
(3) सुग्रीवसेनामिव स्फुरत्तारनीलांगदाम्, —पृ. 55
(4) जामदग्न्यमार्गणाहतक्रौंचाद्रिच्छिद्रैरिव उद्भ्रान्तराजहंसैः, —पृ. 8
(5) सौमित्रिचरितमिव विस्तारितोर्मिलास्यशोभम्, —पृ. 204
(6) कूचित्सुग्रीवमिव कपिशतान्वितम्, —पृ. 222
(7) अजातशत्रुणासत्यव्रताधिष्ठितेन कृष्णद्वैपायनमिव युधिष्ठिरेण.... —पृ. 24
(8) अम्बिकायौवनोदयमिव वशीकृत विशमाक्षचित्तम्, —पृ. 24
(9) वृत्रमिवोपकण्ठलग्नवज्रानुविद्धफेनच्छटा.......... —पृ. 122
(10) शाक्यशिष्ययोरिवानुपजातविप्रयोगदुःखयोः, —पृ. 104

दार्शनिक उपमान

इसी प्रकार तिलकमंजरी में दार्शनिक साहित्य से भी उपमान चुने गये हैं। यथा—(1) बौद्ध इव सर्वतः शून्यदर्शी, —पृ. 28
(2) सत्तर्कविद्यामिव विधिनिरूपितानवप्रमाणाम्, —पृ. 24

धनपाल प्रायः अपने पात्रों की तुलना देवी-देवताओं से करते हैं। हरिवाहन की इन्द्र से समता प्रदर्शित की गयी है—'अच्छकान्तिरत्नदर्पणप्रतिबिम्बितैः प्रीतिनिश्चलचक्षुषो जनस्य सर्वतः सहस्रसंख्यैर्विलोचनैः शवलितगात्रयष्टिः ऐरावताधिरूढः सहस्राक्ष इव साक्षादुपलक्ष्यमाणः (105)। इसी प्रकार मेघवाहन की शिव से तुलना की गई है—'कदाचिन्मुदितसुहृद्गणोपदिश्यमानमार्गोमृगांकमौलिरिव कैलासशिखरे बभ्राम' पृ. 17।

धनपाल प्रायः एक ही उपमा का प्रयोग न करके अनेक उपमाओं की शृंखला एक साथ उपस्थित करते हैं। यथा—करेणुराज इव विलोलयन् कमलिनीखण्डानि, षडंघ्रिरिवाजिघ्रन् सहस्रदलकमलामोदम्, इन्दुरिव मोचयन्

---

1. अन्तर्विस्फुरितोरुतारकतिमिस्तोमं नभः पल्वला-
द्धान्तानायमयं च धीवर इवाकृष्टः करैः कर्षति ॥ —वही, पृ. 238

कुमुदमुकुलोदरसदानितान्यलिकदम्बकानि, प्रदीप इव विघटयन्रथांगमिथुनानि, राजहंस इवोल्लसल्लहरीपरम्पराप्रेर्यमाणमूर्तिरुत्तनार । —पृ 206-207

श्लेषोपमा

श्लेष पर आधारित उपमा का भी तिलकमंजरी में बहुलता से प्रयोग पाया गया है। श्लेषोपमा के उदाहरण, आराम (211-212), आयतन (204) अटवी (200) आदि के वर्णनों में मिलते हैं। चार उद्धृत किये जाते हैं—

(1) वैशम्पायनशापकथाप्रक्रममिव दुर्वर्णशुकनाशमनोरमं जीवमिव, वसन्तचूतद्रुममिवचारुमञ्जरीकम् —पृ 215

(2) नदीतटतरुमिव स्फुटोपलक्ष्यमाणजटम् ग्रीष्मकूपमिव" —पृ. 24

(3) त्रयीमिव महामुनिसहस्रोपासितचरणाम्" —पृ 222

(4) क्वचिद्वधूलोचनयुगमिव कृष्णतारोचितम्, क्वचिद्विन्ध्याचलमिव धवलाक्रान्तम्, क्वचित्सुग्रीवमिव कपिशताम्वितम्" —पृ 222

मालोपमा

तिलकमंजरी में मालोपमा का प्रयोग अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। जहां एक उपमेय के लिए अनेक उपमानों का ग्रहण होता है वहां मालोपमा होती है। चार उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) वारिबद्ध इव वनकरी, लब्धमिथ्याभिशाप इव साधुरकस्मात् प्रनष्टसकलगृहस्वापतेय इव गृहपतिरापतोष्णान् मुहुर्मुहुः सृजसि निश्वासान्। —पृ. 111

(2) गगनाभोग इव शशि—भास्कराभ्यामच्युत इव शंखचक्राभ्याम-स्मत्पतिरिवामृतवाडवाभ्यामभिराममौयणो यश प्रतापाभ्याम्। —पृ 13

(3) चन्द्रमण्डलमिव शिशिरात्ययेन मानससरस्तोयमिवागस्त्योदयेन, सुकविवाचमिव सज्जनपरिग्रहेण, गगनतलमिव शरत्कालागमेन, सप्रसादमपि किमपि मे प्रसादित हृदयम्। —पृ 56

(4) कोटरोदरनिमग्नदावाग्निमुर्मुर इव महाद्रुमः, मूललग्नकीट इव पकजाकरः, देहनष्टराहुदंष्ट्राशकल इव निशाकर. सान्तस्ताप इव लक्ष्यते भवान्। —पृ 27

रशनोपमा का कोई उदाहरण तिलकमंजरी में नहीं मिलता है। मूर्त के लिए अमूर्त उपमान के उदाहरण भी तिलकमंजरी में दुर्लभ हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—'प्राप्यन्ते घटना रथांगमिथुनैस्त्वद्वाञ्छितार्थैरिव' (238) तुम्हारे मनोरथों के समान चक्रवाकों का भी सम्मेलन हो रहा है।

अत. तिलकमंजरी में सात प्रकार की उपमाओं के उदाहरण प्राप्त होते हैं। रशनोपमा का इसमें प्रयोग नहीं किया गया है। इस प्रकार ये कतिपय उदा-

हरण धनपाल के उपमा प्रयोग के नैपुण्य को प्रदर्शित करते हैं तथा उनके साम्य-दर्शन की क्षमता को दर्शित करते हैं।

उत्प्रेक्षा

सम्पूर्ण तिलकमंजरी में उत्प्रेक्षा अलंकार का चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। नवीन कल्पनाओं से काव्य को अलंकृत करना गद्य-काव्य की विशेषता है। कुछ विशिष्ट एवं असाधारण उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण दिये जाते हैं।

जहां प्रकृत अर्थात् उपमेय की सम (उपमान) के साथ सम्भावना वर्णित की जाती है वहां उत्प्रेक्षा होती है।[1]

तिलकमंजरी में विभिन्न प्रकार की उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग को दर्शित करने वाले कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(1) प्रातःकाल में चन्द्रमा के अस्त होने की कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—'प्रातःकालीन वायु के संसर्ग से ठिठुरने के कारण यह चन्द्रमा दिशाओं रूपी शैय्यातल से अपने किरणरूपी पैरों को सिकोड़ रहा है।[2] यहां वायु के संसर्ग से ठिठुरना, पैरों को सिकोड़ने का हेतु है, अतः हेतूत्प्रेक्षा है।

(2) विजय-प्रयाण के समय समरकेतु द्वारा धारण की गयी एकावली के विषय में सुन्दर उत्प्रेक्षा की गयी है—"बड़े-बड़े निर्मल मोतियों से निर्मित नाभिलम्ब एकावली ऐसी प्रतीत होती थी मानो तत्समय प्रहृष्ट, वक्षःस्थल में निवास करने वाली राजलक्ष्मी की दोनों ओर बहने वाली आनन्दाश्रुओं की धारा हो।"[3]

(3) धनपाल उत्प्रेक्षित वस्तु अथवा स्थिति या भाव को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए एक साथ अनेक उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए—

(अ) विस्मयमयीव कौतुकमयीवाश्चर्यमयीव प्रमोदमयीव क्रीडामयी-वोत्सवमयीव निर्वृत्तिमयीव धृतिमयीव हासमयीव सा विभावरी विराममभजत्
पृ. 62

---

1. 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्'
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10-136

1. उद्यज्जाड्य इव प्रगेतनमरुत्संसर्गतश्चन्द्रमाः, पादानेष दिगन्ततल्पतलतः संकोचयत्यायतान्। तिलकमंजरी, पृ. 238

2. स्थूलस्वच्छमुक्ताफलग्रथितां तत्क्षणप्रमुदितायाः वक्षस्थलभाजो राजलक्ष्म्याः लोचनद्वयादानन्दाश्रुपद्धतिमिव द्विधाप्रवृत्तां नाभिचक्रचुम्बिनीमेकावलीं दधानो····
—वही, पृ. 115

(आ) मूर्तैरिवाधिष्ठिता, कृतान्तदूतैरिव कटाक्षिता, कलिकालेनेव कवलिता समप्रपापग्रहपीडामिरिव क्रोडीकृता —पृ 40

(इ) पातालपकादिवोन्मग्नम्, प्रलम्घनदुर्दिनादिव नि सृतम्, कृतान्तमुखकुहरादिवाकृष्टम्, महाकालकरकपालोदरादिवोच्छलितम्, तक्षकाशीविषवेगवेदनयेवोन्मुक्तम् पृ. 192

(ई) अमर्षमय इव क्रौर्यमय इव, वैरमय इव, व्याजमय इव, हिंसामय इव विभाव्यमाने पृ 88

(4) प्रसन्न होकर लक्ष्मी ने मेघवाहन पर जो दृष्टि डाली, उसके लिए कवि की उत्प्रेक्षा है—'लक्ष्मी अपनी दुग्धधवल दृष्टि की किरणो से मेघवाहन के शरीर को मानो अमृत मे सीच रही थी, हिम-जल से स्नान करा रही थी, चन्दनागराग से मल रही थी, तथा मालती की कलियो से आच्छादित कर रही थी।[1]

(5) मन्ये, शके, ध्रुव, प्राय, नून इव आदि उत्प्रेक्षा के वाचक हैं। मन्ये तथा शके वाचक शब्दों से युक्त दो उदाहरण दिये जाते हैं—

(अ) मन्ये का प्रयोग—

अस्या नेत्रयुगेन नीरजदलस्रग्दामदैर्घ्यद्रुहा,
सचत्पार्वणचन्द्रमण्डलरुचा वक्त्रारविन्देन च।
स्वामालोक्य दृश रुच च विजिता तुल्य त्रपाबाधितै-
र्बद्धानिर्जनसचरेषु कमलैर्मन्ये वनेषु स्थिति ॥ पृ 256

(आ) शके का प्रयोग

जानीय श्रुतशालिनी खलु युवामार्वा प्रकृत्यजु ती
त्रैलोक्ये वपुरीदृगन्ययुवते' सभाव्यते किं क्वचित्
एतत्प्रष्टुमपास्तनीलनलिनश्रेणीविकाशश्रिणी,
शकेऽस्या. समुपागते मृगदृश. कर्णान्तिक लोचने ॥ पृ 248

(6) वैताढ्य पर्वत को जम्बूद्वीप का उष्णोपपट्ट, भारतवर्ष का मानसूत्र, आकाश रूपी सागर का सेतुबन्ध, पृथ्वी की सीमा रेखा, पूर्व दिशा का हार कहा गया है।[2]

---

1 चक्षुष क्षरता क्षीरधवलेनाशुविसरेण सुधारसेनेदाप्याययन्ती, हिमजलेनेव स्नापयन्ती, मलयजागरागेणेव लिम्पन्ती, मालतीमुकुलदाममिरिवाच्छादयन्ती 'राज्ञो वपु तिलकमजरी, पृ 56

2 उष्णोपपट्टमिव जम्बूद्वीपस्य, मानसूत्रमिव भारतवर्षस्य, सेतुबन्धमिव गगनसिन्धो, सीमन्तमिव भुव, हारमिव वैश्रवणहरित ' '
—तिलकमजरी, पृ 259

इसी प्रकार कुछ और उल्लेखनीय उदाहरण दिये जाते हैं—

(1) आधारमिव धैर्यस्य, हृदयमिव सौहृदय, स्वतत्वमिव सत्वस्य, परिपाकमिव पौरूषस्य, जयस्तम्भमिवावष्टम्भस्य, दृष्टान्तमिव कष्टंसहानाम् पृ. 231

(2) सुभटशस्त्र पातरणितेन प्रणम्यमानमिव, भूमिनिक्षिप्तमूर्धभिः कबन्धैरचर्यमानमिव, उच्छलकुम्भमुक्ताफलाभिः करिघटाभिरभिषिच्यमानमिव, मुक्तासृग्वृष्टिभि— पृ० 90

(3) विरचितालकेव मखानलधूमकोटिभिः, स्पष्टितांजनतिलकबिन्दुरिव बालोद्यानैः, आविष्कृतविलासेसहासेव दन्तवलभीभि' आगृहीतदर्पणेव सरोभिः— पृ० 11

रूपक

भेदयुक्त उपमान तथा उपमेय का सादृश्यातिशय के कारण जो अभेद वर्णन है, वह रूपक अलंकार कहलाता है।[1] नीचे तिलकमंजरी से रूपक के तीन उदाहरण दिये जाते हैं—

(1) "मदिरावती रागरूपी नट की रंगशाला, रूप की सोने की लेखनी, विभ्रम-भ्रमरों की कमलिनी, क्रीडारूप कलहसों का शरतकालागमन, कामदेव रूपी महावातिक की वशीकरण विद्या थी।"[2] यहां राग तथा नट, रूप तथा स्वर्ण, विभ्रम तथा भ्रमर, केलि तथा कलहंस में अभेद स्थापित किया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

(2) सांगरूपक एक का सुन्दर उदाहरण समुद्र के वर्णन में मिलता है—'वह समुद्र, हंसनूपुर के शब्दों को वन्दकर तीव्रता के कारण कम्पित पयोधरतटों से युक्त, क्रौंचमाला रूपी मेखलाओं से रहित पुलिनजघनों वाली, शफर रूपी नेत्रों से इधर-उधर देखती हुई, शैवल, प्रवाल रूपी कस्तूरिका से चिह्नित मुखों को नये जलरूपी वस्त्र से ढकती हुयी, नदियों रूपी अभिसारिकाओं से आलिंगित था।"[3]

इसमें प्रमुख रूपक निम्नगा में अभिसारिका का आरोप है, हंसनपुर, पयोधरतट, क्रौंचमालामेखला, पुलिनजघन, शफरलोचनादि रूपक अंगभूत हैं, अतः यह सांगरूपक है।

---

1. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः। —मम्मट काव्यप्रकाश 10/139
2. रंगशाला रागशैलूषस्य, ज्येष्ठवर्णिका रूपजातरूपस्य, अम्भोजिनी विभ्रमभ्रमराणां, शरत्कालागति। —तिलकमंजरी, पृ० 22
3. मुखरितमुखरहसनूपुररवनाभिः त्वरितगतिवशोत्कम्पमानपृथुपयोधरतटाभिर्मुक्तवाचालक्रौंचमालामेखलानि पुलिनजघनस्थलानि विभ्रतीभिरितस्ततो— निम्नगाभिसारिकाभिर्गाढमुपगूढम्। —तिलकमंजरी, पृ० 120–121

(3) जिसमे उपमेय पर अन्य का आरोप, अवश्यापेक्षणीय अन्य अर्थ के आरोप का कारण होता है वहा परम्परित रूपक होता है।[1] विद्याधर मुनि के वर्णन मे परम्परित रूपक का उदाहरण प्राप्त होता है—

"वह विद्याधर मुनि इन्द्रियवृत्ति रूपी स्त्रियो को परपुरुषदर्शन मे बचाने वाला कचुकी, साधुरूपी मयूरों के लिए पृथ्वी के ताप को हरने वाला मेघों का आगमन, काम-विकार रूपी सर्पों के लिए तीव्र विष को हरने वाला महामन्त्र तथा हृदयरूपी जलाशयो के लिए काशपुष्प की शुभ्रता से सुशोभित अगस्त्य नक्षत्र का उदय था।"[2]

यहा इन्द्रियवृत्ति मे वनिता रूपक मानने पर ही विद्याधर मुनि मे अन्त पुररक्षक का अभेद स्थापित किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य रूपक भी बनते हैं, अत यह माला रूप परम्परित रूपक का उदाहरण है।

ससन्देह

अत्यधिक सादृश्य के कारण उपमेय मे उपमान रूप से सशय करने पर सदेह नामक अलकार होता है। वह शुद्ध, निश्चय, गर्भ तथा निश्चयान्त रूप से तीन प्रकार का होता है।[4] शुद्ध सन्देह के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) शुद्ध सन्देह मे सशय बना ही रहता है। इसका उदाहरण तिलकमजरी को देखकर हरिवाहन की इस उक्ति मे मिलता है—"क्या यह राहु के ग्रस लेने से गिरी हुयी चन्द्रमा की शोभा है, अथवा मन्थन मे चक्ति समुद्र से निकली अमृत की देवी है अथवा यह शिव की नेत्राग्नि से भस्मीभूत कामदेव रूपी वृक्ष से उत्पन्न नवीन कन्दली है।[5] इसमे सन्देह का निवारण न होने से शुद्ध सन्देह है।

---

1 मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/144

2 परपुरुषदर्शनसावधान सौविदल्लमिन्द्रियवृत्तिवनितानाम्, भूतापद्रुहमम्बुधरागम साधुमयूराणाम्, दुर्विषहतेजस महामन्त्रमनगविकाराशीविषाणाम्।
— तिलकमजरी पृ० 25

3 ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च सशय —मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/137

4 रुय्यक, अलकारसर्वस्व, जयरथ की टीका, पृ० 43, काव्यमाला, 1893

5 ग्रहग्रवलाद् भ्रष्टा लक्ष्मी किमृक्षपतेरिय,
मथनचक्तिापक्रान्ताऽब्धेरुतामृतदेवता।
गिरिशनयनोदर्चिर्दग्धास्मनोभवपादपाद्,
विदितमथवा जाता सुमूरिय नवकन्दली॥ —तिलकमजरी, पृ० 248

(2) मलयसुन्दरी समरकेतु को देखकर कहती है—किमेष पाशग्रन्थि-पीडया निविडमास्कन्दितान्ममैव हृदयाद्विनिः सृतो वहिः अथवा प्रार्थिताभिर्मदनु-कम्पया देवनाभिर्दिव्यशक्त्या कुतोऽप्यानीतः, उतान्यदेव किंचित्प्रयोजनमालोच्य गुरुजनेन प्रहितः''''''', पृ० 312। यहां भी शुद्ध सन्देह है।

निश्चयान्त सन्देह का एक उदाहरण दिया जाता है—

(3) प्रभातकाल में हरिवाहन को जगाने के लिए वन्दी कहता है—रात्रि में दो या तीन सहयोगियों के साथ आपके विपक्ष द्वारा देवी के घर में, एक कोने में बैठकर दन्तवीणा बजाते हुए क्या संगीत का सेवन हो रहा है? नहीं, नहीं, राजन्। शीत-ऋतु का सेवन हो रहा है।[1]

यहां पहले संदेह से प्रारम्भ किया गया है, पर बाद में निश्चय होने से निश्चयान्त सन्देह का उदाहरण है।

समासोक्ति

जहां श्लेषयुक्त विशेषणों द्वारा अप्रस्तुत का कथन किया जाय वहां समासोक्ति अलंकार होता है।[2] समासेन संक्षेपेण उक्तिः समासोक्तिः—दो अर्थों का संक्षेप से कथन होने के कारण समासोक्ति कहलाता है।

मम्मट ने श्लिष्ट विशेषण माना है किन्तु उद्भट समान विशेषण मानते हैं। उद्भट (अष्टम शती) के अनुसार प्रस्तुत के द्वारा समान विशेषणों के कारण अप्रस्तुत की प्रतीति समासोक्ति अलंकार है।[3] दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) अयोध्या के वर्णन में समासोक्ति का उदाहरण मिलता है—"अयोध्या नगरी मानों यज्ञ के धुएँ से अलकें संवारती थी, क्रीडाद्यानों से अंजन का तिलक लगाती थी (नगरी के पक्ष में अंजन, बिन्दु, तिलक नामक वृक्ष) दन्तवलभियों से विलासमय हास को प्रकट करती थी, तथा सरोवरों से दर्पण ग्रहण करती थी।"[4] यहां प्रस्तुत अयोध्या नगरी में समान विशेषणों के द्वारा नायिका की प्रतीति कराई जा रही है, अतः समासोक्ति है।

---

1. गेहे देव्याः सुषिरनिपतन्मारुतोत्तानवेणो,
   घृत्वा कोणं विरचितलयो वादयन्दन्तवीणाम्
   रात्रौ द्वित्रैः सह सहचरैः सेवते त्वद्विपक्षः,
   किं संगीतं नहि नहि महीनाथ हेमन्तशीतम्॥ —वही पृ० 358
2. परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः —मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/147
3. प्रकृतार्थेनवाक्येन तत्समानैर्विशेषणैः। अप्रस्तुतार्थकथनं समासोक्तिरुदाहृता॥ —उद्भट, काव्यालंकारसंग्रह, 2/10
4. विरचितालकेव मखानलधूमकोटिभिःस्पष्टितांजनतिलकबिन्दुरिव बालोद्यानैः, आविष्कृतविलासहासेव दन्तवलभीभिः, आगृहीतदर्पणेव सरोभिः —तिलकमंजरी, पृ० 11

(2) अयोध्या के ही प्रसग मे श्लिष्ट विशेषणों द्वारा समासोक्ति का उदाहरण प्राप्त होता है—"पूर्वार्णव से आये हुए, सरल मृणालदण्डो को धारण करने वाले वृद्ध कचुको के समान राजहसो द्वारा क्षण भर भी मुक्त न की जाने वाली सरयू नदी अयोध्या के समीप बहती थी।"[1]

इसमे सरयू मे नायिका तथा पूर्वार्णव मे नायक की श्लिष्ट विशेषणो द्वारा प्रतीति होती है, अत समासोक्ति है।

निदर्शना

रुय्यक (12वी शती) के अनुसार जहा दो वस्तुओ के सम्भव तथा असम्भव सम्बन्ध के द्वारा बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव की प्रतीति होती है, वहाँ निदर्शना अलकार होता है।[2] दो वस्तुओ का एकत्र सम्बन्ध अन्वय की बाधा न रहने पर सम्भव होता है तथा अन्वय की बाधा होने पर असम्भव कहलाता है।

मम्मट ने केवल असम्भव वस्तुओ के लिए उपमा की कल्पना को निदर्शना कहा है।[3] दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) वेताल के वर्णन मे निदर्शना का सुन्दर उदाहरण मिलता है—"भीतर जलती हुई पिंगलवर्णी भीषण कनीनिकाओ से युक्त वेताल के भीषण आकृति वाले नेत्रयुगल ग्रीष्मकालीन सूर्य के प्रतिबिम्ब से युक्त यमुना के आवर्तयुगल के समान प्रतीत हो रहे थे।"[4] यहा जलती हुई कनीनिकाओ से युक्त वेताल के नेत्रो तथा सूर्य के प्रतिबिम्बो से युक्त यमुना के आवर्त-युगल मे बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने से निदर्शना अलकार है।

(2) इसी प्रकार अयोध्या के वर्णन मे निदर्शना का उदाहरण प्राप्त होता है—कमल की कर्णिका के समान अयोध्या नगरी भारतवर्ष के मध्यभाग को अलकृत करती थी।[5]

---

1 गृहीतसरलमृणालयष्टिभि पूर्वार्णवविनीर्णवृद्धकचुकीभिरिव राजहसै क्षणमप्यमुक्तपार्श्वया सरयूनाम्न्या कृतपर्यन्तसरया —वही, पृ 9

2 सम्भवाऽसम्भवता वा वस्तुसम्बन्धेन गम्यमान प्रतिबिम्बकरण निदर्शना। —रुय्यक, अलकारसर्वस्व, पृ 97

3 निदर्शना। अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पक॥ —मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/148

4 अन्तर्ज्वलितपिंगलोग्रतारकेण करालपरिमण्डलाकृतिना नयनयुगलेन यमुनाप्रवाहमिव निदाघदिनकरप्रतिबिम्बगर्भोदरेणावर्तद्वयेनातिभीषणम् —तिलकमजरी, पृ 48

5 वृत्तोज्ज्वलवर्णशालिनी कर्णिकेवाम्भोरुहस्य मध्यभागमलकृत्य स्थिता भारतवर्षस्य ····· —तिलकमजरी, पृ 7

यहां अयोध्या तथा भारतवर्ष, कमल एवं कर्णिका में विम्वप्रतिविम्व भाव से सम्बन्ध होने के कारण निदर्शना अलंकार है।

अतिशयोक्ति

भामह (अष्टम शती) ने गुणातिशय के योग से विशेष ढंग की कही हुई (लोकातिक्रान्तगोचर) बात को अतिशयोक्ति कहा है।[1] दण्डी ने भी काव्यादर्श में प्रस्तुत को असामान्य ढग से वर्णन करने को अतिशयोक्ति कहा है। तिलकमंजरी में अतिशयोक्ति के इसी प्रकार के उदाहरण मिलते हैं दो दृष्टान्त प्रस्तुत है—

(1) गन्धर्वदत्ता का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण है—"समान कान्ति के कारण जिसका स्वर्णपट्ट अस्पष्ट दिखाई देता था, (गन्धर्वदत्ता) उसके ललाट पर शत्रुओं के बन्दीजनों के पंखा झलने से सूक्ष्म अलक लताएँ नृत्य करती थी।"[2]

(2) इसी प्रकार आराम के वर्णन में अतिशयोक्ति अलंकार का उपयोग किया गया है—अवतीर्णश्च तस्मिंस्तापमतापमातपमनातपतपनमतपनं दिवसमदिवसं ग्रीष्ममग्रीष्मं कालमकालं तुषारपातमतुषारपातं त्रिभुवनमत्रिभुवनं सर्गकममसंस्त पृ. 212

दृष्टान्त

उपमान, उपमेय, उनके विशेषण, साधारण धर्म आदि का विम्व प्रतिविम्व भाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है।[3]

ज्वलनप्रभ की इस उक्ति में दृष्टान्त की झलक मिलती है— "क्षीरोद के अंक से दूर तथा स्वर्ग निवास को त्यागने के पश्चात् इस हार का आपके यहीं निवास-स्थान है, क्योंकि क्षीण होने पर भी चन्द्रमा आकाश या शिव की जटा को छोड़कर पृथ्वी पर नहीं उतरता है।[4] प्रस्तुत उदाहरण में हार तथा चन्द्रमा, सुरलोक वास का त्याग तथा शिव की जटा का त्याग, क्षीरसागर तथा अन्तरिक्ष में परस्पर विम्वप्रतिविम्व भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

---

1. निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम्, मन्यन्तेऽतिशयोक्तिं तामलंकारतया यथा। —भामह- भामहालंकार, 2/81
2. यस्यां ललाटे सदृशद्युतित्वादस्पष्टचामीकरपट्टबन्धे।
   ननर्ति सूक्ष्मालकवल्लरीणां मालाऽरिवन्दीव्यंजनानिलेन॥
   —तिलकमंजरी, पृ. 262
3. दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिविम्बनम्। —मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/102
4. अस्य हि परित्यक्त सुरलोकवासस्य दूरीभूतदुग्धसागरोदरस्थितेस्त्वद्वसतिरेव स्थानम्, न हि त्र्यम्बकजटाकलापमन्तरिक्षं वा विहाय क्षीणोऽपि हरिणलक्ष्मा क्षितौ पदं बध्नाति। —तिलकमंजरी, पृ. 43–44

तुल्ययोगिता

जहा उपमेय तथा उपमान मे से एक ही के धर्म, गुण या क्रिया का एक बार उल्लेख किया जाय, वहा तुल्ययोगिता अलकार होता हैं।[1] इसमे या तो प्रकृत अथवा अप्रकृत का एक धर्म के साथ सम्बन्ध होता है।

काची नगरी के वर्णन मे तुल्योगिता अलकार पाया जाता है - यत्र नागवल्लीलालसा घनिन उद्यानपालाश्च, परमतज्ञा पौराः प्रामाणिकाश्च, सफलजातय श्रोत्रिया गृहारामाश्च, हरिद्रासान्द्रकचक्यो रागिण' सुवर्णचम्पश्च स्तकबक निचयाश्च प्रगुणविशिखा गृहनिवेशा' — पृ 260। यहाँ नागवल्लीलालसा यह एक साधारण धर्म, घनी तथा उद्यानपालक दोनो से सम्बद्ध है, अत तुलययोगिता अलकार है। इसी प्रकार अन्य सभी पर भी घटित होता है।

व्यतिरेक

उपमान से अन्य अर्थात् उपमेय का जो आधिक्य वर्णन है, वह व्यतिरेक अलकार होता है।[2]

हरिवाहन मलयसुन्दरी को देखकर कहता है—इसके दीर्घ नेत्र नीलकमल को पत्र समर्पित करते हैं, वक्ष स्थल हाथी के मस्तक का तिरस्कार करते हैं, कपोलस्थल हस्तीदन्त की अनुकृति हैं तथा इसके मुख की शोभा अपनी कान्ति से चन्द्रमा के बिम्ब को कलकित करती है।[3] यहा मलयसुन्दरी के नेत्र, वक्ष स्थल, कपोलस्थल तथा मुख का नीलकमल, हाथी के मस्तक, दान तथा चन्द्रमा के बिम्ब से आधिक्य वर्णन किया गया है, अत व्यतिरेक अलकार है।

विशेषोक्ति

कारणों के रहने पर भी फल का कथन न करना विशेषोक्ति कहलाता है।[4] दो उदाहरण दिये जाते हैं—

(1) अयोध्या वर्णन मे कुलवधूओ के प्रसग मे विशेषोक्ति का कथन है—क्रोध मे भी उनके मुख पर विकार उत्पन्न नहीं होता था, अप्रिय करने पर भी

---

1 नियतानां सकृद्धर्म सा पुनस्तुल्ययोगिता।
—मम्मट, काव्यप्रकाश 10/104

2 उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेक स एव स —वही, 10/158

3. दत्ते पत्र कुवलयततेरायतचक्षुरस्या
कुम्भावेभौ कुचपरिकर पूर्वपक्षीकरोति।
दन्तच्छेदच्छविमनुवदत्यच्छता गण्डमित्ते
चान्द्र बिम्ब द्युतिविलसितैर्दूषयत्यास्यलक्ष्मी ॥ —तिलकमरी, पृ 256

4. विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावच.।
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/162

वे विनय का साथ नहीं छोड़ती थीं, दुःख में भी उचित सत्कार करती थीं, तथा कलह में भी कठोर वचन नहीं बोलती थीं।[1]

(2) इसी प्रकार मेघवाहन के वर्णन में भी इसका उदाहरण मिलता है— **अनतितोलक्ष्मीमदविकारैरखलीकृतो व्यसनचक्रपीडामिरनाक्रान्तो विषयग्राहैरयन्त्रितः प्रमदाप्रेमनिगडैरजडीकृतः परमैश्वर्यसन्निपातेन**–पृ. 14

अर्थान्तरन्यास

सामान्य का विशेष से तथा विशेष का सामान्य के द्वारा जो समर्थन किया जाता है, वह अर्थान्तरन्यास अलंकार साधर्म्य तथा वैधर्म्य से दो प्रकार का होता है।[2] दो उदाहरण दिये जाते हैं –

(1) समरकेतु आराम को देखकर कहता है – 'संसार में निश्चित रूप से अदृष्ट के कारण अल्प गुणों वाली वस्तु भी प्रसिद्धि प्राप्त कर लेती है, किन्तु अधिक गुण वाली वस्तु भी कीर्ति प्राप्त नहीं करती, अतः यह असंख्य कदली वनों से सुशोभित, अनेक मयूरों के केकारव से उद्भासित एवं सैंकड़ों पुष्प-वृक्षों से युक्त इस उद्यान के होते हुए भी एक रम्भा, सप्तचित्र शिखण्डियों तथा कुछ सुमनसों से युक्त उद्यान भी अमरोद्यान कहलाता है।[3] यहां सामान्य का विशेष के द्वारा समर्थन किया गया है।

(2) इसी प्रकार दूसरा उदाहरण भी है—'**प्रथितगुण स्थान स्थितस्यासतोऽपि हि माहात्म्यमाविर्भवति पद्मिनीदलोत्संगसंगी जलबिन्दुरपि मुक्ताफलद्युतिमालम्बते—मण्डनायते**– पृ० 213। इसमें भी सामान्य का विशेष से समर्थन किया गया है, अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

विरोधाभास

तिलकमंजरी में विरोधाभास अथवा विरोध अलंकार का प्रयोग प्रचुरता

1. कोपेऽप्यदृष्टमुखविकाराभिर्श्वनीकैऽप्यनुज्झितविनयाभिः खेदेऽप्यखण्डितोचितप्रीतिपत्तिभिः कलहेऽप्यनिष्ठुरभाषिणीभिः......।

—तिलकमंजरी, पृ. 9

2. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।

—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/164

3. व्यक्तं जगत्यदृष्टवशाद्विशालगुणसंपद्भिरप्यसुलभाः स्वल्पगुणैरपि सुप्रापाः प्रसिद्धयो भवन्ति। येनात्र निरन्तरकदलीकलापान्तरितदिङ्मुखे मदमुखरासंख्यशिखिकुलोद्भासिन्यनन्तलतान्तकोटिसंकटैकवृक्षविटपे....सुमनसां कोटिभिराकीर्णममरोद्यानमाचष्यते। —तिलकमंजरी, पृ. 212–213

से हुआ है। जहा भी धनपाल को इस अलकार के प्रयोग का अवसर मिला है, उन्होने इसके प्रयोग मे अपनी निपुणता का प्रदर्शन किया है।

वस्तुत विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति कराने वाले वर्णन को विरोधालकार अथवा विरोधाभास का नाम दिया गया है[1]

तीन विशिष्ट उदाहरण दिये जाते हैं—

(1) मेघवाहन को 'शत्रुघ्नोऽपि विश्रुतकीर्ति' (पृ 13) कहा गया है अर्थात् वह शत्रुघ्न होते हुए भी श्रुतकीर्ति से वियुक्त था (श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न की पत्नी थी), यह विरोध है, किन्तु 'वह शत्रुघ्न अर्थात् शत्रुहन्ता होते हुए भी विश्रुतकीर्ति अर्थात् अत्यधिक प्रसिद्ध था' इस अर्थ से इस विरोध का परिहार हो जाता है।

(2) इसी प्रकार अदृष्टसरोवर के प्रसग मे कहा गया है, कि वह लहरों से मनोहर होते हुए भी कुत्सित तरगो से युक्त था (चारुकल्लोलमपिकूर्मि–पृ 122) इस विरोध का परिहार कूर्मि अर्थात् कच्छपो से युक्त इस अर्थ से हो जाता है। अदृष्टसरोवर को 'स्थिरमपि विसारि' भी कहा गया है अर्थात् स्थिर होते हुए भी वह सचरणशील था, इसका परिहार–विसारि का अर्थ मत्स्ययुक्त लेने से हो जाता है।

(3) विद्याधर मुनि को 'निष्परिग्रमपि सकलत्रम्' (पृ 24) कहा है अर्थात् स्त्रियों आदि से रहित होते हुए भी वह पत्नी सहित था, इस विरोध का परिहार 'सकलत्रम्' का सभी का त्राता अर्थ करने से हो जाता है।

विरोधाभास अलकारयुक्त कुछ स्थलो को उदाहृत करना अनुचित नहीं होगा—

(1) प्रमाणविद्भिरप्यप्रमाणविद्भि·· परोपकारिभिरात्मलाभोद्यतै —पृ 10

(2) मनुष्यलोक इव गुणेऽपरिस्थितोऽपि मध्यस्थ. सर्वलोकानाम् विशेषज्ञोऽपि समदर्शन सवदर्शनानाम्, अनायासगृहीतसकलशास्त्रार्थयाऽपि नीतिशास्त्रेषु खिन्नया—पृ 13

(3) असदपगुणशालिनापि सप्ततन्तुहुपातेन सर्वदाह्यावितेन—पृ 13

(4) सौजन्यपरतन्त्रवृत्तिरप्रमोजन्ये निषण्ण.—पृ 13

(5) अगीकृतसतीव्रताभिरप्यसतीव्रताभि —पृ 9

---

1 विरोध सोऽविरोधेऽपि विरूद्धत्वेन यद्वच.
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/165

(6) मद्गुरुचितमपि नमद्गुरुचितम्—पृ. 204

(7) मेरुकल्पपादपालीपरिगतमपि नमेरुकल्पपादपालीपरिगतम्, वनगजालीसंकुलमपि नवगजालीसंकुलम्—पृ. 240

स्वाभावोक्ति

धनपाल ने अलंकारों में स्वाभावोक्ति को सर्वाधिक उद्भासित कहा है।[1] बालक इत्यादि की अपनी स्वाभाविक क्रिया अथवा रूप (वर्ण एवं अवयव संस्थान) का वर्णन स्वाभावोक्ति कहलाता है।[2] तिलकमंजरी से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) गन्धर्वदत्ता के वर्णन में स्वाभावोक्ति की झलक मिलती है—'विश्वस्त सखियों की गोष्ठी में भी वह खिलखिलाकर नहीं हंसती थी, गृहनदी के हंसों के साथ भी तीव्रता से नहीं चलती थी, पंजरस्थ सारिकाओं के साथ भी अधिक वार्तालाप नहीं करती थी, तिलकवृक्षों पर भी अधिक देर तक कटाक्षपात नहीं करती थी।'[3]

(2) मदिरावती का वर्णन भी स्वाभावोक्ति अलंकार में किया गया है।[4]

सम

किन्हीं दो विशेष वस्तुओं का योग्य रूप से सम्बन्ध वर्णित होने पर सम नामक अलंकार होता है।[5]

ज्वलनप्रभ राजा मेघवाहन से कहता है कि आप इस हार को प्राप्त कर,

---

1. जातिमिवालंकृतीनाम् —तिलकमंजरी, पृ. 159
2. स्वाभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/167
3. भित्वा संपुटमोष्ठयोर्न हसितं निःशंकगोष्ठीष्वपि,
भ्रान्तं न त्वरितैः पदैर्गृहनदीहंसानुसारेष्वपि।
साधं पंजरसारिकाभिरपि नो भूयस्तया जल्पितं,
न व्यस्तास्तिलकद्रुमेष्वपि चिरं व्यापारिता दृष्टयः॥
—तिलकमंजरी, पृ. 262
4. आढ्यश्रोणि दरिद्रमध्यसरणि स्रस्तांसमुच्चस्तनं,
नीरन्ध्रालकमच्छगण्डफलकं छेकभ्रु मुग्धेक्षणम्।
शालीनस्मितमस्मितांचितपदन्यासं बिभर्ति स्म या,
स्वादिष्टोक्तिनिषेकमेकविकसल्लावण्यपुण्यं वपुः॥ —वही, पृ. 23
5. समं योग्यतया योगो यदि सम्भावितः क्वचित्॥
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/192

समान वस्तु के सयोग का आनन्द प्राप्त करें, क्योकि यह हार भी मुक्तामय है आप भी मुक्तामय (मुक्त आमय अर्थात् व्याधि रहित शरीर से युक्त), यह भी अपेतत्रास है (अर्थात् धारण करने वाले को भय मुक्त करने वाला) तथा आप भी स्वच्छ हृदय वाले हैं यह भी उज्जवल गुण से युक्त है तथा आप भी गुणवन् हैं।[1] यहा मेघवाहन तथा हार का योग्य रूप से सम्बन्ध वर्णित किया गया है, अत: सम अलकार है।

विषम

सम्बन्धियो के अत्यन्त वैधर्म्य के कारण जो उनका सम्बन्ध न बनना प्रतीत हो, वहा विषम अलकार होता है।[2] प्रभात-काल के वर्णन मे विषम अलकार प्रयुक्त हुआ है–रतिगृह दात्यूहपक्षी के कूजन से रहित हो गये हैं, नदिया चक्रवाक युगलो के आक्रन्दन से युक्त हो गयी हैं, तारो की कान्ति क्षीण हो रही है, दीपक की ज्योति तेज हो रही है, आकाश मे सूर्य उदित हो रहा है, पृथ्वी अधकारमय है, इस प्रकार प्रभात और रात्रि का यह सन्धिक्षण मनोहरता की पराकाष्ठा है।[3]

यहा विपरीत वस्तुओ का एक साथ वर्णन होने से विषम अलकार है।

तद्गुण

जब न्यून गुणवाली वस्तु अत्यन्त उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के सम्बन्ध से अपने स्वरूप को छोडकर उस वस्तु के रूप को प्राप्त हो जाती है तो उसे तद्गुण अलकार कहते हैं।[4]

---

1 सयोजित त्वा मुक्तामयवपुषमशेषतो मुक्तामयत्रासविरहितमपेतत्रास स्वच्छाशयमतिस्वच्छो गुणवन्तमतिशयोज्जवगुण प्राप्नोतु सदृशवस्तुसयोगजा प्रीतिम्। —तिलकमजरी, पृ 43

2 क्वचिद्यतिवैधर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात्
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/193

3 निर्दात्यूहपतद्गिरो रतिगृहा साक्रन्दचक्रा नदा,
विद्राति द्युतिरौडवी निबिडता धत्ते प्रदीपच्छवि।
द्यौर्मन्दस्फुरितारुणा तिमिरिणी सर्वसहा सर्वथा,
सीमा चित्तमुपामुप क्षणदयो सधिक्षणो वर्तते॥ —तिलकमजरी, पृ 237

4 स्वमुत्सृज्य गुण योगादत्युज्जवलगुणस्य यत्,
वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुण.॥
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/203

आराम के वर्णन में इस उक्ति में तद्गुण अलंकार पाया गया है—कमल के पत्ते पर गिरी हुयी जल की बून्द भी मोती के समान चमकती है, चन्द्रमा में रहने पर कलंक भी अलंकार बन जाता है, मृगनयनियों की आंखों में लगने पर अंजन भी प्रसाधन बन जाता है।[1]

यहां न्यून गुण वाली वस्तु जल की बूंद आदि का उत्कृष्ट गुण वाले कमल पत्रादि के सम्बन्ध से उत्कृष्ट गुण को प्राप्त करने का उल्लेख होने से तद्गुण अलंकार है।

सहोक्ति

जहां सह अर्थ की सामर्थ्य से एक पद, दो पदों से सम्बद्ध हो जाता है वहां सहोक्ति अलंकार होता है।[2]

तिलकमंजरी मे प्रातःकाल के इस वर्णन में सहोक्ति का प्रयोग हुआ है—(प्रातःकाल होने पर) वनदीर्घिकाओं में चक्रवाक युगल निद्रा त्यागकर तथा पख फड़फड़ाकर कुमुदों के साथ-साथ परस्पर मिल गये। (कुमुद के पक्ष में जघटिरे का अर्थ संकुचित हो गये)। यहां सह पद के कारण चक्रवाक तथा कुमुद दोनों पदों का सम्बन्ध बनता है, अतः सहोक्ति अलंकार है।[3] अन्य उदाहरण—

(1) झटिति नष्टाखिलाशः समं मार्तण्डमण्डलाभोगेन विच्छायतामगच्छम्
—पृ. 323

(2) इति विचिन्त्य मुक्त्वा च सफलकं प्रभुताभिमानेन सार्धं कृपाणमाबद्धांजलिः—पृ. 38।

व्याजस्तुति

प्रारम्भ में निन्दा अथवा स्तुति जान पड़ती हो, किन्तु उससे भिन्न (अर्थात् निन्दा स्तुति तथा स्तुति निन्दा में) में पर्यवसान होने पर व्याजस्तुति अलंकार होता है।[4]

---

1. पद्मिनीदलोत्संगसंगी जलबिन्दुरपि मुक्ताफलद्युतिमालम्बते, मृगांकचुम्बी कंककोऽप्यलंकारकरणि धत्ते, कुरङ्गलोचनालोचनलब्धपदमंजनमपि मण्डनायते। —तिलकमंजरी, पृ. 213
2. सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्। —मम्मट, काव्यप्रकाश 10/169
3. समकालमुत्क्षिप्तपक्षसंहतीनि सहैव कुमुदैरण्यदीर्घिकासु जघटिरे नष्टनिद्राणि चक्रवाकद्वन्द्वानि। —तिलकमंजरी, पृ. 358
4. व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दास्तुतिर्वा रूढिरन्यथा। —मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/168

पहले निन्दा पर बाद मे स्तुति मे पर्यवसित होने वाला एक उदाहरण काची नगरी के वर्णन मे मिलता है—गुणो के समूह मे उस (नगरी) मे केवल एक ही दोष था कि विलासिनीयो के वासभवनो की दन्तवलभियो मे निरन्तर जलने वाले कालागरू के धुएँ से नवीन चित्रो युक्त भित्तिया मैली हो जाती थी।[1] यहा निन्दा के व्याज से काची की प्रशसा की गई है, अत व्याजस्तुति अलकार है।

परिसख्या

परिसख्या अलकार धनपाल को सर्वाधिक प्रिय है। सम्पूर्ण तिलकमजरी मे विभिन्न स्थलो पर इसका सुन्दर प्रयोग हुआ है। धनपाल को इसके प्रयोग मे विशेष निपुणता प्राप्त है। कुछ स्थल उदाहृत किये जायेंगे। कोई पूछी गई अथवा बिना पूछी गई बात जब उसी प्रकार की अन्य वस्तु के निषेध में पर्यवसित होती है, तो परिसख्या अलकार कहलाती है।[2] यह निषेध शब्दत अर्थात् वाच्य भी हो सकता है अथवा व्यग्य रूप भी हो सकता है। इस प्रकार परिसख्या के चार प्रकार हो जाते हैं—(1) प्रश्नपूर्वक प्रतीयमानव्यवच्छेद्य (2) प्रश्नपूर्वक वाच्यव्यवच्छेद्य (3) अप्रश्नपूर्वक प्रतीयमानव्यवच्छेद्य तथा (4) अप्रश्नपूर्वक वाच्यव्यवच्छेद्य। धनपाल ने प्रश्नपूर्वक परिसख्या का प्रयोग नही किया है, अत पहले दो प्रकार के उदाहरण तिलकमजरी मे नहीं मिलते। अन्तिम दोनों को को उदाहृत किया जाता है।

(1) **अप्रश्नपूर्वकवाच्यव्यवच्छेद्य**—काची नगरी के वर्णन मे कहा गया है कि जहाँ मुग्धता रूप मे पायी जाती थी सुरत मे नहीं, हल्दी का रग देह मे लगाया जाता, स्नेह मे नहीं, गुरुजनो के नामोच्चार मे बहुवचन का प्रयोग होता था, न कि दूसरो के कार्य को करने मे बहुत तरह की बातें की जातीं, रति मे विलासचेष्टाएँ होती थीं न कि चित्त मे भ्रान्ति होती।[3]

---

1 यस्यां गुणौघजुषि दूषणमेकमेव, यद् वासदन्तवलभीषुविलासिनीनाम्।
उद्यन्नजस्रमसितागुरुदाहजन्मा, धूम करोति मलिनानवचित्रभित्ती॥
–तिलकमजरी, विजयलावण्यसूरीश्वरज्ञानमन्दिर, सस्करण, भाग 3, पृ 174 (काव्यमाला सस्करण मे यह पद्य उपलब्ध नहीं हैं।)

2 किंचित्पृष्टमपृष्ट वा कथित यत्प्रकल्पते।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसख्या तु सा स्मृता॥
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/184

3 यत्र मुग्धता रूपेषु न सुरतेषु, हरिद्रारागो देहेषु न स्नेहेषु, बहुवचनप्रयोग पूज्यनामसु न परप्रयोजनागीकरणेषु, विभ्रमो रतेषु न चित्तेषु।
—तिलकमजरी, पृ 260

इसमें शब्दतः निषेध होने से यह अप्रश्नपूर्वक वाच्यव्यवच्छेद्य परिसंख्या का उदाहरण है।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण मेघवाहन के वर्णन में मिलते हैं।[1]

(2) विद्याधर मुनि की मदिरावती के प्रति इस उक्ति में भी इसी भेद की झलक मिलती है – 'आत्मा निवारणीयो धृत्या न वृत्या, स्वभावस्निग्धोपसर्पणीयो दृष्टया न कायचष्टया, संभावयितव्यो मनसा न वचसा कारयितव्यः कण्टकिनि पत्रच्छेद विरचनं देवताचंनकेतकदले न कपोलतले – पृ. 31–32

(3) अप्रश्नपूर्वकप्रतीयव्यवच्छेद्य—तिलकमंजरी में प्रतीयव्यवच्छेद्य परिसंख्या के भी अनेक प्रयोग मिलते हैं।

अयोध्या के प्रसंग में कहा गया है—जिस नगरी में वीथीगृह राजमार्ग का अतिक्रमण करते थे (न कि लोग राजाज्ञा का उल्लंघन करते), दोलाक्रीडाओं में में दिगन्तर यात्रा होती (न कि किसी को देश निकाला दिया जाता), चन्द्रमा कुमुद वनों का सर्वस्व (निद्रा) हरण कर लेता (न कि किसी व्यक्ति का सब कुछ हर लिया जाता), कामदेव के बाण ही मर्मछेदन का कार्य करते (न कि किसी व्यक्ति का गला घोंटा जाता), वैष्णव ही कृष्ण की आचार पद्धति का पालन करते (न कि कोई व्यक्ति दुराचारी होता था)।[2]

इसी प्रकार मेघवाहन के लिए कहा गया है – **यस्मिंश्च राजन्यनुवर्तितशास्त्रमार्गे प्रशासति वसुमतीं धातूनां सोपसर्गत्वम्, इक्षूणां पीडनम्, पक्षिणां दिव्यग्रहणम्, पदानां विग्रह, तिमीनां गलग्रहं, गृहचतुर्थकानां पादाकृष्टयः कुक-**

---

1. (अ) उच्चापशब्दः शत्रुसंहारे न वस्तुविचारे, वृद्धत्यागशीलो विवेकेन न प्रतीतसेकेन……अकृतकारुण्यः **करचरणे न शरणे।**
   —तिलकमंजरी, पृ. 13

   (ब) कुशाग्रीयबुद्धिः कार्याणां वैषम्येण जहर्ष न समतया……सकलाधर्मनिर्मूलनाभिनाषी कलेखतारस्योदकण्ठत् न कृतयुगस्य – पृ. 14

   (स) यस्य च प्रताप एव वसुधायस घयत्परिकर एव सैन्यनायका :……त्याग एव दिक्षु **कीर्तिमगमयद्विभवो वन्दिपुत्राः।** पृ. 15

2. (अ) यस्यां च वीथीगृहाणां राजपथातिक्रमः, दोलाक्रीडासु दिगन्तरयात्रा, कुमुदखण्डानां राजा सर्वस्वापहरणमनंगमार्गणानां मर्मघट्टनव्यसनं, वैष्णवानां कृष्णवर्त्मनि प्रवेशः, सूर्योपलानां मित्रोदयेन ज्वलनम्, वैशेषिकमते द्रव्यस्य कूटस्थनित्यता। — वही, पृ. 12

   (ब) यत्र च भोगस्पृहया दानप्रवृत्तयः……विनयाधानाय वृद्धोपास्तयः पुंसामासन् —तिलकमंजरी, पृ. 12

विकाश्येपु यतिभ्र शदर्शनम्, उदधीनामपवृद्धि निधुवनक्रीडासुतर्जनताडनानि, द्विजातिक्रियाणां शाखोद्धरणम्, बौद्धानुपलब्धेरसद्व्यवहारप्रवर्तकत्वम्, प्रतिप्रक्षक्षयोद्यतमुनिकयासु गुणानामुपसर्जनभावोबभूव ।[1]

इस प्रकार श्लेष पर आधारित परिसख्या की शृ खलाओ की रचना धनपाल को अत्यन्त प्रिय थी। अयोध्या की कुलवधुओ के वर्णन मे भी इस अलकार का प्रयोग किया गया है—अलसाभिर्नितम्बभारवहने तुच्छाभिरुदरे तरलाभिश्चक्षुषि कुटिलाभिर्भ्रुवोरतृप्ताभिरगशोभायामुद्धताभिस्तारुण्ये कृतकुसमाभिश्चरणोयोर्न स्वभावे ।[2]

अर्थापत्ति

जहा दण्ड-पूपिका न्याय से एक अर्थ की सिद्धि के साथ उसी की सामर्थ्य से दूसरा अर्थ भी सिद्ध हो जाये वहा अर्थापत्ति अलकार होता है ।[3] इसका उदाहरण कुलवधुओ के इस वर्णन मे मिलता है—वे शालीनता तथा सुकुमारता के कारण कुचकुम्भो के भार से भी पीडित होती थीं, मणिभूषणो के कोलाहल से भी व्यथित होती थी, धृष्टता के कारण सम्भोग मे भी अरुचि दर्शित करती थी तथा स्वप्न मे भी द्वार की देहरी नही लाघती थी ।[4]

यहा जब स्तनकलशो के भार से पीडित होती थी इस अर्थ से 'तो अन्य किसी वस्तु का भार उठाने मे कैसे समर्थ होगी' इससे अर्थान्तर का बोध होता है, इसी प्रकार जब स्वप्न मे देहरी नही लाघती 'तो जाग्रतावस्था मे कैसे लाघेगी' इससे अर्थान्तर का बोध होता है अत यहा अर्थापत्ति अलकार है ।

इसी प्रकार वारवधूओ के लिए भी कहा गया है ।[5]

काव्यलिंग

जहा हेतु का कथन वाक्यार्थ अथवा पदार्थ रूप से किया जाय, वहा काव्यलिंग अलकार होता है ।[6]

---

1. तिलकमजरी, पृ 15
2. वही, पृ 9
3. दण्डपूपिकयार्थान्तरापतनमर्थापत्ति । —रुय्यक-अलकारसर्वस्व
4. शालीनतया सुकुमारतया च कुचकुम्भयोरपि कदर्थ्यमानामिरुद्धतया मणिभूषणानामपि खिद्यमानाभिर्मुखरतया रतेष्वपि ताम्यन्तीभिर्वैयात्यपरिग्रहेण स्वप्नेऽप्यलघयन्तीभिर्द्वारतोरणम् —तिलकमजरी, पृ 9
5. तिलकमजरी, पृ 10
6. काव्यलिंग हेतोर्वाक्यपदार्थता । —मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/173

मेघवाहन के इस वर्णन में काव्यलिंग अलंकार मिलता है—वह युद्धव्यसनी होने के कारण शत्रुओं की उन्नति से संतुष्ट होता था न कि प्रणाम से, दानप्रिय होने के कारण लोगों की याचकवृत्ति से अतृप्त होता था न कि सिद्धि से, तीव्र-बुद्धि होने के कारण कार्यों की विषमता से प्रसन्न होता था न कि समता से—।[1] यहां युद्ध-प्रियता, दान-प्रियता, तीव्रबुद्धि आदि हेतु रूप से वर्णित किये हैं, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

कारणमाला

जहां अगले 2 अर्थ के प्रति पहले 2 अर्थ हेतु रूप में वर्णित हों, वहां कारणमाला अलकार होता है।[4] इसी प्रकार पूर्व 2 के प्रति उत्तर 2 की हेतुता वर्णित होने पर भी कारण-माला अलंकार होता है। इसका उदाहरण विद्याधर मुनि के इस कथन में मिलता है—मुनि-जन सामान्य प्राणी के लिये अपेक्षित आहार को शरीर के लिए ग्रहण करते है, शरीर को भी धर्म का हेतु होने से धारण करते हैं धर्म को भी मुक्ति का कारण मानते है तथा मोक्ष की भी विरक्ति से इच्छा करते हैं।[1] यहां आहार, शरीर, धर्म तथा मोक्ष इन पूर्व 2 के प्रति शरीरधारण, धर्म-साधन मोक्ष तथा अनिच्छा ये उत्तरोत्तर अर्थ कारण रूप में वर्णित किये गये हैं, अतः कारणमाला अलंकार है।

तिलक मंजरी से प्रस्तुत 4 प्रकार के शब्दालंकारों तथा 23 प्रकार के अर्थालंकारों अर्थात् कुल 27 प्रकार के अलंकारों का यह अध्ययन, जिसमें उनके लक्षण तथा तिलकमंजरी मे गृहीत उदाहरणों का विवेचन किया गया, धनपाल की अलंकार योजना का नैपुण्य प्रदर्शित करने में पर्याप्त है।

रसाभिव्यक्ति

कवि की वाणी को ह्लादैकमय तथा नवरसरुचिरा कहा गया है।[2] इसी प्रकार तुरन्त रसास्वादन से उत्पन्न परम आनन्द की प्रतीति काव्य के समस्त

---

1. यश्च संगरश्रद्धालुरहितानामुन्नत्यातुतोष न प्रणत्या, दानव्यसनी जनानामर्थितयाऽप्रीयत न कु कृतार्थतया, कुशाग्रीयबुद्धिः कार्याणां वैषम्येन जहर्ष न समतया:। —तिलकमंजरी, पृ. 14
2. यथोत्तरं चेत्पूर्वस्य पूर्वस्यार्थस्य हेतुता तदा कारणमाला स्यात्। —मम्मट, काव्यप्रकाश, 10/185
3. ये च गर्वप्राणिमात्रारणमाहारमपि शरीरवृत्तये गृह्णन्ति, शरीरमपि धर्मसाधनमिति धारयन्ती, धर्ममपि मुक्तिकारणमिति बहुमन्यते, मुक्तिमपि निस्पृहमुकेन चेतसाभिवांछति ....। —तिलकमंजरी पृ. 26
4. नियतिकृत....नवरसरुचिरां निर्मिति.... —मम्मट, काव्यप्रकाश, 1/1

प्रयोजनो मे प्रमुख मानी गयी है।[1] अत मम्मट के अनुसार काव्य-रचना का प्रमुख उद्देश्य तथा फल दोनो ही रस की सिद्धि है। विश्वनाथ ने तो रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहा है।[2] आनन्दवर्द्धन ने भी रस, जोकि व्यग होता है, को काव्य की आत्मा कहा है।[3] भरत मुनि ने बहुत पहले ही काव्य मे रस की प्रधानता प्रतिपादित करदी थी—न हि रसादृतेकश्चिदर्थ प्रवर्तते।[4] अत प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी काव्यशास्त्रियो ने काव्य मे रस को प्राणभूत माना है। काव्य मे रस की महत्ता के आधार पर काव्यशास्त्रियो का एक भिन्न सम्प्रदाय ही बन गया, जो रस सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है।[5]

धनपाल ने स्वय भी रसपूर्ण उक्ति को समस्त मणियो मे श्रेष्ठ कहकर काव्य मे रस की महत्ता स्थापित की है।[6] काव्य के पठन, श्रवण अथवा दर्शन से जिस आनन्द की अनुभूति होती है वही काव्यानन्द रस कहलाता है। यह अनुभूति किन साधनो से होती है? भरत के अनुसार रस को निष्पत्ति विभाव, *अनुभाव तथा व्यभिचारि भावो के सयोग से होती है।*[7] अत विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव रस के साधन हैं। रस की यह अनुभूति कैसे होती है? सहृदय सामाजिक के हृदय मे भाव रहता है, जिसकी उत्पत्ति लौकिक व्यवहारिक जीवन से होती है लौकिक जीवन के बार-बार के अनुभवो से विभिन्न भाव सामाजिक के हृदय मे सस्कार रूप मे परिणत हो जाते हैं। काव्य-श्रवण अथवा दर्शन से सामाजिक के हृदय का यही भाव काव्य मे वर्णित विभावादि के द्वारा पुष्ट होकर रसरूप मे परिणत हो जाता है इस भाव को रसशास्त्री स्थायिभाव कहते हैं। मम्मट ने विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारि आदि (कारण, कार्य तथा सह-

---

1 काव्ययशसेऽर्थकृते. . सद्य परनिर्वृतये . . । —वही, १/२

2 वाक्य रसात्मक काव्यम् —विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 1/3

3 काव्यस्यात्मा स एव अर्थस्तथा चादिकवे पुरा।
क्रौचद्वन्द्ववियोगोत्थः शोक श्लोकत्वमागत ॥
—आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 1/5

4 नाट्यशास्त्र, अध्याय6, उदधृत पी वी काणे,सस्कृत पोइटिक्स, पृ 357

5 काणे पी वी ,सस्कृत पोइटिक्स, पृ 355

6 रसोक्तिमिव मणिनीनाम् अधिकमुद्भासमानाम्। तिलकमजरी, पृ 159

7. उक्त हि भरतेन—विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति ।
—मम्मट, काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ 100

कारियों) के योग से व्यक्त रत्यादि स्थायी भाव को रस कहा है ।[1] दशरूपककार धनंजय ने इनमें सात्विक भाव को और जोड़ दिया है, जिसे अन्य शास्त्रियों ने अनुभाव के अन्तर्गत ही माना है। धनंजय के अनुसार विभाव, अनुभाव, सात्विक तथा व्यभिचारि भावों द्वारा चर्वणा के योग्य बनाया गया रत्यादि स्थायिभाव ही रस है ।[2]

अतः रस के चार अंग हैं— स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव, तथा व्यभिचारिभाव। इन चारों का आश्रय तथा आलम्बन इन दोनों पक्षों में बांटा जा सकता है। काव्य में जिस पात्र के हृदय में रत्यादि स्थायिभाव व्यंजित होता है, वह पात्र उस भाव का आश्रय होता है। उस पात्र की जो तद्वत् भाव की अनुभूति के समय चेष्टाएं होती हैं, वे अनुभाव कहलाती हैं तथा स्थायिभाव में जो क्षणिक भाव उन्मग्न-निमग्न होते हैं, उन सहकारी कारणों संचारी अथवा व्यभिचारि भाव कहा जाता है। इस प्रकार स्थायिभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव ये आश्रय में रहने वाले हैं। इस आश्रय का स्थायी भाव जिस पात्र-वस्तु के प्रति जागृत होता है, वह आलम्बन कहलाता है तथा उस पात्र या वस्तु की अवस्था चेष्टा या अन्य परिस्थितियां जो आश्रय में उस विशेष भाव को उद्दीप्त करती है, उद्दीपन कहलाती है। ये आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों, विभाव कहलाते हैं। रस की प्रक्रिया में आलम्बन –उद्दीपन विभाव बाह्य कारण हैं, वस्तुतः स्थायिभाव ही रस का आन्तरिक कारण है। यह स्थायिभाव ही रस का बीज है, मूल है। सामाजिक के हृदय में यह प्रसुप्तावस्था में रहता है, काव्य में वर्णित विभावादि अनुकूल सामग्री प्राप्त कर यह अभिव्यक्त हो जाता है तथा हृदय में अपूर्व आनन्द का संचार कर देता है। अतः स्थायिभाव की अभिव्यक्ति ही रस है। ये स्थायिभाव आठ हैं– रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, स्मय, भय तथा शोक ।[3] धनंजय नवें स्थायिभाव शम को नाटक में पुष्टि न होने के कारण, नहीं

---

1. विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
   व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥
   —मम्मट, काव्य प्रकाश, 4/43/28
2. विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः ।
   आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥
   —धनंजय, दशरूपक, 4/1
3. रत्युत्साहजुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः ।
   —धनंजय, दशरूपक, 4/35

मानते हैं [1] किन्तु मम्मट ने निर्वेद अर्थात् शम को नवा स्थायिभाव माना है ।[2] इन्हीं नौ भावो की परणति क्रमश शृङ्गार, वीर, वीभत्स, रौद्र, हास्य, अद्भुत, भयानक, करुण तथा शान्त रसो मे होती है ।

धनपाल ने तिलकमजरी को 'स्फुटादमुतरसा 'कथा कहा है ।[3] प्रभावकचरित मे तिलकमजरी को नवरसयुता कथा कहा गया है[4] इसमे सभी नौ रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है ।अ गीरस शृ गार है तथा अन्य सभी उसके अगभूत रस हैं । इसमे नायक हरिवाहन तथा तिलकमजरी, जो पूर्वजन्म मे स्वर्गलोक केनिवामी ज्वलनप्रभ तथा प्रियगुसुन्दरी थे की प्रेम-कथावर्णित की गयी है , तथा इसमे समर केतु और मलयसुन्दरी के प्रेम की प्रामगिक कथा भी उपवर्णित है । इसके अतिरिक्त तारक प्रियदर्शना, कुसुमशेखर व गन्धर्वदत्ता तथा मेघवाहन तथा मदिरावती आदि के प्रेम का भी वणन किया है । अत शृगार इसका प्रधान अगीरस है । अत्र सभी नौ रसो का तिलकमजरी के सदर्भ मे अध्ययन किया जायेगा ।

शृगार

शृ गार का स्थायिभाव रति है । शृ गार रस के दो भेद हैं—(अ) सम्भोग तथा (आ) विप्रलम्भ ।[5] तिलकमजरी मे शृ गार के इन दोनो भेदो का भली-भाति निरूपण हुआ है ।

(अ) सम्भोग शृ गार की सुन्दर अभिव्यक्ति समरकेतु तथा मलयसुन्दरी के चित्रण मे हुयी है । समरकेतु आलम्बन विभाव है, जो मलयसुन्दरी के हृदय मे प्रेम की उत्पत्ति करता है । सर्वप्रथम आलम्बन समरकेतु का वर्णन किया गया है । मलयसुन्दरी उसे देखती है और कहती है —

"कामदेव ने शृ गार धारण कर मेरे हृदय मे प्रवेश किया, उसके पीछे-पीछे ही प्रवेश करने वाला राग, लाक्षारस से चिन्हित के समान सारे अगो मे फैल गया । वैरागी देवता के निवास पर रागियो का रहना विरुद्ध है," अत उस राग को धोने के लिए ही मानो स्वेदजल बहने लगा । स्वेदजल से ठट

---

1 शममपि केचित्प्राहु पुष्टिर्नाटयेषु नैतस्य ॥ वही, 4/35

2 निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तो ऽपि नवमो रस ।
—मम्मट, काव्यप्रकाश, 4/47

3 स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ।। —तिलकमजरी, पद्य 50

4 सुधीरविरचयाचक्रे कथा नवरसप्रथाम् ।
—प्रभावकचरित, महेन्द्रसूरिचरितम् पद्य 197

5. तस्य शृ गारस्य द्वौ भेदो, सम्भोगो विप्रलम्भश्च
—मम्मट काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ 121

लगने के कारण मानों रोमांचित होकर वक्षःस्थल कांपने लगा।[1] तब मैं लज्जा तथा अनुराग से अभिभूत होकर 'समुद्री हवा ठंडी है' कहकर बार-बार सीत्कार करने लगी—मैं कौन हूँ, कहां हूँ—यह सब भूलती हुयी, शब्द को भी नहीं सुनती हुयी, स्पर्श को भी न जानती हुयी, गन्ध को भी नहीं सूंघती हुई, केवल उसके रूप को ही देखने में, उसी के अवयव सौन्दर्य का वर्णन करने में, उसके यौवन की भव्यता का भावन करती हुयी तथा उसके विभ्रम कर्मों में निलीन-चित्त होती हुई, दूर स्थित भी असाधारण प्रेम से द्रवीभूत किसी के द्वारा उठाकर उसके पास ले जायी जाती हुई सी, उसके बाहुपाश में बंधी हुई--समस्त अंगों के निष्पन्द हो जाने पर तथा समस्त शरीर पर आनन्द जल की बूंद छा जाने पर, न जाने विकास के कारण फैली हुई, स्तब्ध अथवा चंचल तारिकाओं वाली मुग्ध अथवा प्रगल्भ, कुटिल अथवा सरल न जाने कैसी दृष्टि से उसे देखने लगी।[2]

यहां समरकेतु का यौवन तथा उसका सौन्दर्य, उसके हाव-भाव, समुद्री वायु आदि उद्दीपन विभाव हैं। स्वेद, रोमांच, वेपथु, स्तम्भ, सीत्कार, चंचल कटाक्षादि अनुभाव हैं तथा लज्जा, श्रम, जड़ता, आलस्य, औत्सुक्यादि संचारी भाव हैं।

इसी प्रकार समरकेतु ने मलयसुन्दरी को देखा, इस वर्णन में मलयसुन्दरी आलम्बन विभाव है--वह राजकुमार भी, सागर के समान धीर प्रकृति का होते हुए भी तरंगों के समान इधर-उधर तरल तथा कुटिल कटाक्षपात करने लगा। समुद्री हवा के न लगने पर भी उसका समस्त शरीर पुलकित होकर कांपने लगा। बहुत देर पहले निद्रा त्याग देने पर भी सद्योजाग्रत के समान अंगड़ाई लेते हुए जम्भाई लेने लगा। प्रागल्भवक्ता होते हुए भी कर्णधारों को गदगद

---

1. इति चिन्तयन्त्या एव मे साम्यसूय: स्वरूपमाविष्कर्तुमिव हृदयम विशद्गृहीत शृंगारो मकरकेतुः। तदनुमार्गप्रविष्टरचितरणलाक्षारसलांछितेष्विव प्रससार सर्वांगेषु रागः। वीतरागदेवतागारसंनिधौ विरुद्ध'-रोमांचजालकमुच्चममुचत्कुचस्थली।
   —तिलकमंजरी पृ. 277
2. ततोऽहं लज्जयानुरागेण च युकपदास्कन्दिता शीतलो जलधिवेलानिल; इति विमुक्तसीत्कारा—काहम् क्वागता, क्व स्थिता—इत्यजात—स्मृतिरशृण्वती शब्दमचेतयन्ती स्पर्शमनुपजिघ्रन्ती गन्धम् केवलं तस्येव रूपलेखावलोकने—कि विकाशोत्तानया किस्तिमितिया कि तरलतारकया—कि प्रांजलया, तत्कालमहमपि न जानामि कीदृश्या दृशा तमद्राक्षम्।
   —तिलकमंजरी, पृ. 278

स्वर मे आदेश देने लगा।[1] यहा कटाक्षपात, रोमाच, पुलक, कम्पन, जम्भा, अगभग, वैस्वर्यादि अनुभावो का वर्णन है।

अवहित्था-सचारी भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति इसी प्रसग मे हुयी है–लज्जा के कारण वह कामदेव के विकारो को छिपाने के लिए विभिन्न प्रकार की चेष्टाएँ करने लगा–मुझे एकटक देखने के कारण बहने वाले आनन्दाश्रुओ की धार को रत्नदर्पण के तेज से निकल रहे है, यह कहकर बार-बार पोंछना, मेरे लीलालापो मे ध्यान देने के कारण शून्य हृदय से बन्दी को सुभाषित पढाये। मेरे समागम के ध्यान मे नेत्र बन्द कर चित्रफलक पर व्यर्थ ही रूप लिखने लगा।[2] यहा अश्रु, नेत्रमीलनादि अनुभाव है।

इस प्रकार धनपाल सम्भोग शृगार को क्रमश विकसित कर उसके सभी तत्त्वो, आलम्बन-उद्दीपन, अनुभाव, व्यभिचारी भावो का सम्यक् वर्णन करने मे अत्यन्त निपुण है। सभोग शृगार के अन्य उदाहरण तारक तथा प्रियदर्शना,[3] हरिवाहन तथा तिलकमजरी,[4] मलयसुन्दरी तथा समरकेतु[5] के वर्णनो मे भी मिलते है।

सभोग शृगार के समान ही तिलकमजरी मे विप्रलम्भ शृगार की भी मनोरम अभिव्यजना हुई है, विशेषकर पूर्वराग विप्रलम्भ की। काव्यप्रकाश मे विप्रलम्भ के पाँच भेद वर्णित किये गये है– अभिलाष (अर्थात् पूर्वराग), ईर्ष्या (या मान), विरह, प्रवास तथा शाप।[6]

हरिवाहन द्वारा तिलकमजरी के चित्र-अवलोकन से उत्पन्न अनुराग पूर्वराग विप्रलम्भ का उदाहरण है।[7] इसमे अभिलाष तथा चिन्तन काम-दशाओ का

---

1 सोऽपि नृपकुमार ...निसर्गरोऽपि सागर इव प्रगतभत्रागपि सगद्गदस्वर स्वकर्नसु कर्णधारानतत्वरद् –वही, पृ 278

2 निह्नोतुकामश्च लज्जयात्मनो मन्मथविकारानेकानि चित्तहारीणि चेष्टितान्यकरोत्। तथा हि–मदवलोकनावद्धस्यन्दमानानन्दाश्रुबिन्दुविसरमनि भास्वरेण .. वीणाख्यानमावयत्। –तिलकमजरी, पृ 279

3 वही, पृ 127–129

4 वही, पृ 248–250, 362–63

5. वही, पृ 310–313

6. अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पचविध।
–मम्मट, काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ, 123

7. तिलकमरी, पृ. 162–174

वर्णन किया गया है।[1] तिलकमंजरी का चित्र आलम्बन विभाव है, उसका सौन्दर्य, अदृष्टसरोवरादि उद्दीपन विभाव हैं।

इसी प्रकार मलयसुन्दरी के इस वर्णन में विरह विप्रलम्भ शृंगार का उदाहरण मिलता है—अहमपि ततः प्रभृति....मुहुर्मुहुः प्रमृष्टपर्यश्रु नयना यथा-दृष्टमाकार तस्य नृपकुमारस्य संचार्य चित्रफलके सततमवलोकयन्ती ...दुःसह प्रियवियोगः इत्युपजात करुणा च दोहृदानुभावाद्दिवापि विकसितानां विलासदीर्घिका-नीलनलिनाकराणां प्रभान्धकारेषु रजनी शंकया विघटितानि मुग्धचक्रवाक-मिथुनानि मिथः संयोजयन्ती ...शोकविकला कंचित्कालमनयम् —पृ. 296-97

2 वीर

वीर रस का स्थायिभाव उत्साह है। वज्रायुध तथा समरकेतु का धनुर्युद्ध वीररस का उत्कृष्ट उदाहरण है।[2] वज्रायुध के इस वर्णन में वीररस की झलक मिलती है—सेनापतिस्तु तं तयोराकर्ण्य कर्णामृतकल्प जल्पमुपजातर्वो रणरसोत्कर्षपुष्यत्पुलकजालकं सजलजीमूतस्तनितगम्भीरेण स्वरेण तत्क्षणादिष्ट-किंकर ध्वनन्तमाजिदुन्दुभिं....समरढक्कानां ध्वनितेन पातयन्निव सवन्धनान्यराति हृदयानि ...शिविरान्निरगच्छत्।[3]

वीर रस की चरम परिणति समरकेतु के इस वर्णन में मिलती है। समरकेतु इतनी तीव्रता से बाण चला रहा है कि उस समय उसका दांया हाथ एक साथ ही तूणीर के अग्र भाग पर गुंथा हुआ सा, धनुष की डोरी पर लिखित सा, बाणों के पुंखों पर खुदा हुआ सा तथा कर्णान्त पर अवतंसित सा जान पड़ता है।[4] मेघवाहन के वर्णन में भी वीररस का उदाहरण मिलता है।[5]

---

1. न जाने कस्य सुकृतकर्मण :—शलयामिव कथमपि क्षमा विराममभजत। —तिलकमंजरी, पृ. 175–177
2. वारंवारमन्योन्यकृततर्जनयोश्च—सायकाः प्रसस्रुः। वही, पृ. 89
3. वही, पृ. 86
4. अतिवेगव्यापृतोऽस्य तत्र क्षणे प्रोत इव तूणीमुखेषु, लिखित इव मौर्व्याम्, उत्कीर्ण इव पुंखेषु, अवतंसित इव श्रवणान्ते तुल्यकालमलक्ष्यत वामेतरः पाणिः। —तिलकमंजरी, पृ. 90
5. मुक्तमदजलासारकरिघटा सहस्रमेघमण्डलान्धकारिताष्टदिग्भागेषु धनस्तनि-तघर्घरधूर्यमाणरथनिर्घोषेषु दर्पोत्पतत्पदातिकरतलतुलिततरवारितडिल्लता-प्रतानदन्तुरितान्तरिक्षकुक्षिषु....यदीयसैन्येषु सकलप्रतिपक्षलक्ष्मीजिघृक्षया ... निद्राक्षय मगच्छत् —वही, पृ. 15–16

3 वीभत्स

तिलकमजरी का वेताल-वर्णन वीभत्स रस का उत्तम उदाहरण है। जुगुप्सा वीभत्स रस का स्थायिभाव है।

अश्रुद्रसरलशिरादण्डनिचितेन निश्चेतुमुद्यायमूर्ध्वलोकस्य सगृहीतानेकमानरज्जुखोपलक्ष्यमाणेन ,अघूणावनादाननोद्वान्तगरेण जरदजगरेणगाढीकृतस्नतजववाथरक्तार्द्रशार्दूलचर्मसिचयम . आर्द्रपकपटलश्यामभति कृशतया काय दूरदर्शितोन्नतीना पशुर्कानामन्तरालद्रोणीपु निद्रायमाणशिशुसरीसृप सीरगतिमार्गनिर्गताविरलविपकन्दल साक्षादिवाधर्मक्षेत्रमुर प्रदेशं दर्शयन्तम् . गात्रपिशितमुतकृत्योत्कृत्य फीकशोपदंशमश्नन्तम् —पृ 47

वेताल वर्णन के अतिरिक्त युद्ध वर्णन मे भी वीभत्स रस की अभिव्यक्ति की गई है।[1]

4 रौद्र

रौद्र रस का स्थायिभाव क्रोध है। वज्रायुध की, इस उक्ति मे रौद्र रस की अभिव्यक्ति होती है–रे रे दुरात्मन् ! दुर्गृहित धनुर्विद्यामदा-ध्यातद्रविणाधम, बधान क्षणमात्रमप्रतोऽवध्यानम्। अस्यान एव कि दृप्यसि। पश्य ममापि सप्रति शस्त्रविद्याकौशलम्। इत्युदीर्य निर्यत्पुलकम सिलताग्रहणाय दक्षिण प्रसारितवान्बाहुम्। अरिवधावेशविस्मृतात्मनश्च तस्योल्लासितको पसाटोपकम्पितागुलौ अतिप्टिपम्-पृ 91

वैरियमदण्ड नामक हस्ती के वर्णन मे भी रौद्र रस का वर्णन किया गया है—अध कृत प्रलयजलधरस्तनितेन विस्तारिणा कण्ठरसितेन वित्रासितसकलवनचरवृन्दम्, आसक्तवनदन्तिदानपरिमले पुरोवर्तिनि महति पर्वतपादपाषाणे सरोषनिहितोमयविषाणम् . क्रोधमिव मूर्तिमन्तक दिवो पञ्ज तगजविवर्तम्-पृ. 185

लक्ष्मी के सेवक यक्ष महोदर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर गन्धर्वक को विमान सहित अदृष्ट सरोवर मे फेंक दिया था। महोदर की निम्न उक्ति उसके क्रोधाधिक्य का सकेत देती है—स एवमुक्तमात्र एव मया रोषरक्तेक्षणो ललाटतटविघटित भगुरभ्रुकुटिराविष्कृतवेतालरूप. रे रे दुरात्मन, अनात्मज्ञ, विज्ञानरहित, परिहृत विशिष्टजन समाचार . रे विद्याधराधम, न जानासि मे स्वरूपम्।—तदरे दुराचार क्रूरहृदयोऽहम्। —इत्युदीर्य दत्तहुकारः स्यास्य एव तद्विमान कथचिदुत्क्षिप्य दूरमदृष्टपारे सरसि न्यक्षिपत्।[2]

---

1 युगपदेकीभूतोदारवारिराशिरसजलविसखविर्घनपदाति घोरो मुदितयोगिनी ....कर्दमप्रायमपीयत सततजापगाम्बुकौणपगणेन।

—तिलकमजरी, पृ 87–88

2 तिलकमजरी, पृ 382–83

5 हास्य

हास्य रस का स्थायिभाव हास है। मेघवाहन तथा लक्ष्मी के संवाद में हास्य का पुट दिया गया है।[1] इसी प्रकार कमलगुप्त की मंजीर के प्रति इस उक्ति में हास्य रस की अभिव्यंजना हुयी है, जिसे सुनकर सभी राजपुत्र हँसने लगे–शोच्यः पुनरसौ पापकर्मा कर्मचण्डालः प्रकृतिदुष्टात्मा दिशिष्टाभासः सफलचीरग्रामणीरग्राह्यनामा मंजीरो येन नाजरिथेद मुधिकामिषमुपसृत्य निभृतमत्र—यदि वा किमनेन किलष्कलया नरेन्द्रतेवयैव शार्ङ्गिणा भूयः कदर्थितेन कृपणेनेति कृपामनुरुद्धयमानो न निष्ठुरं व्यवहरति—यद्विप्रयोगलंभादस्या स्वशरीरभूतस्य सुहृदो हृदयदाह ईदृशो युवराजस्य इत्युक्तवति तस्मिन्सकलोऽपि परिहासाला-परंजितः—पृ. 112–113

हास्य का एक सुन्दर उदाहरण ग्रामीणों के प्रसंग में मिलता है–[2] वे ग्रामीण हथिनी पर बैठी हुयी वेश्याओं को भी अन्तःपुर की स्त्रियां समझ रहे थे, छत्र धारण करने वाले चारण को भी राजपुत्र समझ रहे थे, स्वर्ण का निष्क आभूषण धारण करने वाले वैश्य को भी राजकर्मचारी मान रहे थे, प्रश्न पूछे जाने पर भी दूसरी ओर चले जाते थे, सामने स्थित होने पर भी अंगुली से इंगित करते थे, श्रवणीय होने पर भी निःशंक होकर ऊंचे स्वर में बोलते थे, घृष्ट हस्ती, अश्व, वृषभादि पशुओं के तीव्रता से समीप आने पर गिरने वाले तथा भागने वाले लोगों को देखकर तालियां बजा-बजाकर खिलखिलाकर हंस रहे थे। ग्रामीणों की सरलता का यह वर्णन पाठक को हंसने के लिए बाध्य कर देता है।

अद्भुत

अद्भुत रस का स्थायिभाव स्मय है। सम्पूर्ण तिलकमंजरी में जगह-जगह पर अद्भुत रस का समावेश है। विद्याधर मुनि वैमानिक ज्वलनप्रभ का वर्णन अद्भुत का ही दृष्टान्त है। वैमानिक द्वारा भेंट किये गये चन्द्रातप दिव्य हार का वर्णन जिसे पहनते ही तिलकमंजरी पूर्वजन्म की स्मृति से व्याकुल हो

1. तिलकमंजरी. पृ. 59–60
2. ....करेणुकाधिरूढं क्षुद्रगणिकागणमप्यन्तः पुरमितिधृतोष्णवारणं चारणमपि महाराजपुत्र इति कनकनिष्काङ्कृतकन्धरं वणिजमपि राजप्रसादचिन्तक इति चिन्तयद्भिः पृष्टैरपि प्रतिवचनम् प्रच्छयद्भिरप्यन्यतो गच्छद्भिः पश्यतोऽप्यभिमुखमंगुलीभिदर्शयद्भिः शृण्वतामपि चेष्टितमशंकितैरुच्चस्वनेन सूचयद्भिरविषमावता रसंभर्देषु दुर्दान्तकरभवाजिवृषभोत्प्लवनेषु व्यालदन्ति वेगोपसर्पणेषुसतालशब्दमुच्चैस्तरां हसद्भिः,

–वही, पृ. 118–19

गयी थी अद्भुत रस के अन्तर्गत ही आता है। लक्ष्मी द्वारा भेंट की गयी बालारुण अगुलीयक, जिसे पहनते ही शत्रु की सेना दीर्घनिद्रा मे लीन हो गयी, अद्भुत रस का सचार करने वाली है। हाथी के द्वारा हरिवाहन को आकाश मे उड़ाकर ले जाना अत्यधिक विस्मयजनक है। मलयसुन्दरी द्वारा पुष्पमाला पहनाये जाने पर तथा हरिचन्दन का तिलक लगाने पर समरकेतु के नेत्रो मे उसका अदृश्य हो जाना, ये सभी आश्चर्यजनक घटनाएँ है। निशीथ नामक दिव्य वस्त्र का वर्णन किया गया है, जिसे पहनकर अदृश्य हुआ जा सकता था।[1] इसके स्पर्श से ही समस्त शाप नष्ट हो जाते थे। शुक रूप गन्धर्वक का शाप इसी मे नष्ट हो गया था वह अपने पूर्वरूप मे आ गया। महर्षि द्वारा तिलकमजरी तथा मलयसुन्दरी के पूर्वजन्मो की कथा के वर्णन मे यह अद्भुत रस अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है, अत धनपाल ने इसे 'स्फुटाद्भुतरसा' कथा उचित ही कहा है।

भयानक

भयानक रस का स्थायिभाव भय है। इस रस की अभिव्यक्ति वज्रायुध तथा कुसुमशेखर की सेनाओ के युद्ध मे हुयी है—महाप्रलयसंनिभ समरसघट्ट. सर्वतश्च गात्रसघट्टरणितघण्टानामरिद्विपावलोकनक्रोधधाविनानामिभपतीना बृंहितेन, प्रतिबलाश्च दर्शनक्षुभिताना च वाजिना हेषितेन, हर्षोत्तालमूलताडिततुरगबद्धरहसा च स्यन्दनाना चीत्कृतेन, सकोपधानुष्कनिर्दयास्फोटितधाना च चापयष्टीनां टकृतेन —समरभेरीणा भाङ्कारेण, निर्भराध्मातसकलदिक्चक्रवाल यत्र साक्रन्दमिव साट्टहासमिव सास्फोटनरवमिव ब्रह्माण्डमभवत्–पृ 87

इसके अतिरिक्त भयानक रस की अभिव्यक्ति मेघवाहन के वर्णन मे[2] वेताल वर्णन मे[3] मेघवाहन द्वारा अपने शिरच्छेद कर्तन के प्रसग मे,[4] समुद्र वर्णन

---

1 यथा किल परैरलक्षिततनु कुमारो दिदृक्षते नगरमिनि। तद्यदि सत्यमेतत्तदमुना स्पर्शानुमेयेन निशीथनाम्ना दिव्यपटरत्नेन प्रावृताग पश्य स्वम्। .. व्यापृताक्षोऽपि लोक स्तोकमपि नालोकयति देहिनम, अभिभूतलाक्रान्त भोगनालोऽपि न दशति दन्दशूक . दिव्यपुरुषं सरोपमारोपितान पहरति दीर्घशापानपि स्पर्शमात्रेणापयमिनि निगद्य मद्गात्रमुत्तमागन सह तेनाच्छादयत्। –तिलकमजरी, पृ 376

2 यस्य फेनवत्स्फुट प्रसृतयशोट्टहासभरित भुवन कुक्षिरगीकृतजेन्द्रकृत्तिभीषण मजहार विश्वानि शात्रवाणि महाभैरव कृपाण। –तिलकमजरी, पृ 14

3 वही, पृ 47–49

4 वही, पृ 52–53

में,[1] वैताढ्यपर्वत की अटवी के वर्णन में,[2] वैजयन्ती नगर के विप्लववादि[3] प्रसंगों में हुयी है।

करुण

करुण रस का स्थायिभाव शोक है। इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति हस्ती द्वारा हरिवाहन का अपहरण कर लिये जाने पर समरकेतु के विलाप में हुयी है—हा सर्वगुणनिधे, हा बुधजनैकवल्लभ, हा प्रजाबन्धो, हा समस्तकलाकुशल कोसलेन्द्रकुलचन्द्र, हरिवाहन, क्व द्रष्टव्योऽसि।

समरकेतु की शोक-विह्वलता प्रस्तुत वर्णन में स्पष्ट है— .. अनुपदमास्पदीकृतो दाहदहनेन सततबाष्पसलिलसंगादमूलमंकुरितमिव निःसंख्यता गतं दुःखभारमुद्वहन्मानसेन क्षणं निषण्णः क्षणमासीनः, क्षणं परावर्तमानो, मनुजलोकायासविद्वेषेण द्वेषमव्रजन्ती महीमपतदुपरि ब्रह्माण्डमवलरसहृत्नधः—येन भुवनत्रय ख्यातविक्रमस्तस्मादपि करटिकीटादापदं प्राप्तोऽसि इत्यादि विलपन्विलीनः— स कथमपि क्षपामनयत। पृ. 190

इसी प्रकार मलयसुन्दरी ने पाषाण के हृदय को भी द्रवीभूत करने वाला विलाप किया है—शतमुखी भूतदुःखदाहा निदाघसरिदिव प्रथमजलधरासार वाखिरणवन्धेन महतापि प्रयत्नेन हेलानतं बाष्पवेगमपारयन्ति धारयितुम्मुक्तातितारकरुणपूत्कारा हा प्रसन्नमुख, हा सुरेखसर्वाकार, हा रूपकन्दर्प—किमेकपद एव निस्नेहतां गतः। किं न पश्यसि मामस्थान एव निर्वासितां पित्रा विसर्जितां मात्रा परिहृतां परिजनेनावधोरितां बन्धुभिरेकाकिनीमदृष्टप्रवासां वनवासदुःखमनुभवन्तीं किमागत्य नाथ, नाश्वासयसि कदा त्वमीदृशो जातः -पृ. 332

शान्त रस

शान्त रस का स्थायिभाव शम है। शान्तातप कुलपति के आश्रम के इस वर्णन में शान्त रस की व्यंजना की गयी है।

जहां प्रातःकाल में यज्ञ की अग्नि के धुएँ को दुर्दिन समझकर आश्रम के मयूर हर्षित होकर तीव्र केकारव करते हैं, जिससे भयभीत होकर सर्प समाधि के कारण निश्चल शरीर वाले मुनि के चटक पक्षियों के घोसलों से युक्त जटामडण्ल के नीचे छिप जाते हैं।[4]

---

1. वही, पृ. 120–122
2. वही, पृ. 200
3. वही, पृ. 342–43
4. प्रातः प्रातरवेक्ष्य होमहुतभुग्धूम्यामहादुर्दिनं,
   हृष्टस्याश्रमबर्हिणस्य रसितैरायामिभिस्त्रासिताः।
   नीचैरेत्य समाधिनिश्चलतनोर्मध्ये जटामण्डलं,
   यस्यावाधितबद्धनीडचटकाश्चक्रुः स्थितिं भोगिनः॥

   — तिलकमंजरी, पृ. 329–30

इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलकमजरी मे सभी नौ रसो की सम्यक अभिव्यक्ति हुयी है। प्रधान रस शृंगार है, जिसके दोनो भेदो की सुन्दर अभिव्यजना कर उसे चरम परिपाक तक विकसित किया गया है। वीर, बीभत्स तथा अद्भुतादि अन्य रस अगरूप से वर्णित करके प्रमुख रस के परिपोषण तथा कथा के विकास मे सहायक हैं।

प्रस्तुत अध्याय मे तिलकमजरी का साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया जिसके प्रमुख प्रतिमान थे, तिलकमजरी एक कथा, धनपाल की भाषा-शैली, अलकार-योजना तथा रसाभिव्यक्ति। गद्य-काव्य की दो विधायें काव्यशास्त्रियो द्वारा निर्धारित की गयी है—कथा तथा आख्यायिका। तिलकमजरी ग्रन्थ गद्य-काव्य की कथा-विधा के अन्तर्गत आता है। यह काव्य सस्कृत साहित्य के एक प्रमुख अंग गद्य-काव्य के अल्पशेष दुर्लभ ग्रन्थों के अन्तर्गत होने से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। धनपाल ने अति प्राजल ओजस्वी, भावपूर्ण भाषा मे इस ग्रन्थ की रचना की है तथा छोटे-छोटे समासो युक्त ललित वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। सुन्दर प्रसगानुकूल अलकार-योजना से काव्यकलेवर सजाया-सवारा गया है। राजकुमार हरिवाहन तथा विद्याधर कुमारी तिलकमजरी की यह प्रेम-कथा शृंगार-रस से सिंचित होते हुए भी अन्य सभी आठो रसो से भी अभिसिक्त है। अपनी इन्ही विशेषताओ से तिलकमजरी ने कथा-साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है तथा वासवदत्ता, कादम्बरी, की पक्ति मे तृतीय स्थान पर विराजमान हो गयी है।

पंचम अध्याय

तिलकमंजरी का सांस्कृतिक अध्ययन

मनोरंजन के साधन

धनपाल के समय में साहित्य एवं कला अपने चर्मोत्कर्ष पर थे। तत्कालीन राजा कविता कामिनी के उपासक और रक्षक दोनों ही थे। स्वयं राजा भी साहित्य सृजन करते एवं अन्य कवियों की कृतियों को भी पूरे मनोयोग से ग्रहण करते थे। अपनी रचनाओं द्वारा राजा का मनोरंजन करना कवि का प्रमुख उद्देश्य था। स्वयं धनपाल ने तिलकमंजरी की भूमिका में लिखा है कि उसने इस कथा की रचना जैन आगमों में कथित कथाओं के श्रवण को उत्सुक भोज के विनोद हेतु की थी।[1]

अतः उस समय राजकीय मनोरंजन के प्रमुख साधन साहित्य तथा कला-विषयक थे अर्थात् वे मनोरंजन की अपेक्षा मस्तिष्क-रंजन में अधिक रूचि लेते थे। राजकुमार हरिवाहन व समरकेतु के प्रसंग में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है—वे दोनों मित्र परस्पर अपनी अभ्र कुशलता का प्रदर्शन करते, कभी पद-वाक्य का विवेचन करते, कभी प्रमाण व प्रमेय के स्वरूप का विचार करते, कभी धर्मशास्त्र के विषयों का समर्थन करते, कभी असत् दर्शन की युक्तियों का खण्डन करते, कभी नीतिशास्त्र के विषयों का अध्ययन करते, कभी कला-सम्बन्धी विषयों पर वाद-विवाद करते, कभी रस, अभिनय, भावादि का वर्णन करते, कभी वेणु, वीणा, मृदंगादि वाद्यों का वादन करते तथा कभी प्राचीन कवियों की रचनाओं के अनुशीलन में अपना समय व्यतीत करते थे।[2]

इस प्रकार के मनोरंजन के लिए प्रायः गोष्ठियां आयोजित की जाती थी जो प्रायः या तो राज दरबार में ही हुआ करती अथवा नगर से दूर कहीं वन या किसी रमणीक उद्यान में की जाती थी।[3] इस प्रकार की अनेक गोष्ठियों का

---

1. तिलकमंजरी, पृ. 7, पद्य 50
2. वही, पृ. 104
3. तिलकमंजरी, पृ. 61, 108, 172, 184, 372

उल्लेख तिलकमजरी मे आया है—नर्मालापरहस्यगोष्ठी (61), चित्रालकार बहुल काव्य गोष्ठी (108), सुभाषित गोष्ठी (172,372), गीतगोष्ठी (184) आदि। हर्षचरित के टीकाकार शकर के अनुसार—विद्या, धन, शील बुद्धि और आयु मे मिलते-जुलते लोग जहा अनुरूप बातचीत के द्वारा एक जगह आसन जमावें, वह गोष्ठी है।[1] इन गोष्ठियो का प्रमुख उद्देश्य विनोद-मात्र होते हुए भी इनसे राजकुमार साहित्य एव कला सम्बन्धी अपने ज्ञान मे वर्धन करते थे।[2] अब इनका विस्तार से वर्णन किया जायेगा।

साहित्यिक मनोरजन

साहित्यिक मनोरजन के लिए राजकुमार गोष्ठिया आयोजित करते थे, जिनमे कलाविद्, शास्त्रज्ञ, कवि, कुशलवक्ता, काव्य के गुण-दोषो का विभाग करने वाले, कथा-आख्यायिका मे रुचि रखने वाले तथा कामशास्त्रादि ग्रन्थो की आलोचना मे अनुरक्त अनेक देशो के राजपुत्र सम्मिलित होते थे। ये गोष्ठिया समान आयु वाले युवको की होती थी।[3] मतकोकिलाद्यान के जलमण्डप मे हरिवाहन ने इसी प्रकार की चित्रालकार बहुल काव्य-गोष्ठी आयोजित की थी। इस गोष्ठी मे विद्वत्सभाओ मे प्रसिद्ध पहेलिया बूझी गयी, प्रश्नोत्तर किये गये, षट्-प्रज्ञको की कथायें कही गयी, बिन्दुच्युतक, अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक श्लोको का विवेचन किया गया तथा इसी प्रकार की अन्य साहित्यिक पहेलिया बूझी गयी।[4] ऐसी सभाओ मे वेदग्ध्यपूर्ण हास्य के फव्वारे छूटते थे।

इसी प्रकार मलयसुन्दरी के आश्रम मे विद्याधरगणों के साथ प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका, यमकचक्र, बिन्दुमती आदि चित्रालकार युक्त काव्यो से हरिवाहन ने अपना मनोरजन किया।[1] महापुराण मे पद-गोष्ठी, काव्य-गोष्ठी, जल्प-गोष्ठी, गीत-गोष्ठी, नृत्य-गोष्ठी, वाद्य-गोष्ठी तथा वीणा-गोष्ठी के उल्लेख हैं। बाण ने विद्या-गोष्ठी का उल्लेख किया है, जिसके अन्तर्गत पद-गोष्ठी, काव्य-गोष्ठी और

---

1. अग्रवाल वासुदेव शरण, हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ.12
2. (क) विरमतु विनोदैकफला तावदेषा गीतगोष्ठी -तिलकमजरी पृ. 184
   (ख) जायते गीतनृत्यचित्रादि कलासु व्युत्पत्ति — वही, पृ, 172
3. वही, पृ 107–8
4. तिलकमजरी, पृ 108
5. कदाचित्प्रश्नोत्तरप्रहेलिकायमकचक्रबिंदुमत्यादिभिश्चित्रालकारकाव्यैं प्रपचित• विनोदः — वही पृ. 394

जल्प-गोष्ठी आती है। पद-गोष्ठी में अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, गूढ-चतुर्थपाद आदि अनेक प्रकार की पहेलियां बुझाई जाती थी। काव्य-गोष्ठी में काव्य-प्रबन्धों की रचना की जाती थी। जल्प-गोष्ठी में आख्यान, आख्यायिका, इतिहास पुराणादि सुने-सुनाये जाते हैं।[1] मेघवाहन द्वारा अपने परममित्रों के साथ नर्मालापरहस्य-गोष्ठी किये जाने का उल्लेख है।[2] यह एकान्त में आयोजित मित्रमण्डली की उत्कृष्ट हास्य से पूर्ण मनोरंजक गोष्ठी होती थी।

काव्य के अतिरिक्त कथाओं से भी राजकीय जन अपना मनोरंजन करते थे।[3] प्रायः भोजन के पश्चात् राजा मनोरंजक कथाएँ सुनते हुए विश्राम किया करते थे।[4] ये कथाएँ रामायण, महाभारत, पुराण, बृहत्कथा तथा प्रसिद्ध महाकाव्यों से ली जाती थी। प्रायः अन्तःपुर तथा वासभवनों में कथाएं कहने में निपुण स्त्री-पुरुष हुआ करते थे, जिन्हें 'कथक जन' अथवा 'कथकनारीयां' कहते थे। ये व्यक्ति समस्त भाषाओं के ज्ञाता तथा कलाओं में निपुण एवं पौराणिक आख्यानकों को कहने में अत्यन्त चतुर होते थे।[5] समरकेतु ने मलयसुन्दरी को प्राप्त करने की आशा से अपने वृत्तान्त को कथाबद्ध कर प्राचीन कथाओं के व्याज से कथकनारियों के माध्यम से सभी सामन्तों के अन्तःपुरों में पहुँचाया है।[6] कुलपति के आश्रम में वृद्ध तपस्विनी स्त्रियां पौराणिक कथाएं कहकर मलयसुन्दरी का मनोरंजन करती थी।[7]

---

1. अग्रवाल वासुदेव शरण: हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 13
2. प्रवर्तय यदृच्छा सुहृज्जनेन सार्धमग्राम्यनर्मालापरहस्य गोष्ठी :
   तिलकमंजरी, पृ० 61
3. तिलकमंजरी, पृ० 10, 75, 163, 169, 172, 237, 322, 331, 394,
4. वही, पृ० 174, 237, 394
5. (क) अग्रतः प्रपंचतविचित्राख्यानकेन श्रव्यवचसा कथकनारीजनेन....
   –वही पृ० 75
   (ख) सर्वकलाशास्त्रकुशलेन सर्वदेशभाषाविदा सर्वपौराणिका ख्यानक-प्रवीणेन स्त्रीजनेन चित्राभिः कथाभिर्विनोद्यमाना दिनान्यतिवाहयति।
   –वही, पृ० 169
6. वही, पृ० 322
7. यथावसरमभिनवाभिनवानि पौराणिकाख्यानकानि कथयता स्थविरतापसी-समूहेन....
   –वही, पृ० 331

डा० हजारीप्रसाद ने साहित्यिक मनोविनोदो में प्रतिमाला, दुर्वाचक, मानसीकला तथा अक्षरमुष्टि का उल्लेख किया है।[1]

(1) प्रतिमाला या अन्त्याक्षरी में एक आदमी एक श्लोक पढता था और उसका प्रतिपक्षी पडित श्लोक के अतिम अक्षर से शुरु करके दूसरा श्लोक पढता।

(2) दुर्वाचक योग के लिए ऐसे कठोर उच्चारण वाले शब्दो का श्लोक सामने रखा जाता था कि जिसे पढ सकना कठिन होता था।

(3) मानसी कला मे कमल के या अन्य वृक्ष के पुष्प अक्षरो की जगह पर रख दिये जाते थे और उसे पढना पडता था।

(4) अक्षरमुष्टि दो प्रकार की होती थी सामासा तथा निरामासा। सामासा सक्षिप्त करके बोलने की कला है तथा निरामासा गुप्त भाव से वार्तालाप करने की कला है।

कलात्मक मनोरंजन

सगीत, चित्रकला, नृत्य, तथा नाटक, पत्रच्छेद, पुस्तकर्मादि प्रमुख कलाए थीं। साहित्य के पश्चात राजकीय मनोरजन का प्रमुख साधन थी। सम्भ्रान्त जनो के लिए इन कलाओं मे दक्षता प्राप्त करना अनिवार्य था। राजकुमार हरिवाहन को समस्त चौसठ कलाओ मे प्रवीण कहा गया है।[2] तिलकमजरी को समस्त विद्याधरो मे कला मे लब्धपताका कहा गया है।[3] न केवल राजकीय व्यक्ति अपितु साधारण नागरिक भी इनमे पूर्ण निष्णात होते थे।[4] गीत, वाद्य तथा नृत्य प्रत्येक राजकुमारी की शिक्षा के आवश्यक अग थे। मलयसुन्दरी ने राजकोचित विद्या ग्रहण कर नाट्यशास्त्र तथा गीतवाद्यादि कलाओ मे प्रवीणता प्राप्त की थी।[5] तिलकमजरी ने चित्रकला, वीणादि वाद्यो का वादन, लास्य तथा ताण्डवनृत्य, सगीत, पुस्तककर्म तथा विभिन्न प्रकार की पत्रच्छेद रचनादि विदग्धजन विनोद योग्य विभिन्न कलाओ मे निपुणता प्राप्त की थी।[6] अत मलयसुन्दरी हरिवाहन को तिलकमजरी के साथ इन विषयों पर

---

1 द्विवेदी, हजारीप्रसाद, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, बम्बई 1952

2 तिलकमजरी, पृ० 362

3. कृतस्नेऽपि विद्याधरलोक इह लब्धपताका कलासु सकलास्वपि कौशलेन *वत्सा तिलकमजरी।* —*वही, पृ० 363*

4 वही, पृ० 10, 260

5. वही, पृ० 264

6. तिलकमजरी, पृ० 363

वार्तालाप करने के लिए कहती है।[1] पुरुष एवं स्त्रियां भी परस्पर इस प्रकार के वाद-विवाद करते थे। हरिवाहन ने तिलकमंजरी के अन्तःपुर की विलासिनीयों के साथ कलाओं में वाद-विवाद किया था।[2]

(अ) संगीत

संगीत एवं वाद्य-वादन दोनो में ही राजाओं की समान रुचि थी। राजा स्वयं भी गाते थे तथा गायकजनों के गीत सुनकर भी अपना मनोरंजन करते थे। मेघवाहन स्वरचित शृंगाररस पूर्ण सुभाषितों को स्वरबद्ध कर गायकगोष्ठी द्वारा उनका पुनर्गान कराकर आनन्द प्राप्त करता था।[3] गीत गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था, जिसमें स्वरादि पर विचार-विमर्श होता था।[4] प्रायः मध्यान्ह में भोजन के पश्चात् राजा अपने प्रासाद के शिखर प्रान्त में निर्मित दन्तवलभिका में विश्राम करते हुए संगीत वाद्यादि के द्वारा मनोरंजन करते थे।[5] संगीत एवं वाद्य राजकीय जीवन की दैनिक आवश्यकता बन गये थे, अतः तिलकमंजरी के विरह में व्याकुल हरिवाहन न चाहते हुए भी वेणुवीणादिवाद्यों का आदरपूर्वक श्रवणकरता था।[6] यही स्थिति समरकेतु की भी वर्णित की गयी है।[7] तिलकमंजरी हरिवाहन के वियोग से संतप्त होकर कृत्रिमाद्रि के शिखर पर स्थित कामदेव के मन्दिर में देवपूजा के व्याज से रत्नवीणा बजाती थी।[8]

---

1. चित्रकर्माणि वीणादिवाद्ये लास्यताण्डवगतेषु नाट्यप्रयोगेषु षड्जादिस्वर-विभागनिर्णयेषु पुस्तककर्मणि द्रविडादिषु पत्रच्छेदभेदेष्वन्येषु च विदग्धजन विनोदयोग्येषु वस्तुविज्ञानेषु पृच्छन्नाम्।
—वही, पृ. 363
2. यत्र कलासु कुशलाभिरन्तः पुरविलासिनीभिः सह कृतः क्रीडा विवादः।
—वही, पृ. 390
3. कदाचित्स्वयमेव रागविशेषेषु संस्थाप्य समर्पितानि शृंगारप्रायरसानि स्वरचितसुभाषितानि स्वभावरक्तकण्ठया गायकगोष्ठया पुनरुक्तमुपगीयमानान्यनुरागभावितमनाः शुश्राव।
—वही, पृ. 18
4. गलितगर्वगन्धर्वशिथिलितगीतगोष्ठीस्वरविचारा.... —तिलकमंजरी, पृ. 41
5. तत्कालसेवागतैर्गीतशास्त्र....सह वेणुवीणाद्यावाद्यस्य विनोदेन दिनशेषमनयद्।
—वही, पृ. 70
6. वही, पृ. 180, 183
7. वही, पृ. 279
8. कदाचित्कृत्रिमाद्रिशिखरवर्तिनि स्मरायतने देवतार्चनव्यपदेशेन....रत्नवीणां वादयन्ती।
—वही पृ. 391

संगीत मे वीणा-वादन सर्वाधिक लोकप्रिय था। मृच्छकटिक मे कहा गया है कि वीणा असमुद्रोत्पन्नरत्न है, उत्कंठित की संगीनी है, उकताये हुए का विनोद है, विरही का ढाढस है और प्रेमी का रागवर्धक प्रमोद है।[1]

चित्रकला

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3,45,38) के चित्र-सूत्र मे कहा गया है कि समस्त कलाओं मे चित्रकला श्रेष्ठ है। प्राचीन ग्रन्थो मे चार प्रकार के चित्रो का उल्लेख है—(1) विद्ध चित्र-जो इतना अधिक वास्तविक वस्तु मे मिलता हो कि दर्पण मे पड़ी परछाई के समान लगता हो, (2) अविद्ध चित्र जो काल्पनिक होते थे (3) रस चित्र जो भिन्न-भिन्न रसो की अभिव्यक्ति के लिए बनाये जाते थे तथा (4) धूलि चित्र।[2]

चित्र—अवलोकन एव चित्रनिर्माण दोनो ही मनोरंजन के साधन थे। निपुण चित्रकार प्रसिद्ध रूपवती राजकन्याओ के चित्र बनाकर राजाओ को उपहार मे देते थे, जिन्हे देखकर राजा अपना मनोरंजन करते थे।[3] गन्धर्वक ने तिलकमंजरी का चित्र हरिवाहन को भेंटस्वरूप प्रदान किया तथा चित्रकला की दृष्टि से उसकी समुचित समीक्षा करने के लिए कहा।[4] विदग्धजनो की सभाओ मे प्रसिद्ध राजकन्याओ के चित्र प्रस्तुत किये जाते तथा राजकुमार स्वय भी उनकी समीक्षा करते तथा अन्य चित्रकलाविदो के साथ भी विशिष्ट चित्रों के विषय मे विचार-विमर्श करते थे।[5] समरकेतु द्वारा कांची में प्रसिद्ध राजकुमारियो के विद्ध-चित्रों को देखकर समय व्यतीत किया गया।[6]

स्त्रियां एव पुरुष अपने प्रेमी प्रेमिकाओं के चित्र बनाकर अपना मन-बहलाव करते थे।[7] तिलकमंजरी अत्यन्त निपुणतापूर्वक चित्रफलक पर हरिवाहन का चित्र बनाती थी।[8] मलयसुन्दरी के ध्यान मे पलकें मूंदे समरकेतु चित्रफलक

---

1 शूद्रक, मृच्छकटिकम्, पृ 3, 4

2 द्विवेदी, हजारीप्रसाद, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ. 64

3. कदाचिदंगनालोल इति निपुणचित्रकारैश्चित्रपटेष्वारोप्य सादरमुपायनीकृतानि रूपातिशयशालिनीनामवनीपालकन्यकाना ... दिवसमालोकयत्। —तिलकमंजरी, पृ 18

4, वही, पृ 161

5 वही, पृ 166, 177

6 वही, पृ 322

7. तिलकमंजरी, पृ. 278, 296, 391

8 कदाचिदन्तिकन्यस्तविविधवर्तिकासमुद्गा ... देवस्यैव रूप विद्धमभिलिखन्ती, —वही, पृ. 391

पर व्यर्थ ही तूलिका चला रहा था ।[1] संस्कृत साहित्य में चित्र बनाकर प्रेमी-प्रेमिका द्वारा विरह-वेदना को हल्का करने का वर्णन प्रायः किया गया है। यथा मृच्छकटिक में वसन्तसेना चारुदत्त का चित्र बनाती है। शाकुन्तल में दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र बनाकर मन बहलाता है। रत्नावली नाटिका में नायिका सागरिका राजा उदयन का चित्र बनाती है ।[2]

नृत्य तथा नाटक

संगीत एवं चित्रकला के अतिरिक्त नृत्य तथा नाटक भी राजदरबारों में मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। मेघवाहन का नृत्यकला में दक्ष नृत्यविशारदों के नेतृत्व में लास्य नृत्य करती हुई नर्तकियों के नृत्य द्वारा मनोरंजन किया जाना वर्णित किया गया है ।[3] राजा स्वयं भी इस कला में पूर्णतः निष्णात होते थे एवं नर्तकियों के नृत्य की आलोचना करके मनीषियों का मनोरंजन करते थे ।[4] उत्सवों पर विशेषकर जन्मोत्सव एवं विवाह, वसन्तोत्सवः युद्ध मे विजय प्राप्त करने पर. राजा उद्यानों में नृत्य का आयोजन करते थे ।[5] जिनायतन के यात्रोत्सवों पर भी नृत्यों का आयोजन किया जाता था ।[6] जिनेन्द्र के अभिषेक के अवसर पर विचित्रवीर्य की सभा में विभिन्न देशों से अपहृत राजकन्याओं ने नृत्य करके विद्याधरों का मनोरंजन किया था ।[7] मलयसुन्दरी ने अपने नृत्य कौशल से विद्याधरों को भी चमत्कृत कर दिया ।[8] तिलकमंजरी शोधशाला की रंगशाला में निपुण नर्तकियों पर नृत्यों के नवीन प्रयोग करती थी ।[9] गर्भकाल में मदिरावती ने सागरान्तरवर्ती द्वीपों के सिद्धायतनों में अप्सराओं के सायंकालीन प्रेक्षानृत्य देखने की अभिलाषा प्रकट की थी ।[10]

---

1. मरसमागमध्यानमीलिताक्षः पुरः स्थापिते वृथैव तूलिकया चित्रफलके रूपमलिखत् । —वही, पृ. 279
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद; प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ. 65
3. कदाचिदावेदितनिखिलनाट्यवेदोपनिषद्भिर्नर्तकोपाध्यायैः...........जहार । —तिलकमंजरी, पृ. 18
4. वही, पृ. 18
5. तिलकमंजरी, 75, 163, 263, 302, 323, 391
6. वही, पृ. 158, 269
7. वही, पृ. 269
8. वही, पृ. 270
9. कदाचिदुपरितनसौधशालारचितरंगा........ प्रयोगजातमारोपयन्ती —वही, पृ. 391
10. विबुधवृन्दपरिवृता शाश्वतेषु सागरान्तरद्वीपसिद्धायतनेषु सांध्यमारब्धमप्सरोभिः प्रेक्षानृत्यमीक्षितुमाकांक्षत् । —वही, पृ. 75

नाट्य-दर्शन राजाओ एव साधारण जनता के मनोरजन का विशिष्ट अग था ।[1] अयोध्या के नागरिको को नाट्यशास्त्र मे अभ्यस्त कहा गया है ।[2] राजप्रासाद की उर्ध्वभूमिका मे स्थित चन्द्रशाला मे नाट्यशाला अथवा रगशाला[3] का निर्माण किया जाता था जिनमे विभिन्न अवसरो पर नाटको का आयोजन किया जाता था, जिनमे कभी-कभी अन्य देशो के राजा भी आमन्त्रित होते थे ।[4]

पत्रच्छेद

वात्स्यायन के कामसूत्र मे 64 कलाओ मे पत्रच्छेद जिसे विशेषकच्छेद्य कहा गया है, की भी गणना की गयी है । पत्तो मे कैंची से भाति-भाति के नमूने काटना पत्रच्छेद है । इसे ही पत्रवल्ली, पत्रभग, पत्रलता, पत्रागुली कहा जाता था । स्त्रियो के कपोल-स्थल अथवा स्तनो पर फूल-पत्तियो की चित्रकारी पत्र-वल्ली, पत्रभग अथवा पत्रागुली कहलाती थी । तिलकमजरी मे इनका अनेक स्थलों पर उल्लेख आया है ।[5] तिलकमजरी के कपोल स्थल पर कस्तूरी-द्रव से पत्रागुली रचना की गयी थी, जो स्निग्ध नीली अलकलता के प्रतिबिम्ब सी जान पडती थी ।[6] तिलकमजरी ने अन्य कलाओ के साथ पत्रच्छेद मे भी निपुणता प्राप्त की

---

1 वही, पृ 10, 41, 57, 270, 292, 372, 399

2. वही, पृ 10

3 वही, पृ 57, 61, 391

4 'उन्नतप्रासादशिखरचन्द्रशालाया रचितरगभूमिस्वरेपु द्रष्टुमागताना-मष्टादशद्वीपनेदिनीपतीना दर्शयति दिव्य प्रेक्षाविधिम् । —वही, पृ 57

5 (क) कामिनोकुचमिनिष्वनेकभगकुटिला पत्रागुलीरकल्पयत् —तिलकमजरी, पृ 18

(ख) रिपुकलत्रकपोलपत्रवल्ली —वही, पृ 5

(ग) कामिनीकपोलतलमिव पत्रलतालीकृतच्छायम्, —वही, पृ. 211

(घ) कण्टकिनि पत्रच्छेदविरचन देवतार्चनकेतकदले न कपोलतले, —वही, पृ 32

(ड) उल्लसितविरलस्वेदाम्बुकणकर्बु रीकृत कपोलपत्रभंगाम्, —वही पृ. 270

6 स्वच्छकान्तिना कपोलयुगलेन' "कुरगमदपत्रांगुलीरुद्वहन्तीम्, —वही, पृ 247

थी ।[1] द्रविड़ देश की पत्रच्छेद रचना विशेष प्रसिद्ध थी ।[2] हरिवाहन ने भी चित्रकर्म, पुस्तकर्म तथा पत्रच्छेद इन शिल्प कलाओं से अपना मनोरंजन किया था ।[3]

पुस्तकर्म

पुस्तकर्म अथवा पुस्तक कर्म मिट्टी के खिलौने बनाने की कला को कहा जाता था । हर्षचरित में इसका उल्लेख मिलता है ।[4] बाण की मित्रमंडली में कुमारदत्त पुस्तकर्म में दक्ष था ।[5] पुस्तक व्यापार या पुस्तक कर्म सभ्रान्त जनों की शिक्षा का आवश्यक अंग बन गया था । बाण ने कादम्बरी में चन्द्रापीड़ की शिक्षा में पुस्तक व्यापार का उल्लेख किया है ।[6] पुस्तकर्म प्रमुख शिल्प-कलाओं में माना जाता था ।[7] तिलकमंजरी पुस्तककर्म में निपुण थी ।[8]

अन्य मनोरंजन

सभ्रान्त जनों के इन विशिष्ट मनोरंजनों के अतिरिक्त राजाओं एवं अन्य नागरिकों द्वारा पानोत्सव, द्यूत-क्रीड़ा, दोला-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा, भ्रमण, मृगया, इत्यादि से भी मनोरंजन करने का उल्लेख अनेकशः आया है, जिनका नीचे विस्तार से वर्णन किया जाता है ।

पानोत्सव

मधु-पान स्त्री एवं पुरुषों का अति प्रिय मनोरंजन था । विलासीजन अपने गृहोद्यान में अपनी प्रेयसियों के साथ मधु-पानोत्सव का आनन्द लेते थे ।[9] मेघवाहन द्वारा माणिक्य चषकों से अपनी प्रेमिकाओं को अनुनयपूर्वक कापिशायन

---

1. द्रविड़ादिषु पत्रच्छेदभेदेष्वन्येषु च विदग्धजनविनोदयोग्येषु वस्तुविज्ञानेषु पृच्छ्नाम् । —वही, पृ. 363
2. वही, पृ. 363
3. कदाचिच्च बहुविकल्पैश्चित्रकर्मपुस्तपत्रच्छेदादिभिः शिल्पभेदैरापाद्यमानविस्मयः···· —वही, पृ. 394
4. पुस्तकर्मणां पार्थिवविग्रहाः, —बाणभट्ट : हर्षचरित, पृ. 78
5. अग्रवाल वासुदेवशरण, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 29
6. वही, कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 90
7. तिलकमंजरी, पृ. 394
8. वही, पृ. 363
9. गृहोपवनेषु वनितासखैः विलासिभिरनुभूयमानमधुपानोत्सवा —वही, पृ. 9

नामक द्राक्षारसात्मक मद्यविशेष पिलाये जाने का वर्णन किया गया है।[1] यक्षो द्वारा उपवनो के लतामण्डपो मे पानकेलि किये जाने का उल्लेख आया है।[2] प्रमद-वन मे कृत्रिम नदी की तरगो से सिंचित भीनी-भीनी बयार से शीतल सहकार वृक्षो की छाया मे राजा मुरजो की ध्वनि का आनन्द लेते हुए अन्त पुरिकाओ के साथ पुराने मद्य का पानोत्सव करते थे।[3] तिलकमजरी ने उत्तरकुरू से लाये गये कल्पवृक्ष के फल के रस से तैयार किये गये मद्य से विद्याधर कुमारियो के साथ पानोत्सव मनाया।[4]

द्यूत क्रीडा

द्यूत-क्रीडा प्राचीन भारत का अत्यन्त लोकप्रिय खेल था, जिसमे राजा व प्रजा दोनो अनुरक्त थे। एक परिसख्या अलकार के प्रसग मे द्यूत-क्रीडा के बन्ध व्यध तथा मारण पारिभाषिक शब्दो का उल्लेख किया गया है।[5] द्यूत-क्रीडा मे सारीयो का परस्पर बन्ध व्यध तथा मारण होता था। सारी तथा अक्ष शब्दो का उल्लेख किया गया है। सारी का अर्थ खेलने की गोटी एव अक्ष का अर्थ पासा खेलना था अर्थात् गलत पासा खेलने पर सारियो को या तो रोक दिया जाता जिसे बन्ध कहते थे, अथवा उनका प्रत्यावर्तन कर दिया जाता जिसे व्यध कहते थे अथवा उन्हे मार दिया जाता (मारण) अर्थात् पट्ट से बाहर निकाल दिया जाता था। द्यूत मे पराजित होने पर दाव मे रखी गयी वस्तु जिसे 'पणित' कहते थे, देनी पडती थी। जुए मे हार जाने पर पणित दिये बिना कहा जाता है, यह कहकर चतुरवनिताओ द्वारा मेघवाहन को बलात् खीच लिया जाता था।[6] युद्ध मे सोने की ढाल का यम रूपी धूतकार के कौतूकपूर्ण चतुरग के रूप मे वर्णन किया गया है।[7] स्त्रियो में भी द्यूत खेलने का प्रचलन था। सरोवर के तीर पर

---

1 तिलकमजरी, पृ 18

2 वही, पृ 41

3 विधेहि कृत्रिमनदीत रगमारुतावतारशीतलेषु प्रमदवनसहकारपादपतलेष्वनुत्ताल""पुराणवारुणीपानोत्सवम्। —वही, पृ 61

4. वही, पृ. 196

5 सारीणामक्षप्रसरदोषेण परस्पर बन्धव्यधमारणानि, —वही, पृ. 15

6. कदाचित्कीडाये द्यूतपराजित पणितमप्रयच्छन् 'गच्छसि' इति, —तिलकमजरी पृ. 18

7 अन्तकककितवकौतुकाष्टापद प्रकोष्टविनिविष्टमष्टापदम्"... —वही, पृ 84

सीपियों से निकले मोतियों से द्यूत-क्रीड़ा करने का उल्लेख किया गया है।[1] पुरुष एवं स्त्रियां भी परस्पर द्यूत-क्रीडा से मनोरंजन करते थे। हरिवाहन ने तिलकमंजरी की सखी मृगांकलेखा के साथ अक्ष क्रीड़ा कर अपना मनोरंजन किया।[2] द्यूत-क्रीड़ा के अन्यत्र भी उल्लेख आये हैं।[3]

दोला-क्रीड़ा

वसन्त मास में रमणीक उद्यानों में वृक्षों पर दोला रखकर झूलने में नगर-निवासी अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते थे। स्फटिक दोलायन्त्र पर बैठकर विलासी युगल आनन्द प्राप्त करते थे। दोला-क्रीड़ा का अनेकधा उल्लेख किया गया है।[4]

जल-क्रीड़ा

राजाओं की जल-क्रीड़ाओं के लिए राजभवनों में क्रीड़ा-दीर्घिका, केलिवापियां, भवन दीर्घिकायें आदि निर्मित की जाती थी।[5] इनमें राजा अन्तपुर की स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा करते थे। मेघवाहन द्वारा अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा करने का वर्णन आया है, जिसमें वह उनकी जल में गिरी हुई अंगूठियों को खोज-खोज कर निकालने का खेल खेलता था तथा इस खेल के बहाने जल में डुबकी लगाकर वह उनके जघनांशुकों को खींच लेता था।[6] दीर्घिकाओं में जल-क्रीड़ा के अतिरिक्त परस्पर पिचकारियों से कुंकुम युक्त जल छिड़क कर रंग खेलने का भी वर्णन किया गया है। अन्तःपुर की स्त्रियों द्वारा सिंचित मेघवाहन कनशृंग हाथ में लेकर उनके साथ जल-क्रीड़ा करता था।[7] वसन्तोत्सव पर वेश्याओं एवं विटों में परस्पर रंगभरी पिचकारियों से जल-सेक युद्ध हुआ करता

---

1. अपरः सरस्तीरविघटितशुक्तिमुक्तमुक्ताफलैर्धूतक्रिया प्रावर्तयत्,
—वही, पृ. 3523
2. मृगांकलेखया सावनक्षक्रीड़ा विनोदेन क्षणमात्रमास्थात्।
—वही, पृ. 370
3. वही, पृ. 89, 219, 420
4. (क) अपरिस्फुटस्फटिकदोलासु बद्धासनैर्विलासिमिथुनैर्खगाह्यमानगगनान्तरा····
—वही, पृ. 11
(ख) दोलाक्रीड़ासु दिगन्तरयात्रा,
—वही, पृ. 12
5. तिलकमंजरी, पृ. 8, 11, 12, 17, 18, 105, 204, 213, 296
6. वही, पृ. 18
7. वही, पृ. 17
8. वही, पृ. 108

था।[8] जिनायतन मे यात्रोत्सव पर भी भुजंगजन वारविलासिनियो के साथ जल-क्रीडा करते थे।[9]

भ्रमण

राजकुमार क्रीडार्थ नगर के बाह्योद्यान मे जाते थे, जहा सभी प्रकार क पुष्प एव फलो के वृक्ष लगाये जाते थे। उनमे सघन लता-मण्डप सजाये जाते थे तथा इन उद्यानो मे क्रीडा-गिरि, कृत्रिमापगा, कमल-पुष्करिणी, जल-मण्डप आदि निर्मित किये जाते थे।[2] मेघवाहन क्रीडागिरि पर राज्ञी के साथ भ्रमण करता था।[3] स्वेच्छापूर्वक विहार कर राजा अत्यधिक आनन्द प्राप्त करते थे।[4] लक्ष्मी मेघवाहन को सुहृज्जनो के साथ विमान मे बैठकर सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण करने के लिए कहती है।[5] राजकुमार मन बहलाव के लिए अपने राज्य का भ्रमण भी करते थे।[6] राजकुमारिया भी अपनी सखियो के साथ स्वेच्छापूर्वक वन-विहार पर निकल जाती थी।[7] जहां वे विभिन्न प्रकार के खेल खेलने लगती थी, यथा कोई दोला रचने मे लग जाती, कोई वल्कल-छिद्र से कपूर निकाल कर शरीर पर छिडक लेती थी, कोई कर्णकपूर बनाने के लिए लवगपल्लवों का सग्रह करती कोई सरोवर के किनारे सीपियो से निकले मोतियो से द्यूत खेलने लगती तथा अन्य कोई पुष्प-चयन मे लग जाती।[8]

मृगया

राजकुमार अपने मित्रो के साथ घने जगलो में हिंसक जन्तुओ का शिकार कर आनन्द प्राप्त करते थे।[9] एण, अरण्यमहिष, सिंह, वराह, व्याघ्र, चमरादि इनके प्रमुख शिकार थे।[10]

जहा वे जगली जानवरो के शिकार से मनोरजन करते, वहीं वे सुन्दर हरिणो तथा अन्य पशु पक्षियो के साथ विभिन्न प्रकार की क्रिडाये करते हुए

---

1 वही, पृ. 158
2 तिलकमजरी, पृ. 11, 17, 33, 35, 78, 180, 390
3 वही, पृ 17
4 वही, पृ 42, 180
5 वही, पृ 57
6 वही, पृ 181
7 वही, पृ 353
8. वही, पृ. 353
9 वही, पृ. 183
10. वही, पृ 182–83

आनन्दित होते थे। हरिवाहन एवं उसके साथियों द्वारा कामरूप के जंगलों में इसी प्रकार की क्रीडाओं का स्वाभाविक वर्णन किया गया है –वे राजपुत्र किन्हीं शावकों के शरीरों पर कुंकुम के बड़े-बड़े थापे लगा देते, किन्हीं के सिरों पर पुष्प-शेखर बांध देते, किन्हीं के कान में रंग-बिरंगे चवर लटका देते, किन्हीं के सींग से पट्टांशुक की पताका बांध देते, किन्हीं के गले में सोने के घुंघरुओं की माला पहना देते तथा किन्हीं की पूंछ में पत्तों के फूल बांध देते।[1] इस प्रकार प्रतिदिन वे राजपुत्र उनके साथ क्रीडाएं करते थे। इसी प्रकार पालतू पक्षियों से भी क्रीड़ा करने के उल्लेख आये है।[2]

इसके अतिरिक्त राजा स्वयं अनेक प्रकार के वदन-मण्डनादि से अन्तःपुर की स्त्रियों का मनोरंजन करते थे।[3]

बालिकाओं को कन्दुक-क्रीड़ा अत्यन्त प्रिय थी[4] बालिकाएं गुड़ियों का विवाह रचाकर खेल खेलती थी।[5] वसन्तोत्सव पर कृत्रिम हाथीयों तथा घोड़ों के खेल जनता के मनोरंजन के लिए दिखाये जाते थे।[6]

इस प्रकार हमने देखा कि विदग्धजन जहां गोष्ठियों का आयोजन करके उनमें काव्य, आख्यान, आख्यायिका, दर्शन, नीतिशास्त्र, नाटक, संगीत, चित्रकला आदि विविध विषयों पर परस्पर वाद-विवाद करके मस्तिष्क के व्यायाम के साथ मनोविनोद करते थे, वहीं द्यूत-क्रीड़ा, दोलायन्त्र भ्रमण, मृगयादि हल्के फुल्के साधनों से भी अपना मन बहलाया करते थे।

वस्त्र तथा वेशभूषा

मनुष्य के जीवन में वस्त्र तथा वेशभूषा का अत्यधिक महत्व है। सुरुचिपूर्ण वेशभूषा मनुष्य के व्यक्तित्व को आकर्षक बना देती है। प्राचीन युग में भी वस्त्र-धारण की कला को अत्यधिक महत्व दिया गया था, अतः संस्कृत में इसके लिए आकल्प वेश, नेपथ्य, प्रतिकर्म और प्रसाधन शब्द आये हैं। वात्स्यायन

---

1. तिलकमंजरी, पृ. 183
2. वही, पृ. 364
3. कदाचिद्वदनमण्डादिविडम्बनाप्रकारैरुपहसन्चिद्रूपकानन्तःपुरिकाजन-महासयत्। — वही, पृ. 18
4. पांचालिकाकन्दुकदुहितृकाविवाहगोचरामिः........शिशुक्रीडामिः, —वही, पृ. 168 तथा पृ. 365
5. वही, पृ. 168
6. कृत्रिमतुरंगवारणक्रीडाप्राधानेषु प्रेक्षणकेषु, —वही, पृ. 323

ने अपने 'कामसूत्र' मे 64 कलाओ की सूची में वस्त्र तथा वेशभूषा से सम्बन्धित तीन कलाओ की जानकारी दी है—

(1) नेपथ्यप्रयोग–अपने को या दूसरे को वस्त्रालकार आदि से सजाना
(2) सूचीवान-कर्म–सीनापिरोनादि
(3) वस्त्रगोपन–छोटे कपडे को इस प्रकार पहनना कि वह बडा दिखे और बडा छोटा दिखे।

धनपाल ने तिलकमजरी मे अनेक प्रकार के वस्त्रो का उल्लेख किया है, जिससे तत्कालीन भारत के समृद्ध वस्त्रोउद्योग पर प्रकाश पडता है। तिलकमजरी मे न केवल भारतीय वस्त्र अपितु विदेशो से आयातित वस्त्रो का भी उल्लेख है। तिलकमजरी से प्राप्त वस्त्र सम्बन्धी इस जानकारी को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है-

(1) सामान्य वस्त्र—जैसे अशुक, दुकूल, चीन, नेत्र, क्षोम, पट्ट, अम्बरादि।
(2) पहनने के वस्त्र—जैसे कञ्चुक, उत्तरीय, कूर्पासक, तनुच्छद, चण्डातक, कौपीन, उष्णीष, परिधानादि।
(3) अन्य गृहोपयोगी वस्त्र—जैसे कन्था, प्रावरण, आस्तरण, प्रसेविका, विस्तारिका, उपधान, वितानादि।

तिलकमंजरी मे वस्त्र सामान्य के लिए कपट, वसन, निवसन, वासस्, परिधान, सिचय, अम्बर, तथा चेल शब्द प्रयुक्त हुए हैं। कपडा बुनने को 'वान' कहा जाता था।[1] तिलकमजरी मे सात प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया गया है-अशुक, दुकूल, चीन, नेत्र, क्षौम, पट्ट, अम्बर। अमरकोश में वल्क, फाल, कोशेय तथा राकव नामक वस्त्रो के चार भेद कहे गये हैं।[2] जैन साहित्य मे वस्त्रो की अनेक तालिकाएं आयी हैं, जिनका विस्तृत विवेचन डा० मोतीचन्द्र ने दिया है।[3] आगे इन सभी प्रकार के वस्त्रो का विस्तार से विवेचन किया जाता है।

---

1 प्रावरणपटवानार्थमि . —तिलकमजरी, पृ 106

2. अमरकोश, 2/6/11

3 मोतीचन्द्र, भारतीय वेशभूषा पृ 145-154

सामान्य वस्त्र

अंशुक

तिलकमजरी में अंकुश का उल्लेख चालीस से भी अधिक बार हुआ है। इससे पता चलता है कि धनपाल के समय में यह वस्त्र सर्वाधिक प्रचलित था।[4] वल्कलांशुक, उत्तरीयांशुक, स्तनांशुक, जघनांशुक, पट्टांशुक, वर्णांशुक, दिव्यांशुक इत्यादि शब्द अंकुश वस्त्र के विभिन्न प्रकारों व प्रयोगों पर प्रकाश डालते हैं। अंकुश वस्त्र के उत्तरीय अत्यधिक प्रचलित थे। अदृष्टपारसरोवर में स्नान के पश्चात् समरकेतु ने अपने उत्तरीयांशुक को लपेटकर तकिये की तरह सिरहाने लगा लिया था।[1] अन्यत्र वीर-बहूटी के समान रक्तकांति के अंशुक वस्त्र के उत्तरीय का उल्लेख किया गया गया है।[2] अशुक वस्त्र के उत्तरीय से मुंह ढांपकर तिलकमंजरी चिरकाल तक रोयी थी।[3]

रक्तांशुक का अनेक बार उल्लेख किया गया है। कामदेवोत्सव पर नगर में प्रत्येक प्रासाद पर लाल अंशुक की पताकाएं लगायी जाती थी।[1] एक स्थान पर संध्याराग रूपी रक्तांशुक का वर्णन है।[2] समरकेतु की नाव पर बंधी हुयी रक्तांशुक पताका को सिंहमकर आर्द्र मांस समझकर झपटने लगा।[3] जलमण्डप कामदेवगृह में रक्तांशुक की पताकाएँ बांधी गयी थी।[4]

पट्टांशुक नामक विशेष प्रकार के अंशुक वस्त्र का उल्लेख किया गया है। आस्थानवेदिका के दन्तपट्ट पर पट्टांशुक की धुली हुयी चादर बिछायी

---

1. तिलकमंजरी, पृ. 12, 18, 31, 33, 57, 69, 72, 106, 123, 132, 152, 157, 160, 163 164, 145, 177, 165, 197, 207, 209, 215, 229, 248, 257, 265, 267, 263, 277, 292, 301, 302, 313, 303, 337, 338, 356, 381, 417
2. शिरोभागनिहितपिण्डीकृतोत्तरीयांशुक.... –तिलकमंजरी, पृ. 207
3. इन्द्रगोपकारुणद्युतिमिरुत्तरीयांशुक.... –वही, पृ. 301
4. वही, पृ. 417
5. (क) लोहितांशुकवैजयन्तीभिः.... –वही, पृ. 12
   (ख) वही, पृ. 303
6. वही, पृ. 197
7. वही, पृ. 145
8. विरलोपलक्ष्यमाणरक्तांशुकपताकस्य कुसुमायुधवेश्मनः.... –वही, पृ. 16?

गयी थी।[1] दिव्यावदान मे पट्टांशुक एक प्रकार के रेशमी वस्त्र के लिए आया है। डॉ मोतीचन्द्र के विचार मे यह सफेद और सादा रेशमी वस्त्र था।[2] गन्धर्वक ने शुक के समान हरित वर्ण का पट्टांशुक धारण किया था, जिसे स्वर्ण पट्टी से कसा गया था।[3] गन्धर्वक के विमान मे पट्टांशुक की पताकाएं लगायी गयी थी।[4] पट्टांशुक वस्त्र के प्रावरण तथा वितान का भी उल्लेख है।[5] अशुक वस्त्र को कल्पवृक्ष से उत्पन्न कहा गया है।[6] तपस्विनी मलयसुन्दरी ने हस के समान शुभ्र वल्कलांशुक धारण किया था।[7] दिव्यांशुक नामक उत्तम अशुक वस्त्र का भी उल्लेख है।[8] इसी प्रकार वर्णांशुक का उल्लेख किया गया है। समरकेतु की नाव पर ध्वज के अग्रभाग पर नये वर्णांशुक की पताका बाधी गयी थी।[9]

भारत मे निर्मित इन अशुक वस्त्रो के अतिरिक्त चीन से भी एक अशुक वस्त्र मगाया जाता था जिसे चीनांशुक कहते थे। तिलकमजरी मे चीनांशुक का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[10] दिव्यायतन मे स्वर्णमय दोलायन्त्र के उर्ध्वभाग मे चीनांशुक की पताकाएँ बाधी गयी थी।[11] दिव्यायतन मे चवल चीनांशुक पताका के प्रतिबिम्ब को सर्प समझकर मयूरी उस पर आक्रमण कर रही थी।[12] मलय-

---

1 अच्छधवलधौतपट्टांशुकपटाच्छादितम् .. —वही, पृ 69
2 मोतीचन्द्र, भारतीय वेशभूषा, पृ 95
3 ज्वलदनेकपद्मराग तपनीयपट्टिकयागाढावनद्धशुकहरितपट्टांशुकनिवसन —तिलकमजरी, पृ 165
4 वही, पृ 381
5 (क) अपनीतमर्वागीणहपट्टांशुकप्रावरणा.... —वही, पृ 292
(ख) वही, पृ 337, 267
6. (क) कल्पपादपांशुकप्रावार —वही, पृ 356
(ख) वही, पृ 152
(ग) वही, पृ 160
7 हसधवल दिव्यतरुवल्कलांशुकमन्तिकम्.... —वही, पृ 257
8 वही, पृ 69, 213, 338
9 वही, पृ 132
10 वही, पृ॰ 106,157,215,262,302
11 प्रत्यग्ररचितामिश्रचीनांशुकपताकाभि पल्लवितशिखराणि चामीकरचक्रदोलायन्त्राणि ... —तिलकमजरी, पृ॰ 157
.2 वही, पृ॰215

सुन्दरी के जन्मोत्सव पर कांची के निवासियों ने अपने घरों में चीनांशुक की रंग विरंगी पताकाएं फहरायी थीं।[1] मलयसुन्दरी ने गुप्तरूप से अपने भवन से निकलत समय अपने शरीर को पैरों तक लटकते हुए चीनांशुक पट से आवृत कर लिया था।[2] चीनांशुक के वितानों का भी उल्लेख आया है।[3]

एक अन्य प्रसंग में अंशुक वस्त्र के परदे का उल्लेख किया गया है।[4] बाण के अनुसार अंशुक वस्त्र अत्यन्त झीना तथा स्वच्छ था।[5] धनपाल द्वारा प्रयुक्त 'अमलांशुक' शब्द भी इसी विशेषता की ओर संकेत करता है।[6]

हर्षचरित में मुक्तांशुक का वर्णन आया है- मुक्तमुक्तांशुक- रत्नकुसुमकनकपत्राभरणाम् (पृ०242)। डॉ. अग्रवाल के अनुसार असली मोती पोहकर बनाया गया वस्त्र राजघरानों में प्रयुक्त होता था।[7] इसी प्रकार अत्यन्त झीने वस्त्र को भग्नांशुक कहा गया है।[8]

आ दुकूल

अंशुक के पश्चात् तिलकमंजरी में दुकूल वस्त्र का सर्वाधिक उल्लेख किया गया है।[9] दुकूल वस्त्र को प्रायः जोड़े के रूप पहना जाता था। मेघवाहन ने व्रतावस्था मे चांदी के समान धुले हुए श्वेत दुकूल का जोड़ा पहना था।[10] समरकेतु ने हरिवाहन के अन्वेषण के लिए जाते समय श्वेत दुकूल का जोड़ा पहना था।[11] दुकूल का जोड़ा पहनने के अन्य प्रसंगों में भी उल्लेख है।[12] तारक ने शंख

1. वही,पृ० 263
2. आप्रपदीनपरिणाहेनाप्रतनुना चीनांशुकपटेन प्रच्छाद्य....
— तिलकमंजरी, पृ० 302
3. वही, पृ०57, 106
4. विस्तारितरुचिरपरिवस्रांशुके....। —वही, पृ० 177
5. सूक्ष्मविमलेन अंशुकेनाच्छादितशरीरा.... बाणभट्ट, हर्षचरित, पृ०9
6. तिलकमंजरी, पृ० 229
7. अग्रवाल, वासुदेवशरण, हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 200
8. वही पृ० 100
9. तिलकमंजरी, पृ० 24, 34, 54, 198, 203, 219, 115, 243, 125, 255, 397
10. परिधाय तत्कालधौते कलधौते इवातिधवलतया विभाव्यमाने दुकूलवाससी,
—वही, पृ० 34
11. निवसितप्रत्यग्रसितदुकूलयुगल.... —वही, पृ० 198
12. वही, पृ० 115, 125, 243

के समान शुभ्र तथा सूक्ष्म दुकूल वस्त्र का जोड़ा पहना था ।[1] लक्ष्मी ने श्वेत दुकूल का अधोवस्त्र धारण किया था, जो कमलनाल के सूत्रों से निर्मित सा जान पड़ता था ।[2] मलयसुन्दरी द्वारा दिव्यवृक्ष के वल्कल का दुकूल धारण किया गया था ।[3] बाणभट्ट ने भी दुकूलवल्कल का उल्लेख किया है ।[4] दुकूल वस्त्र की कल्पवृक्ष से उत्पत्ति बतायी गई है ।[5] श्वेत दुकूल के वितानों का अनेक स्थानों पर उल्लेख है ।[6] अदृष्टपार सरोवर को सर्पराज का लीलादुकूलवितान कहा गया है ।[7] श्वेत तथा स्वच्छ दुकूल की चादर का उल्लेख है ।[8] बाणभट्ट ने भी दुकूल से बने उत्तरीय, साड़ियों, पलंग की चादरों, तकियों के गिलाफ आदि अनेक प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है ।[9] बाण के अनुसार दुकूल पुण्ड्रदेश अर्थात् बंगाल से बनकर आता था तथा इसके बड़े थान में से टुकड़े काटकर धोती या अन्य वस्त्र बनाये जाते थे । दोहरी चादर अथवा थान के रूप में विक्रयार्थ आने के कारण यह द्विकूल या दुकूल कहलाने लगा ।[10]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से दुकूल के विषय में विशेष जानकारी मिलती है ।[11] इसके अनुसार बंगाल में बना हुआ दुकूल वस्त्र सफेद और मुलायम होता था । पौंड्र देश में निर्मित दुकूल वस्त्र नीले और चिकने होते थे तथा सुवर्णकुड्या में बने दुकूल ललाई लिये होते थे । दुकूल तीन तरीकों से बुना जाता था—(1) मणिस्निग्धोदकवान (2) चतुरस्रकवान (3) व्यामिश्रवान । बुनावट के अनुसार दुकूल के चार भेद होते थे—(1) एकांशुक (2) अध्यर्धांशुक (3) द्वयंशुक (4) त्र्यंशुक ।

---

1 उल्लिखितशङ्खावदातद्युतिनी तनियसी नवे दुकूलवाससी वसानम्.... .... वही पृ० 125

2. अच्छधवल दिव्यदुकूलमम्बुजवनप्रीत्या पद्मिनीनालसूत्रेणेव कारितम् .. वही, पृ० 54

3. दिव्यतरुवल्कलदुकूलनिवसनाम् . .. . वही, पृ० 255

4 अग्रवाल वासुदेव शरण, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० 78

5. स्वयपतितकल्पद्रुमदुकूलवल्कल .... तिलकमंजरी, पृ० 24

6 वही, पृ० 203,219

7 लीलादुकूलवितानमिव फणीन्द्रस्य, —वही, पृ० 203

8 सितस्वच्छमृदुकूलोत्तरच्छदम्, —तिलकमंजरी, पृ 70

9 अग्रवाल, वासुदेवशरण, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ 78

10 वही, पृ 78

11 कौटिल्य, अर्थशास्त्र 2/11

जैन ग्रन्थ निशीथ के अनुसार दुकूल वृक्ष की छाल को लेकर पानी के साथ तब तक ओखली में कूटा जाता था, जब तक उसके रेशे अलग नहीं होते थे। तत्पश्चात् वे रेशे कात लिये जाते थे। प्रारम्भ में इस प्रकार दुकूल वस्त्र का निर्माण होता था, कालान्तर में सभी महीन धुले वस्त्रों को दुकूल कहा जाने लगा।[1]

हंस दुकूल[2]— हंस दुकूल गुप्त-युग के वस्त्र निर्माण कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। जैन ग्रन्थ आचारांग तथा नायाधम्मकहाओ में इसके उल्लेख मिलते हैं। आचारांग (2, 15, 20) के अनुसार शक्र ने महावीर को जो हंस दुकूल का जोड़ा पहनाया था, वह इतना हलका था कि हवा का मामूली झटका उसे उड़ा ले जा सकता था। वह कलाबत्तू के तार से मिला कर बना था। उसमें हंस के अलंकार थे। नायाधम्म (1.13) के अनुसार यह जोड़ा वर्ण स्पर्श से युक्त, स्फटिक के समान निर्मल और बहुत ही कोमल होता था। अंतगडदसाओ (32) में दहेज में दुकूल के जोड़े दिये जाने का उल्लेख है।[3] कालिदास ने भी हंस चिह्नित दुकूल का उल्लेख किया है।[4] बाण ने कादम्बरी में शूद्रक को गोरोचना से चित्रित हंस—मिथुन से युक्त दुकूल का जोड़ा पहने हुए वर्णित किया है।[5]

नेत्र

तिलकमंजरी में नेत्र वस्त्र का उल्लेख सात बार हुआ है।[6] गन्धर्वक ने पाटल पुष्प के समान पाटलवर्ण के झीने एवं स्वच्छ नेत्र वस्त्र का कूर्पासक पहना था।[7] कढ़े हुए नेत्र वस्त्र के तकिये मेघवाहन के दोनों पार्श्व में रखे गये थे।[8] मदिरावती के विशाल भवन में नेत्र का वितान खींचा गया था, जिसके किनारों पर मोतियों की माला लटक रही थी।[9] युद्ध के प्रसंग में लाल रंग के नेत्र वस्त्र की पताकाओं का उल्लेख है।[10] नेत्र वस्त्र से निर्मित कंचुक के अग्रपल्लव के हिलने से मलय

---

1 मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ. 147

2 मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ. 147–148

3 वही, पृ. 148

4 कालिदास, रघुवंश 17/25

5 बाणभट्ट, कादम्बरी, पृ. 17

6 तिलकमंजरी, पृ. 70, 71, 85, 164, 276, 279, 323

7 सूक्ष्मविमलेन पाटलाकुसुम पाटलकान्तिना——नेत्रकूर्पासकेन, वही, पृ. 164

8 उभयपार्श्वविन्यस्तचित्रसूचिग्रतनेत्रगण्डोपधानम्.... —वही, पृ. 70

9 उपरिविस्तारितसारनेत्रपटविताने, —तिलककमंजरी, पृ॰71

10 अरुणनेत्रपताकापटपल्लवितरथनिरन्तरम् —वही, पृ॰85

सुन्दरी का नाभिदेश प्रकाशित हो रहा था ।[1] एक सन्दर्भ में नेत्र वस्त्र की विस्तारिका का उल्लेख है । तिलकमंजरी के टीकाकार विजयलावण्यसूरि ने 'नेत्र' का सही अर्थ न जानते हुए उसकी भ्रमित व्याख्या की है । नेत्रगण्डोपधान का अर्थ– 'नेत्रगण्डस्थलयो उपधाने स्थापनाऽधारो यस्मिस्तादृशम् किया है, जो सर्वथा अनुचित है ।[2] इसी प्रकार 'नेत्रपटवितान' में नेत्रपट शब्द में नेत्र वस्त्र का स्पष्ट उल्लेख होते हुए भी टीकाकार ने तारनेत्र -'तारविशालम् नेत्राकृतिर्यस्मिस्तादृश पटवितान वस्त्ररूप उल्लोचो' यह असगत अर्थ दिया है ।[3] नेत्र पताका के लिए टीकाकार ने 'नेत्रपताकाना नेत्रकारविशिष्टवस्त्रनिर्मित-ध्वजानाम् पटवस्त्रे पल्लविता' इस प्रकार अर्थ किया है ।[4] इससे ज्ञात होता है कि टीकाकार को नेत्र वस्त्र के विषय मे कोई ज्ञान नहीं था तथा उसने उसके स्वबुद्धिकल्पित भिन्न-भिन्न अर्थ कर दिये । इसी प्रकार नेत्रकूर्पासक मे टीकाकार ने नेत्र तथा कूर्पासक दोनो का ही गलत अर्थ किया है ।—'धृतनेत्रकूर्पासकेन गृहीतनेत्रावरणेन' ।[5]

संस्कृत साहित्य मे नेत्र वस्त्र का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन है । कालिदास ने सर्वप्रथम नेत्र शब्द का उल्लेख रेशमी वस्त्र के रूप मे किया है ।[6] बाण के अनुसार नेत्र श्वेत रंग का वस्त्र था ।[7] किन्तु धनपाल के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि नेत्र कई रंगो का होता था । बाण ने छापेदार नेत्र वस्त्रो का उल्लेख भी किया है । इसकी बुनावट मे फूल पत्ती का काम बना रहता था ।[8] डॉ० मोतीचन्द्र के अनुसार नेत्र बंगाल मे बनने वाला एक मजबूत रेशमी कपडा था, जो 14 वी सदी तक बनता रहा ।[9] इसकी पाचूडी पहनी और बिछायी जाती थी । उद्योतनसूरि (779) के उल्लेख से ज्ञात होता है कि नेत्र चीन देश से भारत मे आता था ।[10] वर्णरत्नाकर मे चौदह प्रकार के नेत्र वस्त्रो का उल्लेख है ।

---

1 वही, पृ० 279
2 तिलकमंजरी, विजयलावण्यसूरि कृत पराग टीका, भाग 2, पृ० 171
3 वही, पृ० 174
4 तिलकमंजरी, पराग टीका, भाग 2, पृ० 200
5. वही, भाग 3, पृ० 5
6 नेत्रोक्रमेणोपरूरोध सूर्यम् —कालिदास, रघुवंशम् 7/39
7 धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेण कंचुकेन, बाणभट्ट, हर्षचरित, पृ० 31
8 अग्रवाल वासुदेवशरण, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 79
9 मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ 157
10. उद्योतनसूरि कुवलयमाला, पृ 66

चीन

चीन का अर्थ चीन देश में निर्मित रेशमी वस्त्र से है। तिलकमंजरी में चीनी वस्त्र का उल्लेख छः बार हुआ है।[1] इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध चीनांशुक का भी छः बार उल्लेख है, जिसका विवेचन अंशुक के अन्तर्गत किया जा चुका है। वृद्ध अन्तर्वंशिकों ने पैरों तक लटकने वाले चीन कंचुक धारण किये थे।[2] चीनी वस्त्र के जोड़े का भी उल्लेख आया है। हरिवाहन ने अभिषेक के अनन्तर स्वच्छ श्वेत चीनी वस्त्र का जोड़ा पहना था।[3]

मलयसुन्दरी द्वारा शुकांग अर्थात् हरे रंग के चीनी वस्त्र का जोड़ा पहनने का उल्लेख है।[4] उत्तम चीनी वस्त्र की थैली में गन्धर्वक तिलकमंजरी का चित्र लेकर आया था।[5] समरकेतु तथा मलयसुन्दरी के प्रसंग में अन्यत्र भी चीनी वस्त्र का उल्लेख हुआ है।[6] डॉ. मोतीचन्द्र के अनुसार भारत में ईसा से पूर्व ही चीन देश से रेशमी वस्त्र लाया जाने लगा था।[7] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कौशेय तथा चीनपट्ट नामक दो प्रकार के रेशमी वस्त्रों का उल्लेख है।

क्षौम

तिलकमंजरी में क्षौम वस्त्र का पांच बार उल्लेख हुआ है।[8] उपनयन समूह के समय हरिवाहन ने विशुद्ध तथा महीन क्षौम वस्त्र का उत्तरासंग धारण किया था।[9] समरकेतु ने हरिवाहन की कुशल वार्ता लाने वाले लेखहारक परितोष को

---

1. तिलकमंजरी, पृ. 153, 164, 229, 293, 311, 404
2. आप्रपदीनचीनकंचुकावच्छन्नवपुषा —वृद्धान्तर्वंशिक समूहेन।
   —वही, पृ. 153
3. अतिविमलघनसूत्रेण संख्यानशास्त्रेणेव नवदशालंकृतेन श्वेतचीनवस्त्रद्वयेन संवीतम।
   —वही पृ. 229
4. केन परिवर्तिते········ ·········शुकांगस्थचिनी ते चीननिवासी·········
   तिलकमंजरी, पृ. 253
5. प्रकृष्टचीनकर्पटप्रसेविकायाः········· वही पृ. 164
6. (क) तेनव चिरन्तनेन चीनवाससा········ — वही पृ 311
   (ख) दरमलिनजीर्णचीनवाससा·········—वही पृ. 404
7. मोतीचन्द्र—प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ. 60
8. तिलकमंजरी, पृ. 79, 62, 125, 150, 19६
9. अनुपहतसूक्ष्मक्षौमकल्पितोत्तरासंगम् ·········—वही, पृ. 79

अपना क्षौमयुगल भेंट मे दे दिया था ।[1] मेघवाहन के विश्वस्त परिचारको ने धुले हुए निर्मल क्षौम वस्त्र धारण किये थे ।[2] नेत्रो की कांति को क्षौम वस्त्र के समान पाडु वर्ण का कहा गया है ।[3] एक उत्प्रेक्षा के प्रसग मे चन्द्रमा को पिण्डीकृत उत्तरीय क्षौम के समान कहा गया है ।[4] इससे ज्ञात होता है कि क्षौम वस्त्र श्वेत रग का होता था । क्षौम वस्त्र क्षुमा या अलसी नामक पौधे के रेशो से बनता था ।

क्षौम का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है । इसका सर्वप्रथम उल्लेख मैत्रायणी संहिता (3/6/7) और तैत्तिरीय संहिता (6/1/1/3) मे आया है । कुसमी रग के क्षौम परिधान का उल्लेख शाखायन आरण्यक मे आया है ।[5] रामायण मे अनेक स्थलो पर क्षौम के उल्लेख हैं । बौद्ध व जैन ग्रन्थो मे भी क्षौम वस्त्र के उल्लेख मिलते हैं ।[6] काशी तथा पुड्र के क्षौम प्रसिद्ध थे ।[7] यह अत्यन्त कीमती व मुलायम कपडा था । अमरकोश मे क्षौम व दुकूल को पर्याय माना गया है, किन्तु धनपाल के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि क्षौम तथा दुकूल भिन्न-भिन्न वस्त्र थे । बाण ने भी दुकूल व क्षौम को अलग-अलग माना है । बाण ने अंशुक की उपमा मदाकिनी के श्वेत प्रवाह से और क्षौम की दुधिया रग के क्षीर-सागर से दी है ।[8]

पट्ट

यह पाट सज्ञक रेशमी वस्त्र था । मलयसुन्दरी ने कामदेव मंदिर जाते समय रक्ताशोक-पुष्प के समान पाटल वर्ण के पट्ट वस्त्र का जोडा पहना था ।[9] अनुयोगद्वारसूत्र के अनुसार पट्ट, मलय, अंसुग, चीनासुय तथा किमिराग से पाच प्रकार के कीटज वस्त्र कहे गये हैं, अर्थात् पट्ट वस्त्र रेशम के कीडो से उत्पन्न किया जाता

1 दत्त्वा च सक्षौमयुगलम्, —वही पृ. 195
2 जलक्षालनविमलनिरायामाक्षौमधरिणा —वही पृ 62
3 लोचनयुगलस्य क्षौमपाण्डुलिभ —वही पृ 125
4 उत्तरीयक्षौममिव पिण्डीकृतमिन्दुमण्डलम्, —तिलकमजरी, पृ 150
5 मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ 13
6 वही, पृ 28
7 वही, पृ 55
8. अग्रवाल वासुदेवशरण, हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ 76
9 रक्ताशोकपुष्पपाटल परिधाय पट्टवासोयुगलम् —तिलकमजरी, पृ 300

था।[1] आचारांग की टीका में इसकी व्याख्या है पट्टसूत्र 'निष्पन्नानि' अर्थात् पट्ट-सूत्र से बने वस्त्र बृहद्‌कल्पसूत्रभाष्य में भी इसका उल्लेख रेशमी कपड़ों के अन्तर्गत किया गया है।[2]

अम्बर

मेघवाहन के व्रत-काल में मदिरावती ने चन्द्रिका के समान शुभ्र अम्बर धारण किया था।[3] अम्बर सूती वस्त्र को कहा जाता था।[4]

पहनने के वस्त्र

इन सामान्य वस्त्रों के वर्णन के अतिरिक्त धनपाल ने स्त्री एवं पुरुष दोनों की अनेक पोशाकों का उल्लेख किया है। नीचे इनका विस्तार से वर्णन किया जाता है।

उत्तरीय

अमरकोश में उत्तरीय अथवा दुपट्टे के लिए पांच शब्द आये हैं—
प्रावार, उत्तरासंग, वृहतिका, संव्यान तथा उत्तरीय। तिलकमंजरी में उत्तरीय का उल्लेख तीस से भी अधिक बार हुआ है।[5] उत्तरीय स्त्री एवं पुरुष दोनों की पोशाक थी। मदिरावती ने अपने उत्तरीय के पल्लू से सिंहासन की धूल झाड़कर विद्याधर मुनि को बिठाया।[6] मेघवाहन ने उत्तरीयपल्लव से मुंह ढककर लक्ष्मी की मूर्ति का सिंचन किया।[7] विजयवेग अपने उत्तरीय में मेघवाहन के लिए उपहार छिपाकर लाया था।[8] मेघवाहन ने चन्द्रातप हार को उत्तरीय के अंचल की छोर

---

1. अनुयोगद्वारसूत्र, 37, उद्धृत, अग्रवाल, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 79
2. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ. 148
3. तिलकमंजरी, पृ. 71
4. अमरकोष, 3/3/181
5. तिलकमंजरी, पृ. 25, 34, 37, 45, 63, 81, 79, 107, 109, 131, 155, 173, 190, 192, 207, 229, 250, 259, 265, 277, 301, 306, 312, 314, 334, 342, 369, 378, 417।
6. मदिरावत्या निजोत्तरीयपल्लवेन प्रमष्टरजांसि हेमविष्टरे न्यवेशयत्। —तिलकमंजरी, पृ. 25
7. उत्तरीयपल्लवेन मुद्रितमुखः, —वही, पृ. 34
8. उत्तरीयपटगोपायितोपायनेन………… —वही पृ. 81

पर बाध दिया ।[1] महोदधि नामक रत्नाध्यक्ष ने दाहिने हाथ से उत्तरीय के छोर से मुह ढापकर तथा बायें हाथ को जमीन पर रखकर राजा को प्रणाम किया ।[2] उत्तरीय के पल्लू के उडने से आकाश मे जाता हुआ गन्धर्वक ऐसा मालूम पडता था मानो गरुड का शिशु हो ।[3] तिलकमजरी ने पसीने से चिपटे हुए वस्त्र वाले नितम्ब को अपने उत्तरीय के अचल से ढका था ।[4] एक स्थान पर उत्तरीय की गात्रिकाबन्ध ग्रन्थि का उल्लेख है ।[5] हर्षचरित मे सावित्री के शरीर के ऊपरी भाग मे महीन अशुक की स्तनो के बीच बधी गात्रिका ग्रन्थि का उल्लेख है ।[6] उत्तरीय के लिए उत्तरासग शब्द भी प्रयुक्त हुआ है । ज्वलनप्रभ ने अग्नि के समान शुद्ध सिचय वस्त्र का उत्तरासग धारण किया था ।[7] क्षौम वस्त्र के उत्तरासग का उल्लेख है ।[8] उत्तरीय के लिए सव्यान शब्द भी प्रयुक्त हुआ है । जलमण्डप मे बैठी हुयी चार स्त्रियो ने बिसतन्तु से निर्मित सव्यान धारण किये थे ।[9] उत्तरीय को भी प्रावार भी कहते थे । गन्धर्वक ने मलयसुन्दरी को अपने प्रावार से ढक दिया था ।[10] एक प्रसग मे उत्तरीयाचल से पखा झलने का उल्लेख है ।[11]

कचुक

यह एक प्रकार की कोटनुमा पोशाक थी जो स्त्री तथा पुरुष दोनो पहनते थे । मलयसुन्दरी ने त्रिवल्ली को ढकने वाला, हारीत पक्षी के समान हरे रग का

---

1 वही, पृ 45
2 वही, पृ 63
3 पवनवेल्लितोत्तरीयपल्लवप्रान्तपक्षति., —वही, पृ 173
4 उत्तरीयाचलेन स्वेदनिबिडासक्तसूक्ष्मसुकुमाराम्बर नितम्बम् वही, पृ 250
5 विधाय चिरमुत्तरीयेण बन्धुर गात्रिकाबन्धम् तिलकमजरी पृ 306
6 स्तनमध्यबद्धगात्रिका ग्रन्थि
—बाणभट्ट हर्षचरित, पृ 10, हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, फलक 1 चित्र 3
7 कपिशितशिशौचसिचयोत्तरा सगम् ... .. तिलकमजरी, पृष्ठ 37
8 वही, पृ 79
9 वही, पृ 107
10 (क) द्वौ प्रावारोत्तरासगौ समौ बृहतिका तथा सव्यानमुत्तरीय च —अमरकोश, 2/6/117
(ख) तिलकमजरी, पृ 380
11 वही, पृ 155

कंचुक पहना था, जिसके अग्रपल्लव के बार-बार उड़ने से उसका नाभिमंडल दिखायी दे जाता था।[1] टीकाकार ने कञ्चुक का अर्थ चोलक दिया है। वृद्ध अन्तर्वंशिकों ने पैरों तक लटकते हुए चीन कञ्चुक धारण किये थे।[2] एक अन्य प्रसंग में हरिवाहन के साथी राजपुत्रों द्वारा कंचुक पहनने का उल्लेख है।[3]

धनपाल ने कंचुक का चोली अर्थ में भी प्रयोग किया है। कंचुकावृत होने पर भी मलयसुन्दरी ने अपने वक्षःस्थल को पूर्ण रूप से आवृत करने के लिए अपने उत्तरीय से गात्रिकाबन्ध ग्रन्थि लगायी।[4] अन्यत्र भी मलयसुन्दरी धृत नेत्र वस्त्र के कंचुक का उल्लेख किया गया है।[5]

कूर्पासक

तिलकमंजरी में कूर्पासक का एक बार ही उल्लेख है। गन्धर्वक ने पाटल-पुष्प के समान पाटल वर्ण का झीना तथा स्वच्छ नेत्र वस्त्र से निर्मित कूर्पासक पहना था।[6] कूर्पासक कमर से ऊंचा तथा आधी आस्तीन का कोटनुमा वस्त्र था, जिसे स्त्री तथा पुरुष दोनों पहनते थे।[7] हर्षचरित में राजाओं की वेशभूषा के वर्णन में कूर्पासक का उल्लेख आया है।[8]

तनुच्छद

तिलकमंजरी में वारवाण के लिए तनुच्छद शब्द का प्रयोग हुआ है। तनुच्छद का उल्लेख केवल एक बार ही आया है।[9] वारवाण भी कंचुक के समान ही पहनावा था, किन्तु यह कंचुक से भी लम्बा होता था। प्रायः यह युद्ध में पहना जाता था। यह विदेशी वेशभूषा थी जो सासानी ईरान से भारत में आयी थी। बाणभट्ट ने भी वारबाण का उल्लेख किया है।[10]

---

1. आच्छादितोदरवलित्रयस्य हसितहारीतपक्षीहरितनिम्नः कंचुकाग्रपल्लवस्य चंचलतया........ —वही, पृ० 160
2. आप्रपदीनचीन कंचुकावच्छन्नवपुषा........ —वही, पृ० 153
3. दृढाकृष्टकंचुककशाविकक्षोदरश्रियः........ —वही, पृ० 232
4. निविशितमशिथिल कंचुकावृतस्य कुचमण्डलस्योपरिविधाय चिरमुत्तरीयेण ... —तिलकमंजरी, पृ० 306
5. चटुलनेत्र कंचुकाग्रपल्लव प्रकाशितनाभिदेशायाः.... —वही, पृ० 279
6. सूक्ष्मविमलेन पाटलाकुसुम ....नेत्रकूर्पासकेन, —वही, पृ० 164
7. अग्रवाल, वासुदेवशरण; हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 155
8. नानाकषायकर्बुरैः कूर्पासकैः ...... बाणभट्ट, हर्षचरित, पृ० 206
9. कैश्चिद्दुल्लासिताभिनवतनुच्छदैः .... तिलकमंजरी, पृ० 303
10. अग्रवाल, वासुदेवशरण; हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 153, 54

चण्डातक

यह आधो नक पहुचने वाला अधोवस्त्र था जिसे स्त्री तथा पुरुष दोनो पहनते थे ।[1] तिलकमजरी में चण्डातक का एक बार ही उल्लेख हुआ है । तिलकमजरी-प्रासाद के वर्णन में क्रीडाशैल की गुहा मे निवास करने वाले शबरमियुनों के कल्पवृक्ष की छाल से निर्मित चण्डातकों का उल्लेख है ।[2]

कौपीन

एक मात्र कौपीन धारण करने वाले मछुओं का उल्लेख किया गया है ।[3] कौपीन एक प्रकार की छोटी चादर थी, जो प्राय साधु लोग पहनने के काम मे लेते थे ।

उष्णीष

यह पगडीनुमा शिरोवस्त्र था । गन्धर्वक ने पट्टांशुक वस्त्र का उष्णीष धारण किया था ।[4] हरिवाहन के साथ जाने वाले राजपुत्रो ने उष्णीष पट्टों के शिरोवेष्टन बाधे थे ।[5] वैताढ्यपर्वत को जम्बूद्वीप का उष्णीषपट्ट कहा गया है ।[6]

परिधान

परिधान नाभि से नीचे पहने जाने वाले अधोवस्त्र के लिए प्रयुक्त हुआ है ।[7]

गृहोपयोगी वस्त्र

इन वस्त्रों के अतिरिक्त तिलकमजरी में कन्था' प्रावरण, उत्तरच्छदपट, प्रसेविका, विस्तारिका, उपधान तथा वितानादि गृहोपयोगी वस्त्रो का भी उल्लेख है ।

कन्था

तिलकमजरी मे कन्था का दो बार उल्लेख किया गया है ।[8] गरीब लोग

---

1. मोतीचन्द्र-भारतीय वेशभूषा, पृ 23
2. क्रीडाद्रिकन्दराशबरमिथुनानामम्बन्दानि कल्पतरुचीरचण्डातकानि, तिलकमजरी, पृ 372
3. कौपीनमात्रकर्पटावरणेष्वतरुणलुण्ठिततिमिर...... जालिकेषु, —वही प 151
4. पट्टांशुकोष्णीषिणा ...... —वही पृ 165
5. उष्णीषपट्टकृतशिरोवेष्टना ...... —वही पृ 232
6. उष्णीषपट्टमिव जम्बूद्वीपस्य, —वही पृ 239
7. तिलकमजरी, पृ 36, 209, 265
8. वही, पृ 3, 139

टंड से बचाव के लिए पुराने जीर्ण वस्त्रों को सिल कर गद्दा बना लेते थे, जिसे वे ओढ़ने और बिछाने के काम में लेते थे। समरकेतु के शिविर-लोक के कोलाहल के प्रसंग में कन्था का उल्लेख किया गया है। सैनिक के हाथ से छूटकर कन्था समुद्र में गिर गयी तथा तिमिंगल मत्स्य द्वारा निगल ली गयी, अतः दूसरा सैनिक कहता है कि अब शीत ऋतु में ठंड से ठिठुरना।[1]

प्रावरण

शीत से बचाव के लिए ओढ़ने की चादर को प्रावरण कहा जाता था। प्रावरणका तीन बार उल्लेख है।[2]

उत्तरच्छदपट

उत्तरच्छदपट बिछाने की चादर के लिए प्रयुक्त हुआ है।[3] इसके लिए आस्तरण तथा प्रच्छदपट शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।[4] धुले हुए नेत्रवस्त्र की चादर समरकेतु के शयन पर बिछी थी[5] मेघवाहन के विद्रुमपर्यंक पर श्वेत दुकुल की चादर बिछायी गयी थी।[6]

प्रसेविका

थैली अथवा पोटली को प्रसेविका कहा जाता था। गन्धर्वक उत्तम चीनी वस्त्र की थैली में तिलकमंजरी का चित्र लाया था।[7] उत्तम कपड़े की थैली में ताम्बूल के बीड़ों की टोकरी रखी गयी थी।[8]

विस्तारिका

विस्तारिका बड़ी गद्दी को कहते थे। नेत्र वस्त्र से निर्मित गद्दी का उल्लेख किया गया है।[9]

---

1. सा स्थवीयसी कन्था मलितमात्रैव करतलाद्विलिता तिमिंगिलेन गललग्नहस्तेन मर्तव्यमधुना हिमर्तौ शीतेन। —वही, पृ. 139
2. वही, पृ 106, 292, 337
3. तिलकमंजरी, पृ. 70, 177
4. वही, पृ. 75, 174, 276, 367
5. वही, पृ. 276
6. मृदुदुकूलोत्तरच्छदम्.... .. ... वही, पृ. 70
7. प्रकृष्टचीनकर्पटप्रसेविका............वही, पृ. 164
8. वही, पृ. 165
9. नेत्रविस्तारिकायामुपविष्ट........ . वही, पृ. 323

वितान

तिलकमजरी मे वितान का अनेकधा उल्लेख आया है। मदिरावती के भवन मे ऊपर की ओर नेत्रवस्त्र का वितान खीचा गया था, जिसके किनारो पर मोतियो की मालाए लटक रही थी।[1] वितानक मे लटकती हुई झूलो का उल्लेख किया है।[2] अन्यत्र श्वेत दुकूल वितान का उल्लेख है।[3] चीनाशुक के वितानो का जिनमे मोतियो की लडें टाकी गयी थी, उल्लेख किया गया है।[4] अन्यत्र पट्टाशुक वितान का वर्णन भी किया गया है।[5] कादम्बरी मे शुद्रक के आस्थान-मण्डप के दुकूल वितान के बीच मोतियो के झुग्गे लटकने का उल्लेख है।[6]

उपधान

तिलकमजरी मे गण्डोपधान तथा हसतूलोपधान नामक विशेष प्रकार के तकियो का उल्लेख है।[7] गण्डोपधान सिर के नीचे एक तरफ रक्खी जाने वाले गोल तकिये को कहते थे।[8] समरकेतु के हस्तदन्तीमय शयन के दोनो ओर दो हसतूलोपधान रखे गये थे।[9] कढे हुए नेत्र वस्त्र से निर्मित गण्डोपधान मेघवाहन के दोनो पार्श्व मे लगाये गये थे।[10] वृहत्कल्पसूत्रभाष्य मे उपधान, तूलि, आलिगिका, गण्डोपधान तथा मसूरिका नाम के तकियो का वर्णन हैं।[11]

आभूषण

तिलकमजरी मे शरीर के विभिन्न अगों पर धारण किये जाने वाले सभी आभूषणों का वर्णन मिलता है, जो तत्कालीन अलकारशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

शिरोभूषणो मे मौलि, किरीट, चूडारत्न, मुकुट तथा सीमन्तक, कर्णाभूषणो

---

1. उपरिविस्तारिततारनेत्रपटविताने . . —तिलकमजरी, पृ 71
2. अवचूलरत्नमालिकाद्य .. —वही, पृ 159
3. वही, पृ 203, 219
4. वही, पृ 57, 105
5. वही, पृ 71, 267
6. स्थूलमुक्ताकलाप—कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन पृ 28
7. तिलकमजरी, पृ 70, 276
8. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेषभूषा, पृ 168
9. तिलकमजरी, उभयत स्थापितमृदुस्थूलहसतूलोपधाने, पृ. 276
10. उभयापार्श्वविन्यस्तचित्रसूत्रितनेत्रगण्डोपधानम् . तिलकमजरी, पृ 70
11. बृहत्कल्पसूत्रभाष्य, 4, 24, 38

में कुण्डल, कर्णाभरण तथा कर्णपूर, गले के आभूषणों में हार, निष्क, एकावली, प्रालम्ब, मौक्तिककलाप एवं कण्ठिका, भुजा के आभूषणों में अंगद तथा केयूर, कलाई के आभूषणों में कंकण, वलय और कटक, अंगुलियों के आभूषणों में उर्मिका और अंगुलीयक, कटि के आभूषणों में कांची, मेखला, रसना, एवं सारसन तथा पैरों के आभूषणों में नूपुर, हंसक, मंजीर तथा चरणोर्मिका के नाम आए हैं। इस प्रकार कुल सत्ताइस प्रकार के आभूषणों का वर्णन तिलकमंजरी में मिलता है।

शिरोभूषण

सिर के अलंकारों में मौलि, किरीट, चूड़ारत्न, मुकुट तथा सीमन्तक का उल्लेख है।

मौलि

समस्त द्वीपों के राजाओं की मौलिमाला का उल्लेख किया गया है।[1] अन्यत्र भी मौलि का उल्लेख है।[2] एक स्थान पर मौलि मुकुट का उल्लेख किया गया है। दिव्यातन को मृत्युलोक रूपी नरेन्द्र का मौलिमुकुट कहा गया है।[3]

किरीट

एक प्रसंग में स्वर्ण-निर्मित किरीट, जिसमें मणियों का जड़ाव किया गया था, का उल्लेख है।[4]

चूड़ारत्न

ज्वलनप्रभ ने चूड़ारत्न धारण किया था, जो शिरोमाला के मधुकरों के प्रतिबिम्ब से चितकबरे रंग का जान पड़ता था।[5] अन्यत्र चूड़ामणि शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।[6]

मुकुट

महादण्डनायकों ने मणियों के मुकुट धारण किये थे।[7] युद्ध में आग में

---

1. खलद्वीपद्वीपावनीकालमौलिमाला.......—तिलकमंजरी, पृ. 194
2. वही, पृ. 267, 279, 249
3. मौलिमुकुटमिव मर्त्यलोकभूपालस्य, —तिलकमंजरी, पृ. 216
4. उन्मयूखमाणिक्यखण्डखचितकांचनकिरीटभास्वरशिरोभिः... वही, पृ. 225
5. चूड़ारत्नेन..... कल्पितोत्तमांगम्, —वही, पृ. :7
6. वही, पृ. 81, 216
7. वही' पृ. 70

तपाये गये नाराचों के तीव्रता से लगने पर नृपतियो के स्वर्णमुकुट विलीन हो जाते थे।[1] मुकुट का अन्यत्र भी उल्लेख है।[2]

(५) स्त्रियों के सीमन्तक नामक शिरोभूषण का उल्लेख आया है। तीव्रता से उतरने के कारण बिखरे हुए सीमन्तकाभूषण के माणिक्यों के सीढियो पर लुढकने की मधुर ध्वनि उत्पन्न हो रही थी।[3]

कर्णाभूषण

कर्णाभूषणो मे कुण्डल, कर्णाभरण, कर्णपूर का उल्लेख है।

कुण्डल

कुण्डल का चार बार उल्लेख किया गया है।[4] हरिवाहन ने चन्द्रकान्तमणि निर्मित कुण्डल कानो मे पहने थे, जो नीति का उपदेश देने के लिए आये हुए बृहस्पति तथा शुक्र के समान जान पड़ते थे।[5] मेघवाहन ने बायें कान मे इन्द्रनीलमणि का कुण्डल पहना था।[6]

कर्णाभरण

कर्णाभरण का पाच प्रसगों मे उल्लेख है।[7] तारक ने पद्मरागमणि का कर्णाभरण पहना था।[8] गन्धर्वक ने इन्द्रनीलमणि युक्त कर्णाभरण धारण किये थे।[9] शुकचचु के आकार के पद्मरागमणि से अकुरित कर्णाभरण का उल्लेख मिलता है।[10] एक मणि मात्र से निर्मित कर्णाभरण का उल्लेख है।[11]

---

1 वेलग्नाग्निलप्तनाराचविलियमाननृपतिकाचतमुकुटानि . . . —वही, पृ 83

2 वही, पृ 74, 218

3 तारतरोच्चारेण गतिरभसविच्युतानामामाद्यामाद्य सोपानमणिफलकमाबद्धफलाना सीमन्तकालकारमाणिक्याना ..... —तिलकमजरी, पृ 158

4. वही, पृ 53, 90, 229, 311

5 नयमार्गमुपदेष्टुममरगुरुभार्गवाभ्यामिवोपगताभ्यामिन्दुमणिकुण्डलाभ्यामाश्रितोभयश्रवणम्, —तिलकमजरी, पृ 229

6 वामेनदोलायमानवितनेन्द्रनीलकुण्डलेन .. —वही, पृ 53

7 वही, पृ 48, 125, 164, 311, 403

8 आमक्तकर्णाभरणपद्मरागरागाम् .... —वही, पृ 125

9 इन्द्रनीलकर्णाभरणयो ... —वही, पृ 164

10 शुकचञ्चाकारकर्णाभरणपद्मरागरत्नाङ्कुरेण . . . . —वही, पृ 311

11 एकैकमणिपविनिकामात्र कर्णाभरण .. ... —वही, पृ 403

3. कर्णपूर

कर्णपूर का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। समरकेतु ने मोतियों का कर्णपूर पहना था।[1]

गले के आभूषण

गले के आभूषणों में हार निष्क, एकावली, प्रालम्ब, मुक्ताकलाप तथा कण्ठिका के उल्लेख हैं।

हार

तिलकमंजरी में हार का उल्लेख अनेकों बार आया है[2] यह समस्त अलंकारों में प्रधान है।[3] ज्वलनप्रभ ने जवाकुसुम की कांति को हरने वाला, नायकमणि युक्त मुक्ताहार पहना था।[4] गन्धर्वक के हार की छवि ऐसी जान पड़ती थी मानो वक्षःस्थल पर सूखे चन्दन का लेप किया गया हो।[5] तिलकमंजरी ने शिव के अट्टहास के समान श्वेत हार धारण किया था।[6] वैताढ्य पर्वत को उत्तर दिशा का हार कहा गया है[7] मलयसुन्दरी ने नाभिमण्डल को स्पर्श करने वाला हार पहना था।[8] बन्धुसुन्दरी द्वारा हाथ फैला-फैला कर वक्षःस्थल को पीटने से उसके मुक्ताहार के मोती टूट-टूट कर गिरने लगे।[9] एक प्रसंग में विशुद्ध मोतियों के हार का उल्लेख है।[10]

निष्क

यह स्वर्ण का आभूषण था, जिसे स्त्री तथा पुरुष दोनों ही गले में

1. कर्णपूरमौक्तिकस्तबकेन ...... —तिलकमंजरी, पृ. 100
2. वही, पृ. 22, 37, 43, 45, 54, 63, 100, 158, 160, 165, 233, 239, 247, 209, 396, 330, 404, 410, 411
3. वही, पृ. 22
4. वही, पृ. 37
5. शुष्कचन्दनांगरागसंदेह ... हारच्छविपटलेन छुरितोरःकपाटम्, —वही पृ. 165
6. हासमिव हारं हारमुरसा...... —वही पृ. 247
7. हारमिव वैश्रवणहरितः . —वही पृ. 239
8. नाभिचक्रचुम्बिनो हारनायकस्य........ —वही पृ. 160
9. वही पृ 309
10. तरलायमानतारहारच्छटाछोटितवक्षःस्थलैः.... —वही पृ. 233

पहनते थे।[1] द्वयाश्रयकाव्य मे बच्चे द्वारा भी निष्काभूषण के पहनने का उल्लेख है।[2]

एकावली

तिलकमजरी मे एकावली का दो बार उल्लेख हुआ है। मोतियो की एक लडी माला को एकावली कहते थे। समरकेतु ने नौ-युद्ध मे जाते समय नाभिपर्यन्त लटकती हुई बडे-बडे मोतियो की एकावली पहनी थी।[3] मेघवाहन द्वारा एकावली धारण करने का उल्लेख है।[4]

कण्ठिका

कण्ठिका का एक बार उल्लेख आया है। दिव्यायतन मे उत्कीर्ण प्रशस्ति की वर्णपक्ति सरस्वती के कण्ठ की मणिकण्ठिका सी जान पडती थी।[5]

प्रालम्ब

हरिवाहन घृत नाभिपर्यन्त लटकने वाले मुक्ताप्रालम्ब का उल्लेख किया गया है।[6] अटवी मे शबरी स्त्रिया हाथियो के मस्तकमणियो से शबलित गुजाफल के प्रालम्ब गूथ रही थी।[7] तिलकमजरी नाभिपर्यन्त लटकते हुए मणिप्रालम्बों को चेटी के गले से निकालकर शालभजिकाओ के कण्ठ मे बाध रही थी।[8] हर्षचरित मे पद्मराग तथा मरकत मणि मे गूथी गई प्रालम्बमाला का उल्लेख है।

6 मुक्ताकलाप

मुक्ताकलाप का दो बार उल्लेख किया गया है।[9]

---

1 स्थूलस्वच्छमुक्ताफलग्रथिता · नाभिचक्रचुम्बिनीमेकवालीं दधानो —तिलकमजरी, पृ 115

2 हेमचन्द्र, द्वयाश्रयकाव्यम् 8/10

3 सरस्वतीकण्ठमणिकण्ठिकानुकारिणीमिर्वर्ण " —वही, पृ 219

4 कनकनिष्कावृत्तकन्धर वणिजमपि —वही पृ 114

5 —वही, पृ 53

6 आनाभिलम्ब मौक्तिकप्रालम्बम् ··· —वही पृ 229

7 तिलकमजरी, पृ 200

8 बध्नती घनस्तनद्वन्द्वशालिनीनां ·· चेटीकण्ठतो हठादानाभिलम्बान्मणि-प्रालम्बान्, —वही पृ 364

9 आनाभिलम्ब कम्बुपरिमण्डलेन कण्ठनालेन मुक्ताकलाप कलयन्तीम्, —वही पृ 54 तथा 79

भुजा के आभूषण

भुजा के आभूषणों में केयूर तथा अंगद के नाम आये हैं।

अंगद

लक्ष्मी ने नीलमणिमय अंगद धारण किया था।[1]

केयूर

केयूर का बार बार उल्लेख है।[2] ज्वलनप्रभ ने पद्मराग जड़ित केयूर पहना था।[3] समरकेतु द्वारा भी पद्मरागखचित केयूर धारण किये जाने का उल्लेख है।[4]

कलाई के आभूषण

कलाई के आभूषणों में कंकण, वलय तथा कटक का उल्लेख है। गन्धर्वक ने दोनों हाथों में स्वर्ण के वलय पहने थे।[5] मलयसुन्दरी ने हीरों से जड़ित स्वर्ण-कंकण पहने थे।[6] अन्यत्र भी मणिवलय,[7] रत्नवलय,[8] कांचनवलय[9] का उल्लेख आया है। द्वीपान्तरों के निषादयियों ने काले लोहे के वलय धारण किये थे।[10] कटक का अन्यत्र भी उल्लेख है।[11] रत्नकटक तथा स्वर्ण-कटक का भी उल्लेख है।[12]

अंगुलियों के आभूषण

तिलकमंजरी में अंगूठी के लिए अंगुलीयक तथा ऊर्मिका ये दो शब्द आए हैं।

---

1. स्फुरत्सारनीलांगदम्, —वही पृ. 55
2. वही, पृ. 37, 101, 311, 404,
3. वही, पृ. 37
4. अतिग्रहुलकेयूरपद्मरागांशु.......। —वही पृ. 101
5. प्रकोष्ठहारकवलयवाचालस्य........ —तिलकमंजरी, पृ. 165
6. अविरलप्रत्युप्तवज्रोपलगणैःकनककंकणैः... .... —वही, पृ. 160
7. वही, पृ. 17, 330
8. वही, पृ. 54, 307
9. वही, पृ. 80, 356
10. काललोहकटकान्यपि .. .... —वही, पृ. 134
11. वही, पृ. 311, 404
12. विस्फुरद्रत्नकटककान्तं बाहुमिव क्षीरोदस्य दीर्घबाहुना सुवर्णकटकोद्भासितेन —वही, पृ. 276

उर्मिका

तिलकमंजरी ने मरकतमणि की उर्मिका धारण की थी।[1] एक अन्य स्थान पर रत्नोर्मिका का उल्लेख है।[2]

अगुलीयक

गन्धर्वक ने नीले, पीले तथा पाटल वर्ण के रत्नो से खचित अगुलीयक धारण की थी।[3] मलयसुन्दरी ने पद्मराग जडित अगूठी पहनी थी।[4] बालारुण नामक दिव्य रत्नागुलीयक का वर्णन किया गया है।[5] अन्यत्र भी अगुलीयक का वर्णन है।[6]

कटि के आभूषण

कटि के आभूषणो मे काची, मेखला, रसना तथा सारसन का उल्लेख है। ये शब्द समानार्थक रूप मे प्रयुक्त हुए हैं, यद्यपि इनमे परस्पर भेद था, किन्तु यहा इनका भेद ज्ञात नही होता। ऐसा जान पडता है कि मेखला डोरी युक्त होती थी, क्योकि मेखला गुण शब्द का उल्लेख आया है।[7] ज्वलनप्रभ ने पद्मराग तथा इन्द्रनील मणियो से खचित मेखला धारण की थी।[8] पृथ्वी को सात समुद्रो वाली रशना से युक्त कहा गया है।[9] रशना के लिए रसना तथा रशना दोनो शब्दो का प्रयोग किया गया है।[10] मलयसुन्दरी के जन्मोत्सव पर नृत्य करती हुई गणिकाओ की काचिया, मद से विचलित पादक्षेप के कारण क्षुभित हो रही थी।[11] तिलकमजरी ने मरकत, इन्द्रनील तथा कुरुविन्द मणियो से जडित काची

---

1. वही, पृ 247
2. वही, पृ 356
3. वही पृ 166
4. वही, पृ 160
5. तिलकमजरी, पृ 61
6. वही, पृ 18, 63, 164, 404
7. (क) विततमेखलागुणपिनद्धमच्छधवलम् .. .... —वही, पृ 54
8. (ख) मेखलागुणस्खलनविशृ ङ्खलेन... —वही, पृ 158
4. पद्मरागेन्द्रनीलखण्डखचितस्य मेखलादाम्न......—वही, पृ 36
9. सप्ताम्बुराशिरशनाकलापा काश्यपीम् . . —वही, पृ 16
10. वही, पृ 5, 16
11. वही, पृ 263

धारण की थी ।[1] सारसन का दो बार उल्लेख है ।[2] तीव्रता से नृत्य करती हुई मलयसुन्दरी की सारसन में से एक पद्मरागमणि उछलकर गिर गया था ।[3]

पैर के आभूषण

पैरों के आभूषणों में नूपुर, मंजीर तथा हंसक का उल्लेख है ।

नूपुर

नूपुरों की ध्वनि से आकृष्ट होकर मलयसुन्दरी का अनुसरण करने वाले विलास-दीघिका हंसों का उल्लेख आया है ।[4] वेताल के पहने हुए अस्थि नूपुरों का उल्लेख आया है ।[5] समरकेतु ने दिव्यायतन के समीप नूपुरों की मधुर झंकार सुनी थी ।[6] मणिनूपुरों का उल्लेख है ।[7] नूपुर का अन्यत्र भी उल्लेख है ।[8]

मंजीर

पैरों के दूसरे आभूषण मंजीर का एक बार उल्लेख है ।[9] यह तीव्रता से चलने पर बजता था ।

हंसक

हंसक का भी एक बार ही उल्लेख हुआ है ।[10]

चरणोर्मिका

पैरों की अंगुली में पहनने की अंगूठी, जिसे चरणोर्मिका कहते थे का भी उल्लेख आया है । मदिरावती ने रत्नखचित चरणोर्मिका पहनी थी ।[11]

---

1. अविरलविभाव्यमानमरकतेन्द्रनीलकुरुविन्दशकलया........कांचिलतया वलयित-विशालश्रोणि पुलिनम्........ —वही, पृ. 246
2. वही, पृ. 288, 371
3. नृत्यन्त्यास्तत्रातिरभसेन सारसनमध्यसद्मा समुच्छलित एष पद्मराग: । —वही, पृ. 288
4. तिलकमंजरी, पृ. 301
5. वही पृ. 46
6. वही पृ. 158
7. वही पृ. 160, 302
8. वही पृ. 76, 206, 341
9. हेलोत्तालचलनरणन्मुखरमंजीरया .... —वही पृ. 283
10. विलासिनीगमनमिव कलहंसकालापकृतशोभम्, —वही, पृ. 204
11. वही, पृ. 32

प्रसाधन

प्रसाधन की प्रवृति मनुष्य में स्वभावजन्य है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही अविकसित मानव में भी यह पायी गई है। जिनका सारा जीवन शिकार में ही व्यतीत हो जाता था, ऐसी जंगली जातियां भी शिकार से प्राप्त वस्तुओं से अपने शरीर को अलंकृत करती थी। जंगल में निवास करने वाली कन्याएं भी वन में प्राप्त होने वाली वनलताओं और पल्लवों से अपना शृंगार करती थी। शकुन्तला ने वृक्ष का वल्कल पहिने ही सम्राट दुष्यन्त के चित्त को आकृष्ट कर लिया था।[1]

प्राकृतिक रुचि के कारण मनुष्य का प्रसाधन सर्वप्रथम मनःसिला, सिन्दूर हरताल, अंजनादि प्राकृतिक वस्तुओं से प्रारम्भ में हुआ।[2] जैसे-जैसे मनुष्य की रुचि परिष्कृत होती गई, वैसे-वैसे ही प्रसाधन के नवीन साधन विकसित हुए तथा उसमें कलात्मकता तथा सुरुचि का समावेश हुआ तथा प्रसाधन एक कला बन गयी। इस कला में दक्ष स्त्री को सैरन्ध्री कहा जाता था। महाभारत में अज्ञातवास के समय द्रोपदी ने विराट भवन में सैरन्ध्री का ही कार्य किया था।[4] कादम्बरी में पत्रलेखा तथा तिलकमंजरी में चित्रलेखा आदि स्त्रियां इसी प्रसाधन कार्य तथा अन्य शृंगार कार्य के लिये पात्र रूप में वर्णित हैं। विचित्रवीर्य द्वारा चित्रलेखा के प्रसाधन कर्म की इस प्रकार से प्रशंसा की गयी है— तुम्हारे द्वारा प्रसन्न होकर निपुणता से शृंगार करने पर वृद्धा स्त्रियां भी नवयुवती के समान दिखाई देने लगती हैं, साधारण रूप से युक्त स्त्रियां भी अन्तःपुर की स्त्रियों के रूप को तिरस्कृत कर देती हैं तथा कुरूप स्त्रियां भी अप्सरा की तरह रूपवती हो जाती हैं।[5]

मल्लिनाथ ने मेघदूत की टीका[6] में पांच प्रकार के प्रसाधन या शृंगार बताये हैं—(1) कचधार्य-वेणी या केश रचना (2) देहधार्य शरीर का शृंगार

1 विद्यालंकार, अत्रिदेव प्राचीन भारत के प्रसाधन, पृ 19
2 वही, पृ. 20-21
3 सैरन्ध्री शिल्पकारिका, अमरकोश 2/6/18
4 महाभारत, विराट पर्व, 3/18/19
5. प्रसादपरया त्वया रचितचतुरप्रसाधना परिणतवयसोऽपिसद्यस्तरुणता प्रतिपद्यन्ते . ... . कुरूपा अप्यप्सरायन्ते स्त्रियः।
—तिलकमंजरी, पृ 268
6 कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम्।
चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च देशिकम्॥ —मेघदूत, मल्लिनाथ टीका

(3) परिधेय ओढ़ना या पहिनना–वस्त्रों की सजावट (4) विलेपन अनेक प्रकार के अंगराग, उबटन, तेल, इत्र आदि शरीर की सुन्दरता को बढ़ाने के लिए लगाना। इनके अतिरिक्त देश की भिन्नता या रुचि के अनुसार भी शृंगार कला प्रचलित थी' इसे दैशिक कहते थे।

अब हम तिलकमंजरी के संदर्भ में तत्कालीन प्रसाधन सामग्री, केशविन्यास तथा पुष्प—प्रसाधन का विवेचन करेंगे।

प्रसाधन सामग्री

तिलकमंजरी में निम्नलिखित प्रसाधन सामग्री का उल्लेख प्राप्त होता है।

(1) अगुरु (16), कालागुरु (8) असितागुरु (9) कृष्णागुरु (34)। कालागुरु से तिलक लगाने का उल्लेख किया गया है।[1] इसका प्रयोग आलेपन में सुगन्ध लाने के लिए होता है। धूम के रूप में इसका व्यवहार दुर्गन्ध और जन्तु-नाशक गुण के लिए किया जाता है।

मृगमद

कस्तुरी के अंगराग का उल्लेख किया गया है।[2]

गोशीर्षचन्दन

इसके अंगराग मलने का उल्लेख किया गया है।[3]

चन्दन

चन्दन के अंगराग का अनेकों बार उल्लेख आया है 12, 34, 36 56, 66, 79, 115, 180। कपूर से सुरभित चन्दन रस के अंगराग का उल्लेख है 105। कपूर तथा कस्तूरी मिश्रित चन्दन का, भोजन के पश्चात् उबटन किया जाता था 69।

हरिचन्दन 152, 257

कपूर व अगुरु को तुलसीकाष्ठ के साथ घिसकर हरिचन्दन बनाया जाता था। इसके अंगराग का उल्लेख है।

कुंकुम

इसका समस्त शरीर पर उद्वर्तन किया जाता था 178। कुंकुम के

---

1. उत्कलितकालागरुतिलकशोभम्...... —तिलकमंजरी पृ. 161
2. प्रत्यग्रमृगमदांगरागमलिनवपुषो...... —वही, पृ. 17
   कदाचिद्धौतमृगमदांगरागमनुरागजं...... —वही, पृ. 18
3. वही, पृ. 37, 217

अगराग का उल्लेख है 313 कुकुम द्रव से पैरो की सजावट भी की जाती थी। नवीन कुकुम द्रव से रगे हुए चरण कमलो के चिन्हो से काँची नगरी की सौधाग्र भूमियो पर पकज के उपहार व्यर्थ हो जाते थे 261।

7 हरिद्रा

द्रविड देश की स्त्रिया सायकालीन स्नान के पश्चात हल्दी का लेप करती थी (261)।

सिन्दूर

माग मे सिंदूर भरने का उल्लेख किया गया है। कुसुमशेखर अपने शत्रुओं की स्त्रियो की माग के सिन्दूर के लिए समीर के समान था 262।

अन्जन 10, 24, 213, कज्जल 27, 36, 46, 48, 54

पटवास 73

पिष्टातक 76

अलक्तक

अलक्तक का होठो पर लगाना वर्णित किया गया है ओष्ठमुद्रालक्तक, पृ 153।

यावक

आवक अर्थात् अलक्तक का होठो तथा पैरो मे सजाने का उल्लेख आता है 157, 201।

केश विन्यास

तिलकमजरी मे केशविन्यास सम्बन्धी प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। तिलकमजरी मे केशो के लिए अलक, कुन्तल, केश, कच, जटा, शिरोरुहचय, शिरसिजकलाप शब्द आये हैं। केशो को धोकर धूप से सुगन्धित कर सुखा लिया जाता था तथा तदनन्तर पुष्पो एव पत्तो आदि के द्वारा कलात्मक ढग से सजाया जाता। तिलकमजरी मे केश के संवारने के छ, प्रकारो का उल्लेख है—

अलक, केशपाश, कुन्तलकलाप, कबरी, वलि, मौलिबन्ध आदि।

अलक

अलक चूर्ण के द्वारा घु घराले बनाये गये बालो को कहते थे।[1] तिलकमजरी

1. अलकाश्चूर्णकुन्तल —अमरकोष, 2/6/96

में इस विन्यास के लिए अलकपद्धति,[1] अलकवल्लरी,[2] अलकलतादि[3] शब्दों का प्रयोग हुआ है। तिलकमंजरी के कपोलस्थल की पत्रांगुलि रचना ऐसी जान पड़ती थी मानों अलकपाल का स्वच्छ गण्डस्थलों पर प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो।[4] कुंचित अलकों का उल्लेख किया गया है।[5] गन्धर्वदत्ता के ललाट पर स्थित सूक्ष्म अलकवल्लरी की पंक्ति शत्रुवन्दियों के व्यजन-वायु से नृत्य करती थी।[6]

केशपाश

तिलकमंजरी में केशपाश का छः बार उल्लेख हुआ है।[7] केशपाश बालों के उस विन्यास को कहते थे, जिसमें बालों को इकट्ठा कर पुष्प पत्रादि से सजाकर बांध दिया जाता था। लक्ष्मी बायें हाथ से अपने केशपाश को बार-बार पीछे की ओर बांधने की कोशिश कर रही थी।[8] चित्र में तिलकमंजरी के बाल केशपाश विधि से संवारे गये थे।[9] ऋषभ की प्रतिमा के केशपाश को कृष्णागरु के द्रव से लिखित पत्रभंग अलंकरण के समान कहा गया है।[10] मालती पुष्पों की माला से ग्रथित केशपाश का उल्लेख किया गया है, जो ऐसा जान पड़ता था मानो यमुना के जल में गंगा की लहरें मिल गयी हों।[11]

कुन्तलकलाप

इस विधि के लिए कुन्तलकलाप[12] तथा केशकलाप[13] शब्द आये हैं।

---

1. तिलकमंजरी, पृ. 29, 312
2. वही, पृ. 32, 262
3. वही, पृ. 247
4. स्निग्धनीलालकलता इव छायागताः........—तिलकमंजरी, पृ. 247
5. संकुचितालकाः प्रधानापणाः प्रमदाललाटलेखाश्च, —वही, पृ. 260
6. वही, पृ. 262
7. वही, पृ. 54, 162, 214, 217, 293, 334
8. वामकरतलेन... ...कज्जलकूटकालं कालकूटमिव केशपाशं पुनः पुनः पृष्ठे बद्धुमामृशन्तीम्, —वही पृ. 54
9. वही, पृ. 162
10. वही, पृ. 217
11. न ताः सन्ति मांयतन्यो मालतीस्त्रजस्तमिस्रनीकाशे केशपाशे कीनाशानुजाजलस्रोतसीव त्रिस्रोतोवीचयः, —वही, पृ. 293
12. तिलकमंजरी, पृ. 202
13. वही, पृ. 209

कुन्तलदेश की स्त्रियों के कुन्तलकलाप की कालिमा से वनराजि की उपमा दी गयी है।[1]

कबरी

कबरी केश-रचना का दो बार उल्लेख है।[2] कबरी के लिए केशवेश शब्द भी आया है। शबरों के भय से सोने को भीतर रखकर तथा कसकर बांधे गये केशवेश वाले पथिक का उल्लेख किया गया है।[3]

वेणी

यह द्रविड स्त्रियों की विशेष केशरचना थी, जो पीठ पर झूलती रहती थी।[4]

मौलिबन्ध

मौलिबन्ध का दो बार उल्लेख है।[5] मेघवाहन का मौलिबन्ध हाथ से छूटकर कंधे पर गिर गया था।[6]

पुष्प प्रसाधन

तिलकमंजरी में पुष्प-प्रसाधनों का प्रचुर मात्रा में उल्लेख हुआ है। प्राचीन भारत में पुष्पों, पत्तों तथा मंजरियों से बालों तथा शरीर के अन्य अवयवों को सजाने की कोमल कला अत्यधिक विकसित थी। स्त्री तथा पुरुष दोनों पुष्प-पत्रों से शृंगार करते थे। तिलकमंजरी में पुष्प एवं पत्तों के निम्नलिखित आभूषणों का उल्लेख है।

शेखर

तिलकमंजरी में शेखर का 16 बार उल्लेख किया गया है।[7] बालों को संवारकर उसमें पुष्पों की माला बांधी जाती थी जिसे शेखर, शिरोमाला, कुसुमापीड गण्डमाल, मुण्डमालादि कहा जाता था। मालती पुष्पों से ग्रथित माला के

---

1 निरन्तरामिस्तरुणकुन्तलीकुन्तलकलापकान्तिभिः . —वही, पृ. 202
2 तिमिरभरमिव क्षेप्तुकामा कबर्याम्, —वही, पृ 261
3 त्रयी भक्तेनेव गाढाचितहिरण्यगर्भकेशवेशेन दशिकजनेन . —वही, पृ, 200
4. पृष्ठप्रेङ्खद्वेणीना . ... —वही, पृ 261
5. वही, पृ 53, 233
6 करविमुक्तमौलिबन्धनिरालम्बस्कन्धरे .. —वही, पृ 53
7 तिलकमंजरी, पृ. 34, 37, 38 73, 79, 105, 107, 115, 125, 152, 165, ,178, 198 232, 237, 377

शेखर का उल्लेख मिलता है।[1] मेघवाहन ने मालतीमाला से ग्रथित शेखर लक्ष्मी की प्रतिमा को पहनाया था।[2] ज्वलनप्रभ ने मन्दार की कलियों से दन्तुरित पारिजात पुष्पों का शेखर बांधा था।[3] समरकेतु ने श्वेत पुष्पों का शेखर बांधा था।[4] मल्लिका की कलियों से बनाये गये शेखर का उल्लेख है।[5] गन्धर्वक ने अपने केशों में विचकिल पुष्पों की माला बांधी थी।[6] अन्यत्र सन्तानक, नमेरू तथा मन्दार के शेखरों का भी उल्लेख किया गया है।[7] इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि बालों में पुष्प की माला सजावट करने का उन दिनों आम प्रचलन था। स्त्री तथा पुरुष दोनों बालों को पुष्पों से सजाते थे।

अवतंस

पुष्पों-पत्तों आदि को कान में पहनकर अवतंस बनाया जाता था। तिलकमंजरी में अनेक प्रकार के अवतंसों का उल्लेख है।[8] लक्ष्मी को केतकी के पत्ते का अवतंस पहनाया गया था।[9] अन्यत्र मंदारमंजरी के अवतंस का उल्लेख है।[10] संतानक वृक्ष के प्रवाल के अवतंस का वर्णन किया गया है।[11] पल्लवावतंस के अन्य उल्लेख भी मिलते हैं।[12] शैवल प्रवाल का भी अवतंस बनाकर कानों में

---

1. (क) मालतीमुकुलगण्डमालम् —वही पृ. 79
   (ख) विकचमालतीदामरचितशेखरो··· ···· —वही पृ. 198
   (ग) आबद्धमालतीकुसुमशेखर········ —वही, पृ. 377
2. उदारमालतीदामग्रथितशेखराम् —वही पृ. 34
3. मन्दारकलिकाभिरन्तरान्तरा दन्तुरितेन··· पारिजातकुसुमशेखरेण विराजमानम् —वही पृ. 38
4. सितकुसुमग्रथितशेखर···· —वही पृ. 115
5. वही पृ. 105, 107, 178, 237
6. विचकिलमालभारिणा केशभारेण भ्राजमानं······· वही पृ. 165
7. तिलकमंजरी, पृ. 152
8. वही, पृ. 6, 34, 37, 53, 54, 73, 107, 211, 228, 270, 233, 311, 368
9. श्रवणशिखरावतंसितकेतकगर्भपत्राम्, —वही, पृ. 34
10. मन्दारमञ्जर्या समाश्रितैकश्रवणाम्, —वही पृ. 54
11. अवतंसलालसभुजंग भामिनी···· —वही पृ. 211
12. आरोप्य विलासावतंस पल्लवं श्रवसि, —वही पृ. 228,270

पहना जाता था।[1] पुरुषों द्वारा कानो मे कमल पहनने के उल्लेख भी मिलते हैं।[2]

कर्णपूर

कर्णपूर का तिलकमजरी मे पाच बार उल्लेख आया है।[3] किरातस्त्रिया कर्णिकार का कर्णपूर बनाती थी।[5] हरिवाहन ने शिरीषपुष्प का कर्णपूर धारण किया था।[6] चन्द्रमा को चम्पक पुष्प के कर्णपूर के समान कहा गया है।[7] शुक सदृश नीलवर्ण के आर्द्र शैवल प्रवाल के कर्णपूर का उल्लेख किया गया है।[8] अन्यत्र लवगपल्लव के कर्णपूर का वर्णन किया गया है, जिसे स्त्रिया अपने नाखूनो की कोरा से चुनती थी।[9]

दन्तपत्र

तिलकमजरी ने कानो मे कुमुदिनी कन्द के दन्तपत्र पहने थे।[10]

प्रालम्ब

हरिवाहन ने धूलीकदम्ब पुष्पो का प्रालम्ब पहना था।[11] प्रालम्ब घुटनो तक लटकने वाली माला को कहते थे। माला सीधी गले मे न पहनकर कधे से कमर की ओर तिरछी भी पहनी जाती थी, जिसे वैकक्ष्यकस्रगदाम कहा जाता था।[12] तिलकमजरी ने चम्पक की वैकक्ष्यकमाला धारण की थी।[13]

---

1 शशिहरिणहरितरोचिका शैवलप्रवालेन कल्पितकर्णावतस '' —वही पृ 107 तथा 311
2 नाकमन्दाकिनीनीलोत्पलेन चुम्बितैकश्रवणपार्श्वम्, —वही, पृ 37
3 आन्दोलितश्रवणोत्पलगलत्परागपांशुल —वही पृ 233
4 वही, पृ 105, 261, 268, 297 353
5. किरातकामिनीकर्णपूरोपयुक्तकर्णिकारे —वही पृ 297
6. शिरीषतरकुसुमकल्पितकर्णपूर'' —तिलकमजरी, पृ 105
7 दलितचम्पककर्णपूरमनुकरोति, —वही, पृ 261
8. शुकागनीलसजलशैवलप्रवालकल्पितकर्णपूरा —वही, पृ 268
9 कर्णपूराशया करनखाग्रैर्लवगपल्लवानगृहीत्, '' —वही, पृ 353
10 श्रवणपाशदोलायमानकुमुदिनीकन्ददन्तपत्रा —वही पृ 368
11 धूलीकदम्बप्रालम्ब ' —वही, पृ 105
12 वही, पृ 36
13 द्विगुणितप्रलम्बचम्पकप्रालम्बवैकक्ष्यका —वही, पृ 247

मेखला

जलमण्डप की वाररमणियों ने बकुल पुष्पों की माला की मेखलाएं धारण की थी ।[1]

रसना

तिलकमंजरी ने नीलकमलों की माला पिरोकर रसना के स्थान पर बांध ली थी ।[2]

नूपुर

कैरव की कलियों को मण्डलित करके नूपुर के स्थान पर पहने जाने का उल्लेख किया गया है ।[3]

मृणाल के आभूषण

मृणाल के हार, केयूर तथा कटक बनाकर पहने जाते थे ।[4] ये मृणाल के आभूषण ग्रीष्म ऋतु में शीतलता के लिए धारण किये जाते थे ।[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलकमंजरी कालीन भारत में स्त्रियां तथा पुरुष न केवल आभूषण और सजीले वस्त्रों से ही अपना शृंगार करते थे, अपितु अपने शरीर को स्नान से स्वच्छ करके विभिन्न प्रकार के अंगरागों से सुगन्धित कर, नाना प्रकार की केश रचनाओं से अपने केशों को संवारते तथा विभिन्न ऋतुओं में खिलने वाले पुष्पों से अपने शरीर के विभिन्न अवयवों का प्रसाधन करते थे । स्त्रियां इन कोमल कलाओं में विशेष निपुण हुआ करती थीं ।

पशु–पक्षी वर्ग

तिलकमंजरी में विभिन्न प्रकार के 80 पशु, पक्षी तथा जलचरों का वर्णन आया है । कहीं उपमान के रूप में, कहीं प्रकृति-वर्णन के प्रसंग में इनका उल्लेख आया है । तिलकमंजरी में 35 पक्षी, 22 पशु तथा 24 जलचर व सरीसृप उपवर्णित किये गये हैं । समुद्र यात्रा का विस्तृत वर्णन होने से इसमें अनेक ऐसे जलचरों का वर्णन किया गया है, जो संस्कृत साहित्य के अन्य ग्रन्थों में दुर्लभ हैं ।

---

1. वही, पृ. 107
2. जघनमंडलमद्धनीरन्ध्रकुवलयदाम रसनागुणा.... —तिलकमंजरी, पृ. 368
3. नूपुरस्थानसंदानिततसनिद्रकैरवमुकुलमण्डलीका.......—वही, पृ. 368
4. कण्ठभुजकराग्रादिभि....हारकेयूर कटकप्रभृत्याभारणजालं माणालमुद्वहन्ती, —वही पृ. 368
5. वही, पृ. 180

तिमि, तिमिंगल, शकुल, शफरादि प्रकार की विभिन्न मत्स्यों, दन्दशूक, दुन्दुभ जल-सर्पो सिंहमकर, करियादस, जलरकु जल-पशुओ के दुर्लभ उल्लेख इसमे मिलते हैं। इसी प्रकार मारुदण्ड तथा मद्गु आदि जलीय पक्षियों का भी वर्णन किया गया है। इन पशु-पक्षियो के भोजन तथा उनके स्वाभाविक क्रिया-कलापो का भी वर्णन किया गया है। इनमे पालतू तथा हिंस्र दोनो ही प्रकार के पशु तथा पक्षियो का भी उल्लेख किया गया है। दात्यूह नामक पक्षी रति-गृहों में पाला जाता था, चकोर, शुक, सारिका, क्रौंच, कपोत राजभवन के आहारमण्डप मे विषाक्त भोजन के परीक्षणार्थ पाले जाते थे।

पक्षी-वर्ग

(1) उलूक 151, 351 इसे दिन म दिखाई नही पड़ता,[1] अत इसे दिनान्धवयस भी कहा जाता है 238। इसका अपर नाम कौशिक भी है 238।

(2) कपिजल 211 पक्षी विशेष

(3) कपोत 211,222 पारापत 158,215,220,359,364

(4) कलहस 22, 158, 204, 253, 301, 341, 361। कलहसो द्वारा नूपुरो की ध्वनि का अनुसरण किया जाना वर्णित किया गया है। 341

(5) कलविक 67,126 चटक—330। इसका वर्ण कृष्ण है 126

(6) कादम्ब 89,105,116,391

(7) कारण्डव 181, 425 यह कौवे के समान काले पैरो वाले बतख विशेष का नाम है।[2]

(8) कुक्कुट 210 कृकवाकु 152।

(9) कुरर 116,181,261,425।

(10) कोकिल 69,126,211,261,270,297। कलकण्ठ 106,180, 221,351। पिक 135,297,353। परभृत 314

(11) क्रौच 8, 69, 120, 210, 253 ,401 क्रौंचयुगल को परस्पर कमलकेसर के ग्रास देते हुए वर्णित किया गया है।[3] क्रौंच पक्षी विषाक्त अन्न को देखकर मदमत्त हो जाता है।[4]

---

1. मुकुलितोलूकचक्षुरालोकसम्पदि, —तिलकमंजरी, पृ 151
2. अमरकोष 2/5/34
3. परस्परवितीर्णतामरसकेसरकवलानि, —तिलकमजरी, पृ 210
4. केषाचित्क्रौंचवयसामिव मदावहेषु, —वही, पृ 410

(12) खंजरीट—खंजन पक्षी विशेष 211

(13) खंगी—शरभपक्षी विशेष। यह रात्रि में चरण ऊपर रखता है।[1]

(14) गरुड़ 363 विहगपति 173

(15) चक्रवाक 55,181,188,,253,302,358,386,401, 408 इन्हें कमलनाल अत्यन्त प्रिय हैं। चक्रवाकों को लामंजक तृण भक्षण करते हुए भी बताया गया है।[2] इनका वर्णन प्रायः प्रेमी युगल के रूप में होता है कवि समय के अनुसार ये रात्रि में वियुक्त हो जाते हैं। इसके अपर नाम कोक 55,245, 311, 359 चक्र 237, 351 तथा रथांग 3, 207, 238 हैं।

(16) चकोर 69, 73, 211, 218, 296, 401। विषाक्त भोजन की परीक्षा के लिए इसे राजभवन के आहार-मण्डप में पाले जाने का उल्लेख किया गया है 69। चकोर को चन्द्रमा की किरणों का पान करते हुए वर्णित किया गया है।[3]

(17) चातक 180, 210, 215।

(18) दात्यूह 211, 237 यह धूमिल रंग के जलकौवे का नाम है। इसे रतिगृहों में पाले जाने का उल्लेख किया गया है।[4]

(19) बक 204 वक्रांग 181 अवाकचंचु 210 इसे शकुल मत्स्य प्रिय है।[5]

(20) बलाका 154, 204 इसके श्वेत रंग से उपमा दी जाती है।[6]

(21) मारुण्ड 138, 147, 235। यह जलीय वृक्षों पर निवास करने वाला पक्षी विशेष है।

(22) मद्गु–जलवायस 126, 204,। इनका भोजन मछलियां हैं।[7]

(23) मयूर 25, 106, 141, 202, 408, 426, कलापी 87, 215, 408, शिखण्डी 17, 106, 309,। नीलकण्ठ 154, 240, 351.। शितकण्ठ 227। बर्हिण 329, 364, 409। शिखि 211, 212, 233,

---

1. खड्गिनामूर्ध्वचरणस्थिति···· —वही पृ. 351
2. चक्रवाकचंचुगलितार्धजग्धलामंजकजटालेन, तिलकमंजरी, प. 210
3. अस्ताचलचकोरकामिनीमन्दमन्दाचान्तविच्छाय विरसचन्द्रिके,—वही, प. 73
4. विदार्यूपतद्भिरो रतिगृहाः, —वही, प. 237
5. शकुलजिघृक्षयान्तरिक्षाद्विनावचंचुकृतजलप्रपातानि···· – वही, प 210
6. बलाकायमानपवनलोलसितपताकम्···· वही, प. 154
7. प्रभूतमत्स्याबहारतृष्णया........ तिलकमंजरी, पृ,126

418, । प्रचलाकी 210 हस्तताल द्वारा मयूरो को नचाये जाने का उल्लेख मिलता है ।[1]

(24) मल्लिकाक्ष 209, 212, 408 सफेद शरीर तथा धूमिल रग के चोच तथा पैरो वाला हस विशेष ।

(25) सारस 116, 142, 158, 207 इसकी ध्वनि को केङ्कार कहा गया है ।[2]

(26) सारिका 65, 68, 69, 211, 262, 401 ये अन्त पुर में पिजरो मे पाली जाती थी 65, 68 इनको आहार-मडप मे विपाक्त भोजन के परिक्षण के लिए रखा जाता था 69 ।

(27) शरीर—आडी पक्षी विशेष 204 ।

(28) शुक 65, 68, 69, 97, 106, 164, 194, 200, 215, 218, 293, 296, 302, 311, 349, 374, 396, 401 इसे भी विपाक्त भोजन की परिक्षा के लिए आहारमडप मे रखे जाने का उल्लेख किया गया है 69 ।

(29) श्येन –बाज 215 यह मासाहारी पक्षी है ।

(30) हस 106, 120, 141, 177, 245, 257, 262, 301, 319, 371, 426 ।

(31) हारीत 152, 160, 229, यह हरे रग का पक्षी है ।[3]

(32) राजहस 159, 179, 203, 207, 232 यह सफेद शरीर तथा लाल रंग के पैर वाला हस विशेष है राजहसी 8, 58, 232 ।

(33) वायस 68 । काक—126 ।

पशु–वर्ग

(1) कपि 4, 118, 152, 211 । वानर 135, 152, 202, 240 हरि 212 शाखामृग 200 ।

(2) कस्तूरीमृग 178, 236 गन्धमृग 210 । कस्तूरिकाकुरङ्ग 211

(3) केसरी केसरि—14, 79, 84, 409, 426 कण्ठीरव 200

1. नर्तयन्तीचलितवाचालवलयश्रेणिना. —वही, पृ 364
2. सरलीकृतकेङ्कारविरुतिमि —वही, पृ 207
3 हारीतहरितप्रभम्... —तिलकमजरी, पृ 229

मृगपति 183,398 । मृगाराति 88, 240 मृगाधिप 208 । सिंह 5,152,204, 400 । हरिवाहन को सिंहशावक के समान बलशाली उपवर्णित किया गया है ।[1] मृगेन्द्र 215, 217 ।

(4) कोल 200, 210, 233, 238 । वराह 115, 116, 122, 183, 184, 208 पोत्रि 235 । इसका भोजन कसेरू नामक तृण विशेष बताया गया है ।[2] इनकी पङ्कक्रीड़ा का वर्णन किया गया है 233, 208 ।

(5) कौलेयक 117—कुक्कर । सारमेय 200 ।

(6) क्रमेलक 118 करभ 202

(7) गज 80, 84, 86, 87, 124, 181, 197, 209, 115, 240, 244, 386, करि 15, 83, 86, 87, 89, 95, 97, 118, 182, 184, 200, 209, 243, 246, 386 । द्विरद 93, 118, 152, 184, 202, 355, 366, 392, 409 । दन्ती 5, 119, 184, 185, 249, 251 । हस्ती 201 । वारण 68, 74, 184, 186, 216, 241, 243, 244, 248, 323, 348, 367, 387, 420 । सिन्धुर 5, 61, 105, 426 । कुम्भी 16 । अनेकप 15, 92, 233 । करेणु 84, 88, 118, 206, 291, 330, 323 । सामाज । द्विप 83, 83, 87, 189, 257, 363, 408 । इभ 84, 87, 116, 202, 275 । मातंग 84, 89, 406 । नाग 91, 216, 260 मृग 189 । करटी 190, 241 । स्तम्बेरम् 234 । आरण्यक 235 । कुंजर 243 । वेगदण्ड 233, 387 ।

(8) चमर 211, 183 ।

(9) ऋक्ष 183,234, । अच्छभल्ल 200 ।

(10) तुरंग 80, 84, 85, 89, 97, 188, 198, 323, 388, 405 । तुरग 61, 85, 117, 188, 207, 389, 419, । अश्व 85, 86, 87, 89, 143, 187, 201, 207, 248, 418, 426 । वाजि–83, 87, 89, 119, 124, 152, 184, 187, 419 । सप्ति 82, 88, 207 । हरित् 66 । हय 68, 86, । रथ्यः 93, । वाह – 242, 248 ।

(11) धेनु–58 । कामधेनु नामक स्वर्गीय गौ का वर्णन किया गया है 58,

---

1. केसरिकिशोरस्येव........ —वही, पृ. 79
2. दृश्यमानार्धचर्वितकसेरुग्रन्थिकथितकोलयूथप्रस्थानेन............ —तिलकमंजरी, पृ.210

गौ 3, 117, रोहिणी 150। तर्णक गाय के वत्स के लिए प्रयुक्त हुआ है 64। गवय 234, वन्य गौ के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(12) महिष 124, 134, 182, 183, 240, 409।

(13) मेष 150

(14) मार्जार—112।

(15) मूषिका—112

(16) मृग—73, 135, 175, 138, 122, 165, 217, 235, 253, 256, 333, 395। हरिण 209, 222। सारंग—200। एण 135, एणक 182। कृष्णसार 277।

(17) सौरभेय—118। अनुडुह्—118 वृषभ—119 वृष 124, 150।

(18) शरभ 116, 184, 200 मृग विशेष का नाम है।

(19) शिवा—शृगाली 87, शिवाफेत्कारडामर।

(20) रासभ—46, 112। वैताल के पैरों के नखों की कांति को गर्दभतुण्ड के समान धूमरित कहा गया है।[1]

(21) व्याघ्र 2, 51। इसे अपने पराक्रम से अर्जित आहार का भक्षण करने वाला पशु कहा गया है।[2]

शार्दूल—47, 116। द्विपि 183, 200, 351।

(22) वेसर—85 अश्वतर—117।

जलचर एवं सरीसृप तथा अन्य

1 अजगर—47, 200, 239, 409। नीचे सोये हुए दृप्त अजगरों के नि श्वास से वृक्ष के तने के हिलने का वर्णन किया गया है।[3]

2 उर्णनाभ—मकड़ी 237।

3 कुलीर—259। केकड़ा

4 कुम्भीर—8 नक्र 145, 146, 269 जलचर विशेष।

---

1 रासभग्रीवधूसर नखप्रभाविसरम्। —तिलकमजरी, पृ 51

2 व्याघ्राणामिवात्मपराक्रमभुजविक्रमोपक्रीतमामिषमाहारम्, —वही पृ 46

3 अध सुप्तदृप्ताजगरनि श्वासनर्तितमहातरुस्तम्बया .. .. तिलकमजरी, पृ 200

5. कुर्म—15 122, 139 मकठ—121, 145, 222।

6. गोरखर—गिलहरी 200।

7. ग्राह:—घड़ियाल जलजन्तुविशेष 139, 146।

8. जलरङ्कु,— जलीयमृग विशेष 183, 210, 425।

9. जलवारण—121, 138। करियादस—130।

10. जलौक—जोंक 239। गन्दे रुधिर को चूस कर निकालने के लिए जलौक का प्रयोग किया जाता था।[1]

11. तिमि—15, 122, 204, 238 शतयोजन बृहदाकार मत्स्य विशेष।

12. तिमिङ्गिल—139, 145। इसे सागर के मानदण्ड के समान कहा गया है।[2]

(13) दर्दुर-मेंढ़क 180, 234, मेक 117। प्लवक- 140, 180, 234।

(14) दन्दशूक—जलसर्पविशेष 146, 376।

(15) दुन्दुभ-जलसर्प विशेष 130।

(16) नकुल-2

(17) भुजङ्ग—58,215, 283। पन्नग-52, 122 भुजंग-48। अहि: 2, 86, 88, 205। सर्प- 2, 47, 48, 122, 145,। उरग—6, 57, 85 126,। विषधर-41, 48। आशीविष—41, 25, 58, 192। द्विजिह्व: 2। पृदाकु—2 B4 भोगी—320।

(18) मकर-8, 116, 126, 130, 138, 145, 204 256, 269 276, 303,।

(19) मत्स्य-116, विसारी—89, 122, 146,। मीन—203, 259, 283।

(20) सरीसृप—गिरगिट 47।

(21) सिंहमकर— जलीयजन्तु विशेष 145।

(22) शकुल-मत्स्य विशेष 146, 210

---

1. दुष्टरक्तापकर्षणार्थमायोजितजलौकैः.............. —वही, पृ. 239
2. विदारितगिरिकन्दराकारतुण्डो मानदण्ड इव सागरस्य, —वही पृ. 145

(23) शफर—मत्स्य विशेष 120, 126,156, ।

नयनविक्षेपो की उपमा शफर मत्स्य से दी जाती । तिलकमजरी के नयन युगलो को शफर द्वन्द्व की उपमा दी गयी है[1]

(24) शिशुमार—जलीयजन्तुविशे 145 ।

वनस्पति–वर्ग

तिलकमजरी से वनस्पति-विज्ञान सम्बन्धी प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। तिलकमजरी वह क्रीडोद्यान है, जिसमे कही पुष्प मुस्करा रहे हैं, कही फल अपना रस बिखेर रहे हैं, तो कही लताए अपनी जम्भाइया ले रही हैं, कही औषधिया जगमगा रही हैं, तो कही कलम की सौरभ वायु को सुरभित कर रही है। अपने इस प्रकृति प्रेम के कारण ही धनपाल ने अपनी नायिका का नाम भी तिलकमजरी (तिलक नामक पुष्प वृक्ष की मजरी) रखा है तथा नायिका के नाम के आधार पर ही ग्रन्थ का नाम रखा गया है।

तिलकमजरी मे कुल मिलाकर 132 प्रकार की वनस्पतियों का उल्लेख आया है, जिनमे 88 वृक्षो के नाम हैं, 43 पुष्प वृक्ष हैं, 17 फल वृक्ष एव 28 प्रकार के अन्य वृक्ष हैं। वृक्षो के अतिरिक्त 22 प्रकार की लताओ का वर्णन है। 22 प्रकार की वनस्पतियो, जिनमे धान्य अनेक प्रकार के तृण तथा औषधियो आदि के नाम हैं। इन सबका आगे क्रमशः विस्तार स वर्णन किया जा रहा है।

वृक्ष

पुष्प-वृक्ष

1 अङ्कोल्ल—नीहार के समान धवल पुष्प नीहारधवलाङ्कोल्लधूलिपटल-संपादितदिगङ्गनांशुके 297 ।

2 अक्ष—विभीतक वृक्ष (24,212) । भूतपादप (200) इसे भूतपादप भी कहते हैं अमरकोश–2,4,58 ।

(3) अलक—247 ।

(4) अगस्त्य—370 यह श्वेत-रक्त वर्ण का पुष्प है, जो आकृति मे टेढा होता है।[2]

(5) अशोक—125,135,159,165,166,250,297,301,305,305

1. आयतस्फारधवलोदरशोभिशफरद्वन्द्वामिव,

—तिलकमजरी, प्र 247

2. अग्रवाल. वासुदेवशरण; कादम्बरी—एक सास्कृतिक अध्ययन पृ. 233

अशोक वृक्ष के सुन्दर स्त्री के पाद-प्रहार से कुसुमित होने की मान्यता है असंपादितपादप्रहृतिदोहदेष्वशोकशाखिषु पृ. 301। रक्ताशोक-211,214,246,252 262,300,301

(6) उदुम्बर—गूलर वृक्ष 397।

(7) कमल—1,24,37, 54,162,177, 180,182,205 ,229,252, 266,301,324,256,390। सरोज-6,11,76। पद्म-6,9,256, पंकज-7, 12,77,153,221,214,376। पुष्कर-75,202। उत्पल-107। पुण्डरीक-54,73,165। अरविन्द-73। सरसिज-232। अम्बुज-54। वारिरुह-162 जलरुह-359। अम्भोज-166। वारिज-345। सरोरुह-254। पंकेरुह-209। नलिन-248,296। नीरज-256,387। राजीव-207। शतपत्र-251,228 161। अम्भोरुह-7,261। अब्जिनी-54,179,229। अम्बुरुहिणी-66। अम्भोजिनी-22,391। नलिनी-153,162,204,380। कमलिनी-159,181, 205,311,338,385। पद्मिनी-55,67,203,213। सरोजिनी-368। पुटकिनी-207,305,। बिसिनी-17,418। तामरस-58,101,264। रक्तोत्पल 18,204। कोकनद-55। कुवलय-100, 120,180,229,254,368। इन्दीवर-174,198,204,248। नीलोत्पल-37,232,253।

(8) कल्पवृक्ष—पंचदेववृक्षों में से एक। 41,42,57,152,153,169, 216,241,262,266,300,301,372।

(9) कर्णिकार—152,297। कठचम्पा नामक पुष्प-वृक्ष।

(10) कांचनार—238,297,370।

(11) किकिरात—297

(12) कुन्द—श्वेत पुष्प विशेष 113,153,371।

कुन्द पुष्प से श्वेतातपत्र की उपमा दी गई है। कुन्दधवलातपत्रिकाभि--- 153। स्मितकांति को कुन्द पुष्प के समान स्वच्छ कहा गया है।-कुन्दनिर्मला ते स्मितद्युतिः 113 दन्तपत्र-161।

(13) कुटज—गिरिमल्लिका नामक सुगन्धित पुष्प 180, 370।

(14) कुरवक—297

(15) कुमुद—एक प्रकार का श्वेत पुष्प। 12, 69, 174, 253, 264, 92, 94,68, 180, 222, 229, 204, 205, 251, 319, 324, 338, 356,। कुमुदिनी-311, 368, 417, 419। करव-198, 204, 205।

(16) केतक—34, 210, 251। केतकी-32, 179, 105, 304,। कण्टकित पुष्प विशेष केवड़ा।

(17) चम्पक—134, 102, 159, 166, 165, 251, 247, 260 304, 271, 297।

(18) जपा—11, 37, 214। रक्त पुष्प विशेष।

(19) जाति—260।

(20) मालती—3, 34, 56, 175, 198, 293, 125, 297, 79, 377।

(21) तगर—211, पिण्डीतगर 360।

(22) तमाल—24, 105, 120, 126, 166, 168, 165, 250, 260, 212, 351, 354। तापिच्छ 93।

(23) ताली—166, 165, 211, 250।

(24) तिलक—102, 134, 161, 166, 250, 262, 304, 369

(25) धव—221, । धातकी 409। एक प्रकार रक्त का पुष्प।

(26) धूलीकदम्ब—105, 395।

(27) नमेरु—152, 211, 241।

(28) नीप—211। कदम्ब-179, 217, 391

(29) पलाश—214, 257, । किंशुक-229, 29८। रक्त पुष्प विशेष।

(30) पाटल—160। रक्त पुष्प विशेष।

(31) पारिजात—देववृक्ष विशेष—54, 57, 38, 100, 211, 217,

(32) बकुल—211, 135, 107, 297, 301, 324। विलासिनी के मुख के मद के सेक से बकुल का विकसित होना माना गया है (विलासिनीवदन-सरससेकविकासितबकुले 297। अनाहितसरसगण्डूषसेकेषु बकुलखण्डेषु-301।

(33) बन्धुजीवक—37

(34) बन्धूक—रक्त पुष्प विशेष 107, 152, 215, 247।

(35) मन्दार—पचदेववृक्षो मे से एक। 54, 135, 152, 205, 211, 297, 405।

(36) मधूक (मधु)—211, महुआ पुष्प वृक्ष।

(37) मुचुकुन्द—297।

(38) सप्तच्छद—शरदऋतु मे खिलने वाला श्वेत पुष्प विशेष 6, 115, 211, 183।

(39) सन्तानक—57, 152, 211, देववृक्ष विशेष

(40) सिन्दुवार—297

(41) शिरीष—105, 106, 315, 338।

(42) हरिचन्दन—देववृक्ष विशेष 405

(43) रोध्र—211

(44) विचकिल—52, 297।

वृक्ष (फल)

(1) आमलक—67, 234। आमलकीफल 43, 125, 255। पके आंवलों की उपमा मोटे-मोटे मोतियों से दी जाती है 43। आंवला स्नानोपरान्त सिर में लगाया जाता था। 67। तिरछे गिरे हुए आंवलों से वनभूमि तिलकित सी हो रही थी - निपतितमिरश्चीनामलकतिलकितक्षितितलाभिः–234।

(2) आम्र—97, 297। चूत–77, 211, 215, 135, 163, 194। सहकार–61, 106, 135, 261, 270, 297, 301, 370, 405।

(3) इक्षु—15, 119, 304 गन्ना
पुन्ड्रेक्षु—40, 182, 304, विशेष प्रकार का गन्ना।

(4) कक्कोलक—210।

(5) कदली—28, 106, 137, 212, 248, 276, 241, 260, 227, 305, 311 रम्भा–9, 164, 213। उरुदण्ड की उपमा रम्भा स्तम्भ से दी जाती है 164। राजकदली–211।

(6) कपित्थ—305। कैंथ नामक फल।

(7) किंपाक—एक प्रकार का विषैला फल। मलयसुन्दरी ने आत्महत्या करने के विचार से किंपाक वृक्ष का फल खा लिया था 334।

(8) जम्बीर—211। जम्बीरी नींबू

(9) जल-जम्बू—105, 151

(10) दाडिमी—211, 215, 238, 2370। कारक—211।

(11) नाग—210, 370।

(12) नारंग—210, 260, 305।

(13) नारिकेल—नारियल 211, 137, 305।

(14) पनस— कटहल 137, 200, 211, 260।

(15) पिण्ड—खर्जूर–137।
(16) मातुलिंग 210, 305।
(17) राजादन—खिरनी 370।

अन्य वृक्ष

(1) अलक—247।
(2) अश्वत्थ—66 पीपल का पेड
(3) अर्जुन— 199, 369, 372 एक प्रकार का काष्ठ वृक्ष विशेष।
(4) अगरू—303। कृष्णागरू– 161, 182, 211।
(5) उलप—236।
(6) कर्पूर—140 281।
(7) खदिर वृक्ष—कत्था, खैर वृक्ष 188, 304
(8) कतक—205, 261, इसका फल जल के मल को हरने वाला कहा गया है [कतकविटपिनामनारत गन्दद्भिः फलै प्रशमितपकोदयानि-261।
(9) क्रमुक—261। पूगतरू–203, 211, 166, 165
पूगीफल—133, 261। राजलाली 135।
(10) चन्दन 41, 202 ,281, 303, 369, 250, 133। श्रीखण्ड–140,370।
(11) करज—199।
(12) ताल—102, 203, 210, 240, 261। ताड-पत्र का पेड ताल पत्र 108, ताडीतरू–136
(13) तिन्दुक—397। तेंदु वृक्ष
(14) धूम्रिकावृक्ष—शिशपा वृक्ष–145
(15) न्यग्रोध—381 वट—66, 117।
(16) प्लक्ष—397 पाकड वृक्ष
(17) पिचुमन्द—397
(18) प्रियाल—200 चिरोजी का पेड
(19) वाण—89 नीलझिण्टी नामक वृक्ष
(20) भूर्ज—234 भोज पत्र। जर्जर भोजपत्रों की छालों के समूह के छितराने से अटवी का मार्ग सुगम हो गया था पर्यस्तजर्जरभूर्ज....234।
(21) सरल—199, 372 एक प्रकार का काष्ठ वृक्ष
(22) सर्ज 199। साल 372 –-शाल का सखुआ वृक्ष
(23) श्रीवृक्ष—विल्व वृक्ष 39

(24) हरिद्रा—260
(25) हरित—297
(26) यमलताल—46
(27) लकुच—250 बड़हर वृक्ष
(28) विद्रुप—37

लताएं

(1) मृद्विका—8 दाख, मुनक्का
(2) अतिमुक्तकलता—162, 227, 301, 353। माधवीलता
(3) कल्पलता, 68, 76, 100, 279।
(4) कर्कारू 120। कूष्माण्ड 305 कोहड़ा नामक शाक की बेल।
(5) कारवेल्ल—120 करेला नामक शाक की बेल।
(6) कांचनलता—148 नागकेसर—304
(7) एलालता—इलायची 102, 210, 245, 252, 261, 353 354 तिलकमंजरी एवं हरिवाहन का प्रथम साक्षात्कार एलालतागृह में ही हुआ था।
(8) गुंजालता—70, 234। मेघवाहन की दन्तवलभी के मणिगवाक्ष पर गुंजाफल की कांची पहने जाने का उल्लेख किया गया है दरीगृह प्रस्तरग-लितगुंजाफलकांचीसूचितवनेचरी .... 234। गुंजाफल –152, 200, 234,
(9) ताम्बूलवल्ली 211, 261, 353। नागवल्ली 166, 165, 260,
तुण्डीरक—एक प्रकार का शाक विशेष–305।
त्रपुस—120, 305 एक प्रकार का शाक
(12) निर्गुण्डीलता—199
(13) पाटला—105, 160, 164, 297। कृष्णवृन्त नामक पुष्पलता विशेष
(14) प्रियंगु—125, 211, 266 381।
फली—200। फलिनी–291।
(15) मल्लिका— 105, 107, 174, 178, 212, 237
(16) सल्लकी - 185, 199 हाथियों की प्रियलता विशेष।
(17) लवङ्ग—लौंग 250, 102, 260, 303, 353 140, 151 210, 135
(18) लवङ्गकक्कोल—260 अत्यन्त सुगन्धित लता लवङ्गकक्कोल परि-मलवाही मुक्तानिलो मलयसमीरः
(19) लवलीलता—166, 140, 168, 210, 165, 353।

(20) वार्ताक—एक प्रकार का शाक विशेष 305।
(21) विद्रुमलता—204
(22) हरिचन्दनलता—57, 211, 405

धान्य, तृण तथा औषधिया

(1) कलम—साठी धान विशेष 82, 116, 182, 186 यह शरदृतु के प्रारम्भ मे पक जाता है। **परिणमत्कलम कपिलायमानकेदारिके-82। उत्पाक्कलमकेदारकपिलायमानसकलग्राम सीमान्तम्**—182। समृद्ध कलम के खेतो की सुगन्ध से वनानिल सुगन्धित हो रही थी **उदारकलमकेदारपरिमलामोदितवनानिलाम**—116।

(2) कसेरु—शूकर का भोजन तृण विशेष 210।

(3) काश—तृण विशेष 2', 25, 395 इसमे श्वेत पुष्प लगता है।

(4) कुम्भिका—जलतृण विशेष—233 इसमे भी श्वेतपुष्प खिलता है। इसके पुष्प से श्वेतातपत्र की उपमा दी जाती है **जृम्भोत्तानकुम्भिकाकुसुमसमभासाश्वेतातपत्रिकया** 233।

(5) कुसुम्भ—रक्तवर्ण औषधि 214

(6) कुश—एक प्रकार का तीक्ष्ण तृण, जिसे अत्यन्त पवित्र माना गया है। 61, 63, 254। कुश—शय्या का उल्लेख किया गया है कुशतल्पमगात्-61 इसे हाथ मे लेकर पुरोहित शालि जल छिडकते थे—63। इसे दर्भ भी कहते है— 67।

(7) तण्डुल—चावल 235

(8) तिल—67, 97 धान्य विशेष

(9) दूर्वा—दूब 237, 236, 72, 86, 209, 245।

(10) नल—एक प्रकार का तृण विशेष 126, 251, 199।

(11) नागर—सौंठ नामक औषधि विशेष। क्रमुक वृक्ष से लिपटी हुई नागर लता का उल्लेख किया गया है | 261

(12) नीवार -236 जगली धान्य विशेष

(13) नीली—227, 125 औषधि विशेष
नीलीरसेनेव—125

(14) पिप्पली 211 औषधि विशेष

(15) मजिष्ठा—234 मजीठ नामक औषधि विशेष

(16) शर—सरकण्डा नामक तृण 21, 184।

(17) शष्प---कोमल घास। मलयसुन्दरी द्वारा कुलपति के आश्रम में शष्प कवलों से बालहरिणों का वर्धन किया था 331।

(18) शाद्वल 179 तृण विशेष

(19) शालि....धान्य विशेष 182, 305,। गोपिकाओं द्वारा शालि धान के खेत से हाथ की तालियाँ बजा-बजा कर सुग्गों को भगाये जाने का वर्णन प्राप्त होता है **उत्तालशालिवनगोपिकाकरतलतालतरलितपलायमानकीरकुल** 182 वसन्तोत्सव पर काम देव के मन्दिर में सजावट के लिए स्थान-स्थान पर शालि चावल के स्तूप बनाये गये थे--305।

(20) शैवल–तृण विशेष 233, 107, 121, 158, 37, 203, 254 311, 368 जम्बाल 228।

(21) हरिताल विशेष प्रकार की औषधि, जिसका वर्ण पीला होता है 152, 234, 247,

(22) विशल्या 136 औषधि विशेष।

खान–पान सम्बन्धी सामग्री

तिलकमंजरी में धान्य, तैयार की गई खाद्य सामग्री, गोरस तथा अन्य द्रव्य एवं पेय शाक तथा फलादि सम्बन्धी निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है

पाक-विज्ञान में कुशल व्यक्ति सूपकार कहलाता था। राजा के आहारमण्डप का अध्यक्ष पौरोगव तथा अन्य रसोइये आरालिक कहलाते थे।[1]

बिना पकायी गयी खाद्य सामग्री

(1) यवस 82, 119, बुस 119 जौ

(2) व्रीहि 119

(3) नीवार–236 जंगली धान्य

(4) तिल- 67

(5) तण्डुल- 140,235 तण्डुल सामान्य प्रकार के चावल को कहते थे।

शालि तथा कुलय नामक विशेष प्रकार के चावलों का उल्लेख किया गया है। शालि एक विशेष प्रकार के सुगन्धित चावलों को कहते थे। कामदेव मंदिर में शालि चावलों के स्तूप बनाकर सजावट की गयी थी। खड़ी शालि फसल की रक्षा करती हुई गोपिकाओं का वर्णन किया गया है।[2] शालि के तीन

1. स्थानस्थानविनिहितखण्डशालितण्डुलस्तूपेन........ -तिलकमंजरी, पृ० 305

2. उत्तालशालिवनगोपिकाकरतलताल- तरलितपलायमान............ तिलकमंजरी, पृ० 182

भेद कहे गये हैं- (1) रक्तशालि (2) कमलशाली (3) महाशालि।[1] कलम भी शालि का ही एक प्रकार था। कालिदास ने भी गन्नो की छाया मे बैठकर गाती हुयी शालि की रखवाली करने वाली स्त्रियो का उल्लेख किया है।[2] पके हुए कलम की सुगन्ध से वनानिल सुगन्धित हो रही थी।[3] अन्यत्र पके हुए कलम के खेतो से कपिलायमान ग्राम की सीमाओ का उल्लेख किया गया है।[4]

तैयार की गई सामग्री

(1) मोदक- तिलकमजरी मे मोदक का चार बार उल्लेख है। मोदक को देखते ही लार टपकाने वाला स्वादिष्ट व्यजन कहा गया है।[5] समुद्र के खारे जल से नष्ट हुए मोदको का उल्लेख किया गया है।[6] मोदकादि पकवान कामदेव की पूजन-सामग्री मे रखे गये थे।[7] चावल, गेहू अथवा दाल के आटे को भून कर घी, चीनी अथवा गुड डालकर गेंद के समान गोल-गोल बनाये जाने वाले मिष्टान्न को मोदक कहते थे।[8]

(2) पायस–पायस खीर को कहते थे। घोषाधिप द्वारा भ्रमण करते हुए पथिक दारको को बुला–बुलाकर पायस बाटी जा रही थी।[9]

(3) फेनिका–305

(4) शोकवर्ति—305

(5) खण्डवेष्ट—305

(6) ग्रोदन—117 पके हुए चावलो को ग्रोदन कहा जाता था।

गोरस अन्य द्रव्य एव पेय

(1) क्षीर—66

(2) दधि—66, 72, 115, 117, 123, 197

(3) ग्राज्य—117, 66 सर्पि—130

---

1 Om Prakash Foods and Drinks in Ancient India P 58

2 इक्षुच्छायानिपादिन्य शालिगोप्यो जगुर्यशः। कालिदास रघुवश पृ० 4/120

3 उदारकलमकेदारपरिमलामोदितवनानिलाम्, -तिलकमजरी, पृ० 116

4 उत्पाककलमकेदारकपिलायमान सकलग्रामसीमान्तम्, -वही, पृ०

5 दृष्टमात्र क्षुद्रपद्र हृणो मोदकादि... . -वही पृ० 50

6 विनष्टा. क्षारोदकेन मोदका . . . -वही पृ० 139

7 वही पृ० 305

8 Om Prakash Foods and Drink in Ancint India p 287

9. सतोपघोपाधिपसमाहूयमानपर्यटत्पायसार्थिकपेटकं, तिलकमजरी, पृ 117

घी के लिए आज्य तथा सर्पि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

(4) तक्र—11 ' छाछ

(5) नवनीत 117, हैयंगवीन 117, मक्खन

(6) तैल–131

(7) इक्षुरस 305

(8) माक्षिक 305—मधु शहद

(9) पुण्ड्रेक्षुरस 40

(10) नालिकेरीफलरस 260

(11) कापिशायन–18 कपिशा अर्थात गान्धार देश में उत्पन्न होने वाले अंगूरों से तैयार किये गये मद्य को कहते थे।

शाक

(1) त्रपुष, 120, 305 खीरा को त्रपुष कहा जाता था। इसकी बेल लगती थी।

(2) कर्कारू 120, कूष्माण्ड 305—कोहड़ा को कर्कारु तथा कूष्माण्ड कहते थे। यह भी वल्लीफल था।

(3) कारवेल्लक—120 करेला, इसकी भी बेल लगती है।

(4) तुण्डीरक—305।

(5) वार्ताक—(बैंगन) 305।

वनस्पति–वर्ग के अन्तर्गत अन्य फलों, ओषधियों आदि के नाम बताये जा चुके हैं।

इस अध्याय में हमने देखा कि तिलकमंजरी कालीन समाज सांस्कृतिक दृष्टि-कोण से कितना समृद्ध तथा सम्पन्न था। साहित्य तथा कला का साम्राज था। क्या साधारण प्रजा व क्या सम्भ्रान्त वर्ग, सभी उच्च कोटि के साहित्य व कला में रुचि रखते थे व उनसे अपना मनोविनोद करते थे। उत्तम वस्त्रों का प्रचलन था, जिससे ज्ञात होता है कि वस्त्रोद्योग उस समय कितना विकसित था। वस्त्रों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के आभूषणों केश विन्यासों तथा प्रसाधनों से विभिन्न प्रकार से शरीर की सजावट की जाती थी, जो तत्कालीन सांस्कृतिक परिष्कृत रुचि को परिचायक है। अतः तिलकमंजरी तत्कालीन राजाओं के वैभव मनोविनोद, विभिन्न वस्त्रों तथा आभूषणों व अन्य प्रसाधनों से सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक उपादानों के दृष्टिकोण से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

षष्ठ अध्याय

तिलकमंजरी में वर्णित सामाजिक व धार्मिक स्थिति

सामाजिक स्थिति

वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णाश्रम व्यवस्था प्राचीन भारतीय संस्कृति की रीढ़ थी। भारतीय समाज को वैज्ञानिक तरीके से चार प्रमुख वर्णों में विभक्त किया गया था, तथा औसत मनुष्य जीवन को शतवर्षी मानकर, उसके चार विभाग किये गये थे। तिलकमंजरी से भारतीय समाज तथा जीवन के इस चतुर्मुखी रूप की स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है।

राज्य में वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना तथा रक्षा का उत्तरदायित्व राजा का होता था।[1] राज्य में वर्ण, आश्रम तथा धर्म को विधिवत् स्थापित करने के कारण राजा को प्रजापति का उपमान मिला।[2] राज्य में वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना करना राजा का परम कर्त्तव्य था, तथा इसके पश्चात् राजा भी निश्चिन्त हो जाता था।[3]

वर्ण व्यवस्था

वैदिक काल में ही भारतीय समाज चार वर्णों में विभक्त हो गया था।

---

1. तिलकमंजरी, पृ 12, 13, 17
2. यथाविधिव्यवस्थापितवर्णाश्रमधर्म यथार्थ प्रजापति, —वही पृ 12
3. (क) रक्षिताखिलक्षितितपोवनोऽपि व्रातचतुराश्रमः —वही, पृ 13
   (ख) स्वधर्मव्यवस्थापितवर्णाश्रमतया जातनिर्वृति —वही, पृ. 17
   (ग) राजनीतिरिव यथोचितमवस्थापितवर्णसमुदाया, —वही पृ. 166

ऋग्वेद का पुरुष सूक्त इसका प्रमाण है। अतः वैदिक काल से ही वर्ण-व्यवस्था का प्रादुर्भाव हो गया था।[1] ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्णों में समाज को विभक्त किया गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य यह त्रिवर्ण सम्मिलित रूप से द्विजाति कहा जाता था।[2] एक वर्ण शूद्र के लिए प्रयुक्त होता था।

ब्राह्मण

धनपाल के समय में ब्राह्मणों को सर्वोच्च सामाजिक सम्मान प्राप्त था। राजा की सभा में ब्राह्मणों का विशिष्ट स्थान था। मेघवाहन के राजकुल में ब्राह्मणों की एक विशिष्ट सभा थी, जिसे द्विजावसरमंडप कहा गया है।[3] समरकेतु ने युद्ध के लिए प्रयाण करने से पूर्व समुद्र पूजा के समय अपनी सभा के ब्राह्मणों को बुलाया।[4]

तिलकमंजरी में ब्राह्मण के लिए द्विजाति 15, 19, 65, 66, 67, 114 115, 116, 117, 123, 127, 132, 331, द्विज 11, 44, 64 67, 122 351, 406 श्रोत्रिय 11, 62, 63, 67, 260 द्विजन्मा 7, 63, 173, विप्र 7, 78, पुरोधस् 15, 65, 78, 115, 117, पुरोहित 63, 73 115, 123, देवलक 67, 321, नैमित्तिक 64, 190, 403 मौहूर्तिक 95 131, वेलावित्तक 193 दैवज्ञ 232 सांवत्सर 263 शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

ब्राह्मणों में पुरोहित का स्थान सर्वोच्च था।[5] इसे उच्च राजकीय सम्मान प्राप्त था। राजा द्वारा राजसभा में ताम्बूल तथा कपूर दान अत्यधिक सम्मानजनक माना जाता था। पुरोहितों को समस्त वेदों का ज्ञाता प्रजापति के समान कहा गया है।[6] पुरोहित को महारानी के वास भवन में जाने का भी अधिकार था।[7] यह राज्य के मांगलिक कार्यों को सम्पन्न कराता था।

---

1. Kane, P. V.; History of Dharmasastra, Vol. II, Part I. P. 47.
2. त्रिवर्णराजिना द्विजातिशब्देनेवोद्भासितः —तिलकमंजरी, पृ 348
3. कथितनिर्गमोद्विजावसरमण्डपान्निर्जगाम ... ... —वही पृ.65
4. समाहृतसकलनिजपरिषद्द्विजातिः.... .. .... —वही पृ. 123
5. ताम्बूलकर्पूरालिसर्जनविसर्जितपुरोधःप्रमुखमुख्यद्विजातिः . .... —वही, पृ. 65
6. अखिलवेदोक्तविधिविदा वेधसेवापरेण स्वयं पुरोधसा निर्वर्तितान्नप्राशनादि-सकलसंस्कारस्य .... —तिलकमंजरी, पृ 78
7. पुरोहितपुरःसरेषु विहितमायतनस्वस्त्ययनकर्मस्वपक्रान्तेषु, —वही पृ. 72

पुरोहित के पश्चात् श्रोत्रिय ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ माने जाते थे । श्रोत्रियो को जप मे अनुरक्त कहा गया है ।[1] श्रोत्रिय प्रात काल मे राजा से भेंट करने जाते थे ।[2]

समस्त वेदो के ज्ञाता को द्विज कहा गया है ।[3] सामस्वरो से आनन्दित होने वाले द्विजो का वर्णन किया गया है ।[4] द्विज समूहो से युक्त अयोध्या नगरी ब्रह्मलोक सी जान पडती थी ।[5] देवो तथा द्विजो की प्रसन्नता से शुभ कार्य सिद्ध होते हैं, यह मान्यता थी ।[6]

विप्रो को नामकरण सस्कार पर गो तथा स्वर्ण-दान देने का उल्लेख आया है ।[7] नामकरण सस्कार जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन सम्पन्न किया जाता था ।[8] राजकुल के वर्णन मे ब्राह्मणो द्वारा सम्पन्न विभिन्न कार्यो का उल्लेख किया गया है । पुरोहित हरे कुश हाथ मे लेकर स्वर्णमय पात्र से शातिजल छिड़क रहा था ।[9] यज्ञमण्डप के पास अजिर मे बैठे द्विज मन्त्रोच्चार कर रहे थे ।[10] श्रोत्रियो के दानार्थ लायी गायी गायो से बाह्य कक्षा भर गयी थी ।[11] नैमित्तिक ज्योतिषी के लिए प्रयुक्त हुआ है । पुरुदशा नामक राजनैमित्तिक का उल्लेख आया है ।[12] यह राजकार्यो के लिए मुहूर्त शोधन का कार्य करता था ।[13] मौहूर्तिक,

---

1 जपानुरागिभिरुपवनैरिव श्रोत्रियजनै —वही, पृ 11
2 वही, पृ 62
3 सकलवेदविद्द्विजोऽपि . —वही, पृ 406
4 सवनराजिमि सामस्वरैरिव क्रीडापर्वतकपरिसरैरानन्दितद्विजा, —वही, पृ 11
5 सब्रह्मलोकेव द्विजसमाजै , — वही, पृ. 11
6 देवद्विजप्रसादादिहापि सर्व शुभ भविष्यतीति —वही, पृ 64
7 दत्वा ममारोपिताभरणा मवत्सा सहस्रशो गा सुवर्ण च प्रचुरमारम्भानि स्पृष्टेभ्योविप्रेभ्य —वही, पृ 78
8 पाण्डेय, राजवली-हिन्दू सस्कार पृ 107 चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1966
9 तिलकमजरी, पृ. 63
10 वही, पृ. 64
11 वही, पृ 64
12 वही, पृ 403
13. वही, पृ. 63, 95, 131, 190, 193, 232, 263, 403

वेलावित्तिक, दैवज्ञ, सांवत्सर भी इसी के लिए प्रयुक्त हुआ है । देवलक मन्दिर में पूजा करने वाले ब्राह्मण को कहा जाता था ।[1]

धनपाल ने ब्राह्मणों को भीरू कहा है । ग्रामीणों के प्रसंग में स्वरक्षा में अत्यधिक संलग्न व्यक्ति को ब्राह्मण्य प्रकट करने वाला बताया गया है ।[2] धनपाल के समय में द्विजों में मद्य-पान का प्रचलन नहीं था, अतः मदिरा के स्वाद-सौन्दर्य का वर्णन द्विज के लिए कर्णोत्पीड़क कहा गया है ।[3] समुद्र वर्णन में भी द्विज तथा मदिरा परस्पर विरोधी बताए गये हैं ।[4] इसके विपरीत यशस्तिलक में श्रोत्रियों को मादक द्रव्यों का उपयोग करते हुए बताया गया है ।[5] इससे ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत के ब्राह्मणों में मदिरा का प्रचलन हो गया था किन्तु उत्तर भारत में इसका प्रचलन नहीं हुआ था ।

क्षत्रिय

तिलकमंजरी में क्षत्रिय के लिए क्षत्र तथा क्षत्रिय ये दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।[6] मेघवाहन को क्षत्रियों में अलंकार स्वरूप कहा गया है ।[7] क्षात्र तेज का उल्लेख किया गया है ।[8] शौर्य, तेज, धैर्य, युद्ध में दक्षता तथा अपलायन, दान एवं ऐश्वर्य, ये क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण कहे गये हैं ।[9]

वैश्य

वैश्य के लिए तिलकमंजरी में नैगम तथा वणिक शब्दों का व्यवहार हुआ है । वणिक का व्यवहार जनता के साथ अधिक मधुर नहीं था अतः वणिक के

---

1. वही, पृ. 67, 321
2. दूरीकृतात्महननैरात्मनोऽविडम्बनाय ब्राह्मण्यमाविष्कुर्वद्भिः, —वही, पृ. 119
3. किमनेन कर्णोद्वेगजनकेन द्विजस्येव मदिरास्वादसौन्दर्यकथनेन भक्ष्येतरवस्तु-तत्त्वप्रकाशनेन .... —वही, पृ. 51
4. कुलमंदिरं मदिराया द्विजराजस्य च, —वही, पृ. 122
5. अशुचिमि मदनद्रव्यैर्निपात्यते श्रोत्रियो यद्वत्, सोमदेव, उद्धृत : गोकुलचन्द्र जैन यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 60
6. तिलकमंजरी, पृ. 27, 30, 44, 51, 89
7. अलंकारः क्षत्रियकुलस्य........ —वही, पृ. 44
8. प्रक्रमप्रकटितक्षात्रतेजसा........ —वही, पृ. 30
9. तिलकमंजरी, पराग टीका, भाग 1, पृ. 98

व्यवहार से जनता का क्षुब्ध रहना बताया गया है।[1] सीधे-साधे ग्रामीण जन स्वर्ण के निष्क आभूषण को धारण करने वाले वणिक को भी राजकीय व्यक्ति समझ बैठे।[2] रगशाला नगरी की सीमान्त भूमि के निकट नदी के किनारे वणिक भात्, दही, घी, मोदकादि विक्रेतव्य वस्तुएँ फैलाये बैठे थे।[3] वैश्रवण नामक सुवर्णद्वीप के सायात्रिक वणिक का उल्लेख आया है।[4] समुद्र के मार्ग से द्वीपान्तरो तक व्यापार करने वाले बड़े-बड़े व्यापारियो को सायात्रिक वणिग् कहा जाता था।

वैश्यों को स्वभावत भीरु कहा गया है।[5] वैश्य सदा देव, द्विजाति, श्रमण तथा गुरु की सेवा मे तत्पर रहता था।[6]

शूद्र

शूद्र का तिलकमजरी मे नाम से भिन्न निर्देश नही किया गया है, किन्तु एक प्रसग मे श्लेष के माध्यम से एक वर्ण कहकर शूद्र वर्ण का सकेत किया गया है। अधकार के समूह से ग्रासीकृत समस्त विश्व एक वर्ण अर्थात् कृष्ण वर्ण का हो गया जैसे कलियुग से ग्रासीकृत समस्त जगत एक वर्णी अर्थात् शूद्र वर्ण से युक्त हो गया हो।[7]

अन्य जातिया तथा व्यवसाय

इन चार वर्णों के अतिरिक्त अन्य सामाजिक व्यक्तियो के उल्लेख आये हैं, जिनसे विभिन्न व्यवसायो एव जातियो का पता चलता है।

(1) कलाद—कलाद स्वर्णकार को कहते थे। कलाद की तुलना उस दुर्जन व्यक्ति से की गई है, जो कसौटी के पाषाण के समान कृष्णमुख को नीचे

---

1 नैगमव्यवहाराक्षिप्तलोका . —वही, पृ 98

2 कनकनिष्काश्रितकन्धर वणिजमपि राजप्रसादचिन्तक इति चिन्तयद्भि, —वही, पृ 118

3 वही, पृ 117

4 वही, पृ 127

5 ईषदपि न स्पृष्ट एष कैवर्तकुलसपर्कदोषाशङ्किनेव वणिग्जातिसहभुवा भीरुत्वेन .. —वही, पृ 130

6 सर्वदा देवद्विजातिश्रमणगुरुशुश्रूषापरस्य .. —वही, पृ 127

7 वलयता कलिकालेनेव कलुषात्मना तमस्तोमेन कवलित सकलमपि भुवनमेक-वर्णमभवत्। —तिलकमजरी, पृ 351

कार काव्यरूपी स्वर्ण के गुणों को कहता है।[1] स्वर्णकार के कपा उपकरण का उल्लेख किया गया है।

(2) वलयकार—वलयकार हाथी दांत के कगन बनाने वाले को कहते थे।[2]

(3) कुलाल—कुम्हार के लिए कुलाल शब्द का व्यवहार हुआ है।[3] कुलाल के चक्र का उल्लेख किया गया है।[4] प्रजापति की कुलाल से तुलना की गयी है।[5]

(4) सूत्रधार—सूत्रधार राजमिस्त्री को कहते थे। जीर्ण मन्दिरों को पुनर्निर्मित करने के लिए मेघवाहन ने सूत्रधारों को नियुक्त किया था।[6]

(5) कार्म—तृणमय गृह अर्थात् घास फूंस के बंगले बनाने में कुशल व्यक्ति को कार्म कहते थे। राजा जब सैनिक प्रयाण के लिए निकलते तो राजकुल से निकलने के बाद जगह-जगह पर सैनिक पड़ाव के लिए घास फूंस के राजमन्दिर बनाये जाते थे। इस कार्य में कुशल व्यक्तियों को कार्म कहा जाता था।[7]

(6) मालिक—मालाकार को मालिक कहा जाता था। कांची नगरी में मालाकारों की बहुलता वर्णित की गई है।[8]

(7) भिषग्—आहारमण्डल में राजा के आसन के समीप भोजन के परीक्षण हेतु भिषग् अर्थात् वैद्य बैठता था।[9] भिषग् मरणासन्न व्यक्ति के धन का अपहरण कर लेता था।[10]

(8) शैलूष—नाट्य में काम करने वाले नट को शैलूष कहा जाता था।[11] मदिरावती को रागरूपी नट की रंगशाला कहा गया है।[12]

---

1. कषाश्मनेव श्यामेन मुखेनाधोमुखेक्षणः।
   काव्यहेम्नो गुणान्वक्ति कलाद इव दुर्जनः॥ —वही, पृ. 2, पद्य 14
2. क्वचिद्वलयकारा इव कल्पितकरिविषाणाः, —वही, पृ. 89
3. वही, पृ. 145, 216
4. कुलालचक्रक्रमेण........ —तिलकमंजरी, पृ. 245
5. प्रलयार्कमण्डलोत्पत्तिमृत्पिण्डमिव प्रजापतिकुलालस्य, —वही, पृ. 216
6. जीर्णदेवतायतनेषु कर्मारम्भाय... सूत्रधारान्व्यापारयतः, —वही, पृ. 66
7. स्वकर्मावहितकार्मनिर्मिततार्णमन्दिर........ —वही, पृ. 196
8. बहुमालिकाः प्रासादाः प्रकृयश्च, —वही, पृ. 260
9. नृपासनासन्ननिषण्णभिषजि........ —वही, पृ. 69
10. विषप्रतीकारासमर्थः क्षीणायुषोऽस्य भिषगिव कथमृकथमाहरामि। —वही, पृ. 44
11. वही, पृ 22, 372
12. रङ्गशाला रागशैलूषस्य........ —वही, पृ. 22

(9) गोप या गोपाल—गोप अथवा गोपाल ग्वाले के लिए आया है। इसकी स्त्री को गोपाललना कहा गया है।[1] गोपाललनाएं शरीरधारिणी साक्षात् गोरसश्री के समान जान पड़ती थी।[2] गोप के लिए वल्लव शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।[3] समरकेतु की विजय यात्रा के प्रसंग में गोशालाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है।[4]

(10) सूपकार—पाक शास्त्र में कुशल रसोइये को सूपकार कहा जाता था।[5] रसोइये को आरालिक तथा पौरोगव भी कहा गया है।[6]

(11) धातुवादिक—पारे से सोना बनाने को धातुवाद कहा जाता था तथा इस विद्या के ज्ञाता को धातुवादिक कहते थे।[7] हर्षचरित में बाण के धातुवादविद् विहंगम नामक मित्र का उल्लेख किया गया है।[8] बाण ने अनाड़ी धातुवादियों का वर्णन भी किया है, जिन्हें उसने कुवादिक कहा है।[9]

(12) चित्रकृत्—चित्रकृत् तथा चित्रकर, चित्रकार को कहते थे।[10]

(13) कथक—पेशेवर कथा सुनाने वाले व्यक्ति को कथक कहते थे।[11] हर्षचरित में बाण के मित्रों में कथक जयसेन का उल्लेख आया है।[12]

(14) कुशीलव—नाटक में कार्य करने वाले बन्दीगणों को कुशीलव कहा जाता था।[13]

---

1 तिलकमंजरी, पृ 117, 118
2 गोरसश्रीमिरिव शरीरिणीभि गोपाललनाभि सर्वत. समाकुलैर्गोकुलै, —वही, पृ 118
3 वही, पृ 118
4 वही, पृ. 117-18
5 वही, पृ. 373
6 वही, पृ 69
7 (क) रससिद्धिवेदश्च धातुवादिकस्य —वही, पृ. 22
(ख) वही पृ 235
8 अग्रवाल, वासुदेवशरण, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ 30
9 अग्रवाल, वासुदेवशरण; कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ 236
10 तिलकमंजरी, पृ 179, 322
11. वही, पृ 322
12. अग्रवाल, वासुदेवशरण, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ 29
13. विस्तारितरंगे : कुशीलवैरिव नदीपूरैर्नर्त्यमानम् —तिलकमंजरी पृ 122

(15) जाङ्गुलिक—विषवैद्य को जाङ्गुलिक कहते थे। इसे वातिक, महावातिक, गारुडिक, महानरेन्द्र, मन्त्रवादी भी कहते थे।[1]

(16) कायस्थ—तिलकमंजरी के वर्णन में श्लेष द्वारा अक्षपटल में स्थित नवीन राजा के राज्य की प्रमापक कृष्णवर्ण अक्षर-पंक्ति को दर्शाने वाले कायस्थ का उल्लेख किया गया है।[2] अक्षपटल उस सरकारी दफ्तर को कहते थे जहाँ राज्य की आय-व्यय का हिसाब रखा जाता था तथा इसके अधिकारी को अक्षपटलिक कहा जाता था। तिलकमंजरी में सुदृष्टि नामक अक्षपटलिक का उल्लेख है, जिसने राजा की आज्ञा से हरिवाहन को उत्तरापथ तथा समरकेतु को अंगादि जनपद कुमारभुक्ति के रूप में प्रदान किये थे।[3] इस दफ्तर में कार्य करने वाले लिपिक को कायस्थ कहा जाता था। हर्षचरित में इसी प्रकार के कर्मचारी के लिये करणि शब्द आया है, जो कायस्थ की एक उपजाति थी। यह ग्रामाक्षपटलिक का सहायक होता था।[4]

(17) कर्णधार— तिलकमंजरी में नौ-सन्तरण सम्बन्धी प्रभूत सामग्री प्राप्त होती है। कर्णधार नाविकों के नायक को कहते थे। कर्णधार का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[5] कैवर्त,[6] धीवर[7] जालिक[8] शब्द मछुए के लिए प्रयुक्त हुए हैं। पौतिक[9] अरित्र चलाने वाले को तथा निर्यामक[10] नाव को आगे बढ़ाने वाले को कहते थे। नाव को कैवर्तों से तरण विद्या सीखने वाली विद्यार्थिनी कहा गया है।[11] तिलकमंजरी में नौवहन सम्बन्धी निम्नलिखित शब्दावली का प्रयोग हुआ है—

---

1. तिलकमंजरी, पृ. 22, 51, 78, 89, 171, 234
2. अभिनवागतेनाक्षपटलमास्थाय कायस्थेन.... —वही, पृ. 246
3. वही, पृ. 103
4. अग्रवाल वासुदेवशरण–हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 140-41
5. तिलकमंजरी, पृ. 125, 127, 130, 131, 187, 278, 282
6. वही, पृ. 126, 130
7. वही, पृ. 238, 283
8. वही, पृ 151, 282
9. वही, पृ. 124, 138
10. वही, पृ. 138
11. नौमिरप्यन्तेवासिनीमिस्तरणविद्यामिवोपशिक्षितुं सर्वदा पादतले लुठन्तीमि —तिलकमंजरी, पृ. 126

(1) सितपट—125, 132, 140, 146
(2) नाङ्गरशिला—लगर 125, 134, 146
(3) कूपस्तम्भ —134, 138
(4) अरित्र—पतवार 132, 138, 146
(5) वडिश—मछली पकडने का काटा 126, 200
(6) जाल, आनाय—126, 200, 238
(7) यानपात्र—125, 130, 150, 138
(8) प्रवहण—138
(9) पोत—छोटी नाव 125, 130, 140
(10) नौ—126

(18) पुलिन्द—पुलिन्द बाण चलाने वाली जगली जाति थी।[1] अमरकोष मे पुलिन्द म्लेच्छ जाति कही गयी है।[2]

(19) मातङ्ग—कर्मों के विपाक से समस्त वेदो का ज्ञाता ब्राह्मण भी मातङ्ग जाति में उत्पन्न हो सकता है।[3] मातङ्ग चण्डाल को कहा जाता था तथा यह अत्यन्त निकृष्ट माना जाता था।

(20) नाहल—म्लेच्छ जाति विशेष। यह जाति नदियों के किनारे के वनों मे रहने वाली बतायी गयी है।[4]

(21) हूण—मेघवाहन के दण्डनायक नीतिवर्मा ने हूणराज को युद्ध मे मृत्युलोक पहुचा दिया।[5]

(22) किरात—म्लेच्छ जाति विशेष।[6]
(23) भील—भील जाति का उल्लेख किया गया है।[7]
(24) शबर—शबर का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[8] अटवी के प्रसग में

---

1. वही, पृ 4, पद्य 26
2 भेदा किरातशबरपुलिन्दाम्लेच्छजातय —अमरकोष 2/10/20
3 सकलवेदविद्विजोऽपिमातङ्गजातौ जायते। —तिलकमजरी, पृ 406
4 उच्छलत्कूलनलवनविलीननाहलनिवहकाहलकोलाहलामि — तिलकमजरी, पृ 199
5 समारब्धकर्मणा प्रापित प्रेतनगरम् हूणपति, —वही पृ 182
6. क्रीडाकिरातवश्यानि शबरवृन्दानि —वही पृ 239
7 विपक्षभीतभिल्लपल्लैरिव प्राकृतजनदुरारोहा. —वही, पृ 201
8. वही, पृ 200, 239, 152, 236, 418

शवरों की बस्ती का विशद वर्णन किया गया है।[1] ये निषादों से भी अधिक क्रूर होते थे। बस्ती के प्रत्येक घर के चूल्हे पर शिकार किये हुए पशुओं का मांस पक रहा था, उद्यान से बंदियों के रुदन की ध्वनि आ रही थी, चोरों से अपहृत धन आपस में बांटा जा रहा था, बालकों को मृगों को आकर्षित करने वाले गीत सिखाये जा रहे थे। शवर चण्डिका देवी के उपासक थे तथा चण्डिका को नर-बलि देने के लिए पुरुषों की खोज करते थे।[2] पत्रशवर नामक जाति का भी उल्लेख हुआ है।[3] पत्रशवर शवरों की वह जाति थी, जो छोटा नागपुर तथा बस्तर के जंगलों में शवरी नदी के दोनों ओर निवास करती थी।[4]

आश्रम–व्यवस्था

आश्रम व्यवस्था का प्रमुख आधार मनु का यह सिद्धान्त है– शतायुर्वै पुरुषः।[5] इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी व्यक्ति सौ वर्ष जीवित रहते हैं, इसे अधिकतम आयु मानकर मनुष्य जीवन को चार भागों में विभक्त किया गया था। यही चार आश्रम कहलाये।[6] जीवन के प्रथम भाग में व्यक्ति गुरु के पास अध्ययन करता था, यह ब्रह्मचर्य कहा गया। द्वितीय भाग में वह विवाह करके गृहस्थ जीवन का पालन करता एवं पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण तथा यज्ञों द्वारा देव-ऋण से मुक्ति प्राप्त करता। इसे गृहस्थाश्रम कहा गया। जब व्यक्ति के बाल सफेद होने लगते, तो जीवन की तीसरी अवस्था में वह गृह त्याग कर वनवास धारण कर लेता। इसे वानप्रस्थ कहा गया। इसके पश्चात् व्यक्ति अपने जीवन की अंतिम अवस्था में सर्वस्व त्याग कर सन्यास धारण कर लेता। इसे सन्यासाश्रम कहा गया।[7]

तिलकमंजरी में चार आश्रमों का उल्लेख किया गया है। मेघवाहन के लिए कहा गया है कि समस्त पृथ्वी रूपी तपोवन की रक्षा करते हुए भी वह

---

1. वही, पृ. 200
2. तिलकमंजरी, पृ. 200
3. पत्रशवरपरिवहं वहद्भिः, —वही पृ 236
4. अग्रवाल वासुदेवशरण, कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 193
5. Kane, P. V. ; History of Dharmasastra, Vol. II, Part I, P. 417.
6. चत्वार आश्रमा गार्हस्थ्यमाचार्यकुलं मौनं वानप्रस्थमिति।
—आपस्तम्ब धर्मसूत्र ।। 9/21/1
7. Kane, P V.; History of Dharmasastra Vol. II, Part I, P.417

चारो आश्रमो का रक्षक था।[1] मेघवाहन ने व्रत-पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन किया था।[2] गृहस्थाश्रम का अनेक बार उल्लेख हुआ है। अपनी पत्नी का भरण-पोषण गृहस्थ व्यक्ति का धर्म कहा गया है।[3] पत्नी द्वारा ही गृहस्थाश्रम की सिद्धि कही गयी है।[4] अभ्यागत द्वारा दी गयी वस्तु को ग्रहण करना गृहस्थ के लिए अत्यन्त लज्जाजनक था, इसे दरिद्र गृहस्थ ही स्वीकार करता था।[5] तिलकमजरी मे वानप्रस्थ आश्रम मे स्थित वैखानसो का उल्लेख आया है।[6] जीवन की आधी अवधि समाप्त हो जाने पर राजा भी राज्य त्याग कर पत्नी सहित वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करते थे।[7]

पारिवारिक जीवन एव विवाह

पारिवारिक जीवन मे सयुक्त प्रणाली प्रचलित थी, जो गुरुजनो के प्रति आदर-सत्कार की भावना पर आधारित थी।[8] गुरुजन जो भी करणीय अथवा अकरणीय कृत्य करते, उसका बिना विचार किये अनुसरण करना छोटो का कर्त्तव्य था।[9] गुरुजन भी छोटो की मनोवृत्ति जानकर उनके अनुकूल ही कार्य करते थे।[10]

स्त्री का स्थान—डॉ. अल्टेकर[11] के अनुसार दसवी शती मे स्त्रियो की स्थिति बहुत सम्मानजनक थी। सम्भ्रान्त परिवारो मे स्त्रियो को उच्च शिक्षा दी

---

1 रक्षिताखिलक्षितितपोवनोऽपि व्रातचतुराश्रम, —तिलकमजरी, पृ 13
2 गृहीतब्रह्मचर्यस्य दिवसा कतिचिदतिजग्मु। —वही, पृ 35
3 स्वदारपरिपालनकर्म गृहमेधिना धर्म —वही, पृ 318
4 पालनीया गृहस्थाश्रमस्थिति —वही, पृ 28
5 याचकद्विज इव कथ प्रतिग्रहमगीकरोमि गृहाभ्यागतेनामुना दीयमान दुर्गत गृहस्थ इव गृहनन्तर लधिमानमासादयिष्यामि. . —तिलकमजरी, पृ 44
6 तिलकमजरी, पृ 258, 329, 358
7 ततो धृताधिज्यधनुषि भुवनभारधारणक्षमे....गमिष्यति पश्चिमे वयसि वनम् वही, पृ 33
8 वही, पृ 9, 300
9 यदेव गुरव किंचिदादिशन्ति यदेव कारयन्ति कृत्यमकृत्य वा तदेव निर्विचारे कर्तव्यम्, विचारो हि तद्वचनेष्वनाचारो महान्। —वही, पृ 300
10 अविज्ञाय मच्चित्तवृत्तिम् . नरपतीनाम् —वही, पृ 299
11 Altekar, A S , The Position of Women in Hindu Civilization, p _0-21

जाती थी। संगीत, नृत्य चित्रकलादि कलाओं में पूर्ण दक्षता प्राप्त करना इनके लिए अनिवार्य था।

तिलकमंजरीकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त सम्मानजनक थी। राजा मेघवाहन विद्याधरा मुनि को मदिरावती का परिचय प्रदान करते हुए कहता है कि इसी से हमारी त्रिवर्ग सम्पत्ति सिद्ध होती है, शासन-भार हल्का लगता है, भोग स्पृहणीय है, यौवन सफल है, उत्सव आनन्ददायक है, संसार रमणीय जान पड़ता है तथा इसी से गृहस्थाश्रम पालनीय है।[1] राजा भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाने पर अपनी महारानी से ही परामर्श लेता था। कांची नरेश कुसुमशेखर ने मलयसुन्दरी के विषय में अपनी पत्नी गन्धर्वदत्ता से सलाह ली थी।[2]

धनपाल ने अयोध्या नगरी के वर्णन में स्त्रियों के दो प्रमुख रूपों का वर्णन किया है—कुलवधूएं तथा वारवधूएं।[3] कुलवधूएं सदा गृहकार्यों में निमग्न रहती थीं। वे गुरुजनों के वचनों का पालन करने वाली, स्वप्न में भी देहरी न लांघने वाली, शालीन, सुकुमार तथा पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली थीं। क्रोधित होने पर भी उनके मुख पर विकार उत्पन्न नहीं होता था, अप्रिय करने पर भी, वे विनय का साथ नहीं छोड़ती थीं, कलह में भी कठोर वचनों का प्रयोग नहीं करती थीं।

धनपाल ने कुलवधूओं के रूप में स्त्री के जिस आचरण का प्रतिपादन किया है, वह भारतीय संस्कृति का आदर्श है। अतः वे कुलवधूएं मानों मूर्तिमती समस्त पुरुषार्थों की सिद्धियों के समान थीं।[4]

इसके विपरीत वारवनिताओं का आचरण वर्णित किया गया है। वे नृत्य गीतादि कलाओं में कुलक्रमागत निपुणता से पूर्ण होती थी। अपने एक कटाक्षपात से ही वे राजाओं का सर्वस्व हरण करने में समर्थ थीं। किन्तु वे केवल धन से ही नहीं अपितु गुणों से भी आकृष्ट होती थीं।[5]

---

1. बनयास्माकमविकला त्रिवर्गसम्पत्तिः........गृहस्थाश्रमस्थितिः,
—तिलकमंजरी पृ. 28
2. एवं स्थिते कर्त्तव्यमूढ़े मे हृदयमिदमपेक्षतेतवोपदेशम्। आदिश यदत्र सांप्रतंकरणीयम्।
—वही पृ. 327
3. वही, पृ. 9–10
4. सततगृहव्यापारनिपण्णमानसाभिः..................कुलप्रसूताभिरलंकृता वधूभिः,
वही, पृ. 9
5. इतराभिरपि त्रिभुवनपताकायमानाभिः........साक्षादिव कामसूत्रविद्याभि—र्विलासिनीभिः....... .... —वही, तिलकमंजरी पृ. 9-10

धनपाल ने एक अन्य प्रसग मे स्त्रियों को कुटिल प्रकृति का कहा है तथा पुरुष को स्वभावत सरल बताया है।[1] स्त्रिया अपने चरित्र की रक्षा के लिए मृत्यु का भी आश्रय ले लेती किन्तु अन्य पुरुष की अभिलाषा नही करती थी।[2]

धनपाल ने स्त्री के रमणीय स्वरूप के अतिरिक्त स्त्री के कठोर रूप का भी वर्णन किया है। तिलकमंजरी तथा पत्रलेखा के प्रसग मे शस्त्रधारिणी अगरक्षक स्त्रियों का वर्णन किया गया है। वनविहार के समय पत्रलेखा सैकडो अगरक्षक स्त्रियो से घिरी हुई थी। इन स्त्रियो ने तलवारें धारण की थी।[3] इनको इस कार्य के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था।[4] मलयसुन्दरी से मिलने के लिए जब तिलकमजरी उसके पास आती है तो वह भी अनेको अगरक्षक स्त्रियो से घिरी होती है।[5] उन अगरक्षक स्त्रियो ने मोतियो के जडाव से युक्त सोने के कवच धारण किये थे तथा वे विभिन्न रगों के रत्नो से जडित अत चितकबरे रग की कार्मरगी ढालें लिए थी।[6] कार्मरग ढालें कर्मरग द्वीप मे बनने वाली चमडे की गोल ढालें थी। कर्मरग द्वीप[7] जिसे कादरग या चर्मरग भी कहते थे, हिन्देशिया का प्रमुख द्वीप माना जाता था। हर्षचरित मे भी सुनहरे पत्रलता के अलकरण से सज्जित कादरग ढालो का उल्लेख किया गया है।[8] डा अल्टेकर ने भी राजकीय परिवारों मे स्त्रियो को प्रशासकीय तथा सैनिक शिक्षा दिये जाने की पुष्टि की है।[9]

---

1 कुटिलस्वाभावास्त्रिय निसर्ग सरल पुरुषवर्ग —वही, पृ 316

2 अस्य च .. निजचारित्ररक्षणार्थमेव केवलमध्यवसितस्य जिवितपरित्यागस्य, —वही पृ 306

3 धृतासिफलकाभि परिवृता समन्तत.. अङ्गरक्षाधिकारनियुक्ताभिरङ्गनाभि —वही पृ 341

4 (क) साधितमहाप्रभावविद्याविवृद्धपौरुषावलेपाभि . —वही पृ 341
(ख) प्रौढविद्यावलविवृद्ध शौर्यावलेपाभि . —वही पृ 361

5 मुक्ताफलखचितचामीकरवर्मभिरनेकरत्नकिर्मीरकार्मरङ्गासिपट्टप्रणभ्यरमणीयभीषणाभि .. .. वही, पृ 361

6 तिलकमजरी, पृ 361

7 मजुश्रीमूल कल्प – कर्मरङ्गाख्यद्वीपेषु . . . . तदन्यद्वीपसमुद्भवा उद्धृत अग्रवाल वासुदेवशरण, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ 159

8 वही, पृ 159

9. Altekar A S the position of Women in Hindu civilization p. 20-21.

विवाह

षोडश संस्कारों में विवाह को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि यह समस्त गृह्य यज्ञों तथा संस्कारों का उद्गम अथवा केन्द्र है।[1] स्मृतियों के अनुसार विवाह के आठ प्रकार माने गये है—ब्राह्म, दैव, अर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। प्रथम चार प्रकार प्रशस्त माने जाते हैं तथा अंतिम चार अप्रशस्त। प्रथम सर्वोत्तम तथा अंतिम दो वर्जित किन्तु वैध माने जाते थे।[2]

तिलकमंजरी में (1) ब्राह्म (2) गान्धर्व (3) राक्षस तथा (4) स्वयंवर इन चार प्रकार के विवाहों का उल्लेख है।

ब्राह्म विवाह—यह विवाह का शुद्धतम सर्वाधिक विकसित प्रकार माना गया है। इसे ब्राह्म विवाह कहते थे, क्योंकि यह ब्राह्मणों के योग्य समझा जाता था। इसमें पिता विद्वान तथा शीलसम्पन्न वर को स्वयं आमन्त्रित कर तथा उसका विधिवत् सत्कार कर उससे शुल्कादि स्वीकार न कर दक्षिणा के साथ यथाशक्ति वस्त्राभूषणों से अलंकृत कन्या का दान करता था। तिलकमंजरी में समरकेतु तथा मलयसुन्दरी का विवाह इसी कोटि का है।

(2) गान्धर्व[3]:—मनु के अनुसार जब कन्या और वर कामुकता के वशीभूत होकर स्वेच्छापूर्वक परस्पर संयोग करते हैं तो विवाह के उस प्रकार को गान्धर्व कहते हैं—

> इच्छया न्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
> गान्धर्वस्य तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः॥

हिमालय की तराई में रहने वाले गन्धर्वों में विशेष रूप से प्रचलित होने के कारण इसे गान्धर्व कहा जाता था। तिलकमंजरी में दो प्रसंगों में गान्धर्व विवाह का उल्लेख है। नाविक तारक ने प्रियदर्शना के साथ पाराशर द्वारा योजनगन्धा के सदृश गान्धर्व विवाह किया था।[4] इसी प्रकार कांची नरेश कुसुमशेखर ने गन्धर्वदत्ता के साथ गान्धर्व विधि से विवाह किया था।[5]

---

1. पांडेय, राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ. 195
2. वही, पृ. 203
3. पांडेय, राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ.207–8
4. तिलकमंजरी, पृ. 129
5. तामुपयम्य सम्यग्विहितेन विवाहविधिना गान्धर्वेण गर्वोद्धुरः स्वनगरी काञ्चीमगच्छत्। —वही, पृ. 343

(3) राक्षस कन्या का बलपूर्वक अथवा उसकी स्वीकृति से हरण कर विवाह करना राक्षस विवाह था। बन्धुसुन्दरी समरकेतु से मलयसुन्दरी का अपहरण कर विवाह करने को कहती है किन्तु यह विधि अत्यन्त गर्हित व लज्जाजनक मानी जाती थी।[1]

(4) स्वयवर—स्वयवर विधि से विवाह करने का अनेक बार उल्लेख है।[2] राज-परिवारो मे स्वयवर विधि से विवाह करने का आम-रिवाज था अत राजकन्या के लिए स्वयवर विधि से विवाह करना अनुचित नही माना गया है।[3] तारक मलयसुन्दरी से समरकेतु के साथ विवाह के लिए स्वयविधि का अनुसरण करने के लिए कहता है।[4] समरकेतु को मलयसुन्दरी का 'स्वयवृतवर' कहा है।[5] स्वयवर समारोह का उल्लेख किया गया है, जिसमे रूपवती राजकन्या के अद्वितीय रूप से आकृष्ट अनेक राजा उपस्थित हुए थे।[6] स्वयवर मे कन्या गले मे वरमाला डालकर, अपने अभिलषित पुरुष का वरण कर लेती थी हरिवाहन तिलकमजरी का चित्र देखकर कहता है कि न जाने इसकी स्वयवर–माला किस के गले का आभूषण बनेगी।[7]

अन्तरजातीय विवाह का भी उल्लेख है। तारक नामक वैश्यपुत्र ने शूद्र-पुत्री प्रिय दर्शना से विवाह किया था।[8]

विवाह से पहले लग्न स्थापित किया जाता था।[9] विवाह मण्डप का उल्लेख किया गया है।[10] मलयसुन्दरी तथा समरकेतु के विवाहोत्सव का सुन्दर वर्णन किया गया है।[11]

---

1 किं च हृत्वा गत इमामवनिर्दोपगीतचरितस्य तस्यापि पितुरात्मीयस्य दर्शयिष्यामि कथमात्मानम्। —वही, पृ 326

2 वही, पृ 285, 288, 175, 142, 310

3 अविरुद्धो हि राजकन्याजनस्य स्वयवरविधि, –तिलकमजरी, पृ 288

4 आश्रय स्वयवरपथम् . –वही, पृ 285

5 स्वयवृतो वरस्त्वदीयाया स्वसुर्मलयसुन्दर्या .... . –वही, पृ 231

6 प्रकृष्टरूपाकृष्टमकलराजकस्य कन्यारत्नस्य स्वयवरप्रक्रमेण वही, पृ 142

7 कस्य सचिनाकुण्ठतपस कन्ठकान्डे करिष्य स्वयवरस्रक्। वही, पृ 175

8 स्वजातिनिरपेक्षस्तत्रैवक्षणे वही, पृ 129

9 स्थापितम् लग्नम्, वही, पृ 422

10 विवाहमण्डपमिव दृश्यमानामिनवशालाजिरसस्कारम्, वही, पृ 371

11 वही, पृ 422-23-25-26

(5) मेले, त्यौहार, उत्सवादि

तिलकमंजरी में जन्ममहोत्सव, कामदेवोत्सव, कौमुदीमहोत्सव, दीपोत्सवादि का वर्णन किया गया है।

जन्ममहोत्सव— पुत्र तथा पुत्री दोनों के जन्म पर महान उत्सव किया जाता था।[1] यह उत्सव मास पर्यन्त चलता था।[2] हरिवाहन के जन्मोत्सव का सजीव वर्णन किया गया है। हरिवाहन के जन्म का समाचार पाते ही समस्त नगर में उल्लास का वातावरण छा गया। घर-घर में काहल, शंख, झल्लरी मुरज पटहादि वाद्य बजाये गये। रंगावलियां सजायी गयीं। राजा से पूर्णपात्र ग्रहण करने के लिए अन्तःपुर की वारवनिताओं में होड़ सी लग गयी। उत्सवों पर बलात् छीनकर जो वस्त्र आभूषणादि उतार लिए जाते उसे पूर्णपात्र कहा जाता था।[3] अन्तःपुर सहित नगर की सभी स्त्रियां आनन्द-विभोर होकर नृत्य करने लगीं। पाठशालाओं में अवकाश घोषित कर दिया गया।[4] कारागार से बन्दीजनों को मुक्त कर दिया गया।[5] हर्षचरित में भी हर्ष के जन्म पर बंदियों को मुक्त करने का उल्लेख है।[6]

इसी प्रसंग में सूतिका-गृह तथा इस अवसर पर सम्पन्न किये जाने वाले मांगलिक कार्यों का वर्णन किया गया है। प्रसूति-गृह के बाहर पल्लवों से ढके हुए दो मंगल कलश रखे गये थे। नंगी तलवारें लिए सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे, दुष्ट वक्र दृष्टि से बचाव करने के लिए गुग्गुल धूप का धुंआ उठाया गया था, मंगल-गीतों का शोर हो रहा था, लौकिकाचार में कुशल वृद्धा स्त्रियां विभिन्न आदेश दे रही थीं, जिनसे तत्काल सम्पन्न किये जाने वाले मांगलिक कार्यों का संकेत मिलता है। शिशु-जन्म पर द्वार पर वन्दनमाला बांधी जाती थी, जगह-जगह स्वस्तिक लिखे जाते, शांति जल छिड़का जाता था, षष्ठी देवी का आह्वान

---

1. (क) जन्मदिनमहोत्सवश्री.... —तिलकमंजरी, पृ. 168
   (ख) वही, पृ 263, पृ 76-77
2. वही, पृ. 76-77
3. उत्सवेषु सुहृद्भिर्यद् बलादाकृष्य गृह्यते ।
   वस्त्रमाल्यादि तत्पूर्णपात्रं पूर्णनकं च तत्....
   —वही, पराग टीका, भाग 2, पृ. 182
4. कृताध्ययनभङ्गविद्वज्जन....अन्तेवासिमण्डलानि । —वही, पृ. 76
5. विमोचिताशेषबन्धनः.... —वही, पृ. 77
6. मुक्तानि बन्धनवृन्दानि.... —बाणभट्ट हर्षचरित, पृ. 129

किया जाता था। षष्ठी देवी सोलह मातृकाओ मे पूज्यतम मानी गयी है। यह कार्तिकेय की पत्नी तथा विष्णु की भक्त कही गयी है।[1] कादम्बरी मे रानी विलासवती के द्वारा पुत्रप्राप्ति के लिए मातृदेवियो की मानता मानने का उल्लेख है।[2] हर्षचरित मे भी मातृकासज्ञक देवियो का उल्लेख किया गया है।[3]

जातमातृ देवी की आकृति सूतिकागृह मे लिखी जाती थी।[4] कादम्बरी मे भी सूतिका गृह के वर्णन मे इसका उल्लेख आया है।[5] हर्षचरित के टीकाकार शकर ने इसे जातमातृदेवता मार्जारानना बहुपुत्रपरिवारा सूतिकागृहे स्थाप्यते कहा है।[6] इसका अपरनाम चर्चिका देवी भी था। यह परमार नरेशो की कुलदेवी थी। परमार नरेश नरवर्मदेव के भिलमा-लेख मे चर्चिका देवी की स्तुति की गयी है।[7]

आर्यवृद्धा देवी का पूजन किया जाता था।[8] कादम्बरी मे सूतिका-गृह के भीतर श्वेत पलग के सिरहाने अक्षत चावल बिछाकर उनके ऊपर बीच में देवी आर्यवृद्धा की मूर्ति रखकर पूजा करने का उल्लेख मिलता है। डॉ अग्रवाल के मत मे आजकल लोक मे प्रचलित बीहाई अथवा बीमाता ही प्राचीन आर्यवृद्धा थी[9]

जन्म के छठे दिन रात्रि मे जागरण किया जाता था।[10] इसे षष्ठी जागर कहा जाता था। लोक मे ऐसी मान्यता थी कि बीमाता बच्चे को देखने के लिए छठी पूजन की रात्रि को अवश्य आती है और उसके भाग्य का शुभाशुभ फल लिख जाती है, इसीलिए उस रात मे जागरण किया जाता है। आज भी उत्तर-प्रदेश मे छठी पूजन किया जाता है। जन्म के दसवें दिन नामकरण सस्कार किया जाता था, जिसमे विप्रो को स्वर्ण तथा गायो का दान दिया जाता था।[11]

---

1 तिलकमजरी, पराग टीका, भाग 2, पृ 185
2 अग्रवाल वासुदेवशरण, कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ. 76
3. वही, हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ 65
4. आलिखत जातमातृपटलम्, -तिलकमजरी, पृ 77
5 अग्रवाल वासुदेवशरण, कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ 83
6 वही, पृ 83
7 भडारकर लेख सूचि, 1658, उद्धृत वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ 66
8 आरमध्वमार्यवृद्धासपर्याम्, -तिलकमजरी, पृ 77
9 अग्रवाल वासुदेवशरण, कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ 86
10 अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे, -तिलकमजरी, पृ 78
11 समागते च दशमेऽह्नि हरिवाहन इति शिशोर्नाम चक्रे। वही, पृ 78

वसन्तोत्सव—वसन्तोत्सव उस समय का एक बड़ा उत्सव था, जो बड़े धूम-धाम से मनाया जाता था ।[1] तिलकमंजरी में वसन्तोत्सव का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है।[2] यह उत्सव चैत्र मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन मनाया जाता था ।[3] चैत्र मास में होने के कारण इसे चैत्रोत्सव और चैत्रीयात्रा भी कहते थे ।[4] इस दिन प्रत्येक घर में रक्तांशुक वस्त्र की कामदेव की पताकाएं फहरायी जाती थीं ।[5] नगर के निवासी सजधज कर कामदेव का यात्रोत्सव देखने नगरोद्यान में निर्मित कामदेव के मंदिर में जाते थे ।[6] इसका स्त्रियों के लिए विशेष महत्त्व था । आसन्न-विवाहा कुमारियों के लिए तो इसका अलग ही महत्त्व था ।[7] अन्तःपुर में गीत तथा नृत्य की गोष्ठियां आयोजित की जाती थीं।[8] कामदेव मंदिर में विभिन्न प्रकार के मनोरंजक खेल दिखाये जाते थे, जिनमें कृत्रिम हाथी घोड़ों के खेल प्रमुख थे । विटजन एवं वेश्याएं रास नृत्य करते एवं परस्पर रंगभरी पिचकारियों से रंग खेलते थे ।[9] पानोत्सव मनाया जाता था ।

युद्ध के प्रसंग में अनंगोत्सव की तिथि आने पर वज्रायुध द्वारा उत्सव मनाया गया था ।[10] मृदंगों की ध्वनि के साथ पानोत्सव किया जाता था तथा स्त्रियों के मधुर गीतों को सुनते हुए रात भर मदन जागरण किया जाता था ।[11]

वस्तुतः मदनोत्सव फाल्गुन से लेकर चैत्र के महीने तक मनाया जाता था । इसके दो रूप थे, एक सार्वजनिक धूमधाम का तथा दूसरा अन्तःपुरीजनों के

---

1. अस्ति हि महानुत्सवोऽयम्, वही, पृ. 300
2. वही, पृ. 12 84 95 108 298 302 303 304 305 322
3. (क) मधुमासस्य शुक्लत्रयोदश्यामहमहमिका.... वही, पृ. 108
   (ख) अद्यमदनत्रयोदशीप्रवृत्ता मन्मथायतने यात्रा ... वही, पृ. 298
4. वही, पृ. 302, 323,
5. वही, पृ. 12, 108
6. वही, पृ 298, 323
7. आराधनीयः सर्वादरेण सर्वस्यापि विशेषतः समुपस्थितासन्नपाणिग्रहण मंगलानां कुमारीणाम् । —वही, पृ. 300
8. प्रवृत्तासु निर्भरं गीतनृत्तगोष्ठीषु, —तिलकमंजरी, पृ. 302
9. वही, पृ. 323-24, पृ. 108
10. एकदा वसन्तसमये प्राप्ते च समागतायामनङ्गोत्सवतिथावतीते.... वही, पृ. 83
11. श्रूयमाणेष्वापानकमृदंगध्वनिषु शयनमंदिराङ्गण .. प्रारब्धमदनजागरस्य जायाजनस्य गीतकान्याकर्णयति । —वही, पृ. 84

परस्पर विनोद तथा कामदेव के पूजन का ।[1] तिलकमजरी मे दोनो ही रूपो का वर्णन है । हर्ष की रत्नावली नाटिका मे इसका अत्यन्त सजीव वर्णन किया गया है ।[2] भवभूति ने भी मालतीमाधव नाटक मे मदनोत्सव का स्निग्ध चित्र खींचा है ।[3]

कौमुदीमहोत्सव — काची नगरी के नागरिको द्वारा कौमुदीमहोत्सव मनाये जाने का उल्लेख किया गया है ।[4] वात्स्यायन के कामसूत्र मे कौमुदीजागरण अर्थात् चादनी रात मे जागकर क्रीडा करने का उल्लेख है । कौमुदीमहोत्सव से यही अभिप्राय जान पडता है । डॉ हजारीप्रसाद ने प्राचीन भारतवर्ष मे मनाये जाने वाले ऋतु सम्बन्धी उत्सवो मे दो प्रमुख उत्सवो की गणना की है- वसन्तोत्सव तथा कौमुदी महोत्सव । कौमुदीमहोत्सव शरदऋतु मे मनाया जाता था ।[5]

दीपोत्सव — समरकेतु द्वारा वर्णित आयतन के प्रसग मे दीपोत्सव का उल्लेख किया गया है । मदिर के शिखर भाग मे जडे हुए पद्मराग कलशो की दीप्ति से मानो असमय मे दीपोत्सव आयोजित हो रहा था ।[6] आज भी दीपावली का उत्सव सम्पूर्ण भारतवर्ष मे पूर्ण उत्साह के साथ मनाया जाता है ।

कृषि तथा पशुपालन व्यापार, समुद्री व्यापार, सार्थवाह, कलान्तर, न्यासादि

कृषि तथा पशुपालन — समरकेतु के प्रयाण के समय ग्रामीणो के वर्णन मे कृषि सम्बन्धी अनेक उल्लेख आये हैं । ग्रामपति की पुत्री का सान्निध्य प्राप्त होने पर ग्रामीण, सैनिको द्वारा खलिहान से ले जाये जाते हुए समस्त बुस (यवादि-धान्य) को बुस (भूसा) समझकर उसको अवहेलना कर रहे थे ।[7] कुछ ग्रामीण

---

1 द्विवेदी, हजारीप्रसाद, प्राचीन भारत के कलात्मक मनोरजन, पृ 106-107

2 हर्षदेव रत्नावली, प्रथम अक, पद्य 8-12

3 भवभूति, मालतीमाधव

4 सर्वान्ति पुरपरोता शुद्धान्तसौधशिखरात्पुरजनप्रवर्तित कौमुदीमहोत्सवमव-लोकयन्ती । तिलकमजरी पृ 27।

5 द्विवेदी, हजारीप्रसाद, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ 106

6. ज्वलद्भिमहच्छिम्नै पद्मरागकलशै प्रकाशिताकालदीपोत्सवविलासम् . —तिलकमजरी, पृ 154

7 खलधानत सार्धनिलोकेन निखिलमपि नीयमान बुसबुसाय मत्वावधिर-यद्भि .... —वही, पृ 119

अपने जो की रक्षा करने के लिए लोभी लहँतों को रिश्वत दे रहे थे।[1] गन्ने के खेतों को लूट लिये जाने पर किसान दुःखी हो रहे थे, जिन्हें ग्रमीण दण्डित लुटेरों के किस्से सुनाकर आश्वासन दे रहे थे।[2] इससे ज्ञात होता है कि लुटेरों को राजा की ओर से दण्डित किया जाता था तथा सेना के प्रयाण के समय खेतों की रक्षा के लिए रक्षक टुकड़ियां भी भेजी जाती थी।[3]

खेतों के समूह के लिए केदार, क्षेत्र शाकट वाट वन व्रैहेय शब्दों का प्रयोग हुआ है। पुण्ड्रेक्षु कलम, शालि, इक्षु तथा व्रीहि के खेतों का उल्लेख आया है। द्वीपान्तरों के प्रसंग में चन्दनवृक्षों की बाड़ लगाकर खेतों की रक्षा करने का उल्लेख आया है।[4] कृषि के लिए केवल वर्षा पर निर्भर न रहकर रहट का प्रयोग किया जाता था। रहट को अरघट्ट तथा घटीयन्त्र कहा जाता था।[5] हर्षचरित में भी घटीयन्त्र का उल्लेख आया है।[6] इससे ज्ञात होता है कि सातवीं शती के पहले ही रहट का प्रचार हो गया था। खेती का प्रमुख साधन हल था। सीर तथा युग शब्दों का उल्लेख आया है।[7] कृषकों की स्त्रियां भी उनके कार्य में हाथ बटाती थी। वे खेतों की रखवाली करने का कार्य करती थी। कामरूप देश के प्रसंग में शालि धान्य के खेतों में हाथ से ताली बजाकर सुग्गों को उड़ाने वाली गोपिकाओं का वर्णन किया गया है।[8]

---

1. केश्चिद्गृह्यमाणयवसरक्षणव्यग्रैरर्थलोभाद्मिलपितलंचानां लंचयाला कुटिकानां क्लेशमनुभवद्भिः.... —वही, पृ. 119
2. केश्चिद्......निगृहीतलुण्टाकश्रुतवार्तया लुण्टितेक्षुवाटदुःखदुर्बलं कृषीवल-लोकमपशोकं कुर्वद्भिः........ —तिलकमंजरी, पृ.119
3. केश्चिज्जवप्राप्तपरिपालकव्यूहरक्षितसुजातव्रैहेयैरनेकधानरेन्द्रमभिनन्दयद्भिः —वही, पृ. 119
4. चन्दनविटपवृत्तिपरिक्षेपरक्षितक्षेत्रवलयानि.... —वही, पृ. 133
5. (क) मधुरता रघटीयन्त्रचीत्कारैः........ —वही, पृ. 8
   (ख) चीत्कारमुखरितमहाकूपारघट्टा........ —वही, पृ. 11
   (ग) जगदुपवनं सेक्तु....सुघटितकाष्ठस्य गगनारघट्टस्य घटीमालयेव, —वही, पृ. 121
6. कूपोदंचनघटीयन्त्रमाला........ —बाणभट्ट, हर्षचरित, पृ. 104
7. (क) युगायतं निजमेव भुजयुगलम्, —वही, पृ. 144
   (ख) एष दशसीरसहस्रसमितसीमा, —वही, पृ. 181
8. उत्तालशालिवनगोपिकाकरतलतालतरलितपलायमान कीरकुलकलिलाखय-न्वितपथिकयात्रम्........ —वही, पृ. 182

कृषि के अतिरिक्त पशुपालन तत्कालीन समाज का प्रमुख व्यवसाय था। समरकेतु के प्रयाण के प्रसंग मे नगर की बाहरी सीमा पर बडी-बडी गोशालाओं का सविस्तर वर्णन किया गया है।[1] गोशालाओ मे कुत्ते भी पाले जाते थे। जो निरन्तर गोरस के पान से अत्यन्त परिपुष्ट काया से युक्त थे।[2] गोशालाओं का स्वामी घोषाधिप कहलाता था।[3] समरकेतु के स्कन्धावार मे बैलो की रोमन्थ-लीला का एक साथ छोडना तथा एक दूसरे को सींगो से मारकर घास चरने का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।[4] ग्रामीणजन समरकेतु की सेना के प्रयाण के समय बैलो को देखकर उनके प्रमाण, रूप, बल तथा वृद्धि के अनुसार उनके मूल्य का अनुमान लगा रहे थे।[5]

व्यापार—तिलकमंजरी मे ऐसे अनेक उल्लेख आये हैं जिससे तत्कालीन वाणिज्य व्यवस्था का पता चलता है। यह व्यवस्था दो प्रकार की थी–स्थानीय एवं बाहरी बाहरी व्यापार मे देश के अन्य भागो के अतिरिक्त द्वीपान्तरो तक व्यापार होता था। इसके लिए समुद्री मार्ग तथा सार्थवाह ये दो साधन थे।

स्थानीय व्यापार के लिए बाजारो की व्यवस्था होती थी जिन्हें वीथीगृह तथा विपणि-पथ कहा जाता था। ये बाजार प्राय राजमार्ग पर होते थे[6] तथा इनके दोनो ओर स्वर्ण के बडे-बडे प्रासाद निर्मित रहते थे। अयोध्या नगरी की स्वर्णमय प्रासाद पंक्तियो के मध्य हीरे-जवाहरात के विपणि पथ ऐसे लगते थे मानो सुमेरु पर्वत पर सूर्य के रथ के चक्र-चिह्न बने हो।[7] व्यापारी को आपणिक कहा जाता था।[8] पण्य विक्रेतव्य वस्तु के लिए प्रयुक्त किया जाता था।[9] मध्याह्न

---

1 तिलकमंजरी, पृ 117-118

2 वही, पृ 117

3 वही, पृ 117

4 समकालशिथिलितरोमन्थलील सहेलमुत्थाय चरति सति पुञ्जितमग्रत प्रयत्न-सगृहीत यवसमन्योन्यतुण्डता डनरणाद्विषाणे वृषगणे
—तिलकमंजरी, पृ 124

5 प्रमाणरूपबलोपचयशालिनां प्रत्येकमनडुहा मूल्यमान ... —वही, पृ 118

6 (क) वीथीगृहाणा राजपथातिक्रम, —वही, पृ 12
(ख) वही, पृ 8, 67, 84, 124

7 गिरिशिखरतटनिभशातकुम्भप्रासादमाला .. .. पथुलायतैर्विपणिपथै प्रसाधिता, —तिलकमंजरी, पृ 8

8 वही, पृ 67, 84

9 वही, पृ. 67, 84, 124

काल में व्यापारी जब अपने घर जाते तो सभी वस्तुओं को समेटकर द्वार पर कालायस का ताला लगा देते थे।[1] समरकेतु के सैनिक पड़ाव की विपणिवीथियों में पण्य वस्तुओं के समेट लिए जाने पर भी ग्राहक पैसे लेकर व्यर्थ ही घूम रहे थे।[2] युद्ध शिविरों में भी बाजार लगाये जाने का उल्लेख किया गया है।[3]

द्वीपान्तरों से व्यापार—द्वीपान्तर पूर्वी-द्वीप समूह के लिए प्रयुक्त होता था। द्वीपान्तरों के राजाओं के प्रधान-पुरुष मेघवाहन के लिए उपहार लेकर आये थे।[4] समरकेतु के प्रसंग में द्वीपान्तरों से व्यापार करने का उल्लेख आया है। द्वीपान्तरों से व्यापार समुद्र के मार्ग से किया जाता था। समुद्र के मार्ग से व्यापार करने वाला व्यापारी सांयात्रिक वणिग् कहलाता था। सुवर्णद्वीप के मणिपुर नगर के वासी वैश्रवण नामक सांयात्रिक का उल्लेख किया गया है। उसका पुत्र तारक सुवर्णद्वीप से अन्य सांयात्रिकों के साथ नाव पर विपुल सामग्री लादकर द्वीपान्तरो से व्यापार करता हुआ सिंहलद्वीप की रंगशाला नगरी मे आया था।[5] रंगशाला नगरी के धनाढ्य व्यापारी भी द्वीपान्तरगामी बड़े-बड़े भाण्डों को लादकर व्यापार के लिए सार्थ बनाकर निकलते थे।[6] ऐसी व्यापारिक यात्राओं में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था किन्तु ये उसके अभ्यस्त हो जाते थे। तारक ने नौसन्तरण में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया था।[7] सांयात्रिकों के प्राकृतिक विपदा के कारण कभी-कभी जहाज भी टूट जाते थे। प्रियदर्शना ऐसे ही एक व्यापारी की पुत्री थी, जिसका जहाज टूट जाने पर कैवर्तो ने उसे बचा लिया

---

1. निग्रहोन्मुद्रापणिकसंवृत्तपण्यासु विपणिवीथीषु प्रत्यापणद्वारमघटन्त कालायसतालकानि, —वही, पृ. 67
2. संहृतपण्यवीथीवृथाभ्रमद्गृहीतमूल्यक्रयिकलोके, —वही, पृ. 124
3. वही, पृ. 84, 124
4. उपनीतविविधोपायनकलापं द्वीपान्तरायातमवनीपतीनांप्रधानप्रणधिलोकम् —वही, पृ. 71
5. अधिरुह्य यौवनं यानपात्रं च गृहीतप्रचुरसारभाण्डैर्भूरिशः कृतद्वीपान्तरयात्रैः सहकारिभिरनेकैः सांयात्रिकैरनुगम्यमानः........ —वही, पृ.
6. (क) आगृहीतद्वीपान्तरगामिभूरिभाण्डैः.......... सार्थैः स्थानस्थानेषु कृतावस्थानाम्, —वही, पृ. 117

   (ख) सर्वद्वीपसांयात्रिकाणाममार्गो मार्गः...........—वही, पृ. 156
7. वही, पृ. 129-130

था ।[1] यशस्तिलक मे भी द्वीपान्तरो से व्यापार करने का उल्लेख मिलता है। पद्मिनीखेटपट्टन का निवासी भद्रमित्र अपने समान धन और चरित्र वाले वणिक्-पुत्रो के साथ सुवर्णद्वीप व्यापार करने के लिए गया था ।[2]

सार्थवाह—तिलकमजरी मे सार्थ का दो बार उल्लेख है । रगशाला नगरी के सीमान्त प्रदेश मे पडाव डाले हुए द्वीपान्तरो म व्यापार करने वाले धनाढ्य व्यापारियों के सार्थों का उल्लेख आया है । ये सार्थ प्रयाण के लिए तैयार थे । इनमे द्वीपान्तरो मे जाने योग्य वृहदाकार भाण्डो का सग्रह किया गया था, बैलो के आभूषण पर्याणादि सामग्री भृत्यों द्वारा तैयार की गयी थी, नवीन निर्मित तम्बुओ के कोनो मे बडे-बडे कण्टाल रखे गये थे प्रागन मे बोरियो के ढेर लगाये गये थे तथा घोडो खच्चरो की भीड लगी थी ।[3]

प्रात काल के वर्णन मे रूपक के द्वारा सार्थ का सकेत दिया गया है । प्रात काल मे प्रस्थान को उद्यत ताराओ रूपी सार्थ, जिसमे सबसे आगे मेष तथा उनके पीछे धेनुओ सहित बैल हैं तथा कहीं-कहीं तुलाए और धनुष दिखाई दे रहे हैं, के चलने से उडी हुई धूल से आकाश धूसरित हो गया था ।[4] समान धन वाले व्यापारी जब विदेशो से व्यापार करने के लिए टाडा बाधकर चलते थे, सार्थ कहलाते थे, उनका नेता व्यापारी सार्थवाह कहलाता था ।[5]

आज भी जहाँ वैज्ञानिक साधन नही पहुच सके हैं, वहाँ सार्थवाह अपने कारवा वैसे ही चलाते हैं जैसे हजार वर्ष पहले । आज भी तिब्बत के साथ व्यापार सार्थों द्वारा ही होता है ।[6]

कलान्तर-ब्याज लेकर ऋण देने की विधि का प्रचलन हो चुका था, जिसके लिए कलान्तर शब्द का प्रयोग हुआ है ।[7]

---

1 जलकेतुना कस्यापि सायात्रिकस्य तनया वहनभङ्गे सागरादुद्धृत्य .. —वही, पृ 129

2 सोमदेव यशस्तिलक, पृ. 345 उद्धृत, गोकुलचन्द्र जैन यशस्तिलक का सास्कृतिक अध्ययन, पृ 194

3. आगृहीतद्वीपान्तरगामिभूरिभाण्डैराभरणपर्याणकादिवृषोपस्करसमास्वन सतत-व्यापृत . . सार्थे स्थानस्थानेषु कृतावस्थानाम्, —तिलकमजरी, पृ 117

4 प्रमुख एव प्रवृत्तमेषस्य . . तारकासार्थस्य चरणोत्थापितो रेणुविसर इव...., —तिलकमजरी, पृ 150

5. सार्थान् सधनान् सरतो वा पान्थान् वहति सार्थवाह —अमरकोष 3/9/78

6 मोतीचन्द्र, सार्थवाह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना 1953, पृ 29

7 .... इन्दुनापि प्रतिदिन प्रतिपन्नकलान्तरेण प्रार्थ्यमानमुखकमलकान्तिभि:, —तिलकमजरी, पृ 9

न्यास—समरकेतु के सैनिक प्रयाण के प्रसंग में न्यास का उल्लेख आया है। सैनिक प्रयाण के समय ग्रामीण कांसे के बर्तन, सूत, कम्बलादि गृह धन को बलाधिकृत के घर धरोहर के रूप में रख रहे थे।[1]

लेखन-कला तथा लेखन-सामग्री

तिलकमंजरी में अनेक स्थानों पर ऐसे उल्लेख आये हैं, जिनसे तत्कालीन लेखन-कला लिपि, लेखन-सामग्री, पत्र तथा पुस्तकों आदि के विषय में जानकारी मिलती है। लिपि के विषय में धनपाल ने तिलकमंजरी की प्रस्तावना में स्पष्ट लिखा है कि स्याही से स्निग्ध अक्षरों से युक्त लिपि भी अत्यधिक सम्मिश्रित होने पर प्रशंसनीय नहीं होती है।[2] लिपि की इसी विशेषता का, मंजीर द्वारा प्राप्त अनंग-लेख के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है।[3]

लेखन-सामग्री:—पत्र लेखन अथवा पुस्तकें लिखने के लिए ताड़वृक्ष की छाल जिसे ताड़पत्र, ताडीपत्र, अथवा ताड़पर्ण कहा जाता था, का प्रयोग किया जाता था।[4] मलयसुन्दरी को प्राप्त समरकेतु का पत्र ताड़पत्र पर लिखा गया था।[5] समरकेतु की द्वीपान्तरयात्रा के अन्तर्गत ताड़पत्र पर लिखी हुई पुस्तकों का वर्णन आया है।[6] कालिदास के समय में उत्तरी भारत में लिखने के लिए भोजपत्र का प्रचार था, किन्तु बाण के समय में तालपत्र पर पुस्तिकाएं लिखने की प्रथा चल चुकी थी।[7] धनपाल के समय में भी असम प्रदेश की ओर भोजपत्र का प्रचार था, जैसाकि कामरूप देश की लौहित्य नदी के तट पर स्थित स्कन्धावार में निवास करने वाले कमलगुप्त के लेख से ज्ञात होता है। कमलगुप्त ने हरिवाहन को भोजपत्र पर लेख लिखा था।[8] हर्षचरित में असम के कुमार भास्करवर्मा के उपायनों में अगरु पेड़ की छाल पर लिखी हुयी पुस्तकों का उल्लेख आया है।[9]

---

1. गृहधनं च कांस्यपात्रिकानूतकम्बलप्रायं बलाधिकृतग्रामण्यबलाजनस्य न्यासी-कुर्वद्भिः, —वही, पृ 120
2. वर्णयुक्तिं दधानापि स्निग्धांजनमनोहराम् ।
   नातिश्लेषघना श्लाघां कृतिर्लिपिरिवाश्नुते ॥ —तिलकमंजरी, पद्य 16
3. निरन्तरैरपि परस्परास्पर्शिभिः —वही, पृ. 109
4. वही, पृ. 108, 134, 196, 291, 338, 349
5. स्थूलतरग्रन्थिसंयतमतिपृथुलताडीपत्रसंचारितनुरेखाक्षरलेखम् ..—वही, पृ. 338
6. वही, पृ 134
7. अग्रवाल वासुदेवशरण, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ, 52
8. अजर्जरं भूर्जलेखम्, —तिलकमंजरी. पृ. 375
9. अग्रवाल वासुदेवशरण. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ 52

लेखन के लिए स्याही के अतिरिक्त धातु-द्रव गैरिक रस कस्तूरी-द्रव प्रयुक्त किया जाता था। समरकेतु को प्राप्त हरिवाहन का लेख ताड़पत्र पर धातु-द्रव से लिखा गया था, जिसे सुनहरी धूल से सुखाया गया था।[1]

लेखन के लिए लेखनी प्रयुक्त होती थी जिसे वर्णिका कहते थे। सोने की लेखनी का उल्लेख किया गया है।[2] लेखनी के अभाव में नखाग्र से भी पत्र लिखने का उल्लेख है।[3] एक अन्य प्रसंग में कपड़े में गाठ लगाकर उसमे लेख लिखे जाने का उल्लेख किया गया है।[4]

पत्र-तिलकमंजरी में पत्र-लेखन, पत्र-प्रेषण तथा पत्र प्राप्ति का अनेक प्रसंगो में उल्लेख है।[5] मंजीर नामक वंदीपुत्र को कामदेवायतन में आम्रवृक्ष के नीचे ताड़पत्र पर लिखित एक पत्र प्राप्त हुआ था, जो किसी कन्या द्वारा अपने प्रेमी को लिखा गया प्रेम पत्र था। इसे मृणालसूत्र से बाँधा गया था, इसके दोनों ओर चन्दनद्रव की वेदिकाकृति बनी हुई थी। यह कस्तुरी की स्याही से लिखा गया था। लेखक ने अपना नाम सूचित नहीं किया था।[6] अन्य पत्र कुशल समाचार सूचक हैं। इनमे पत्र के प्रारम्भ मे स्वस्ति तथा अन्त मे अपना नाम लिखा जाता था।[7]

पुस्तकें-तिलकमंजरी मे दो स्थानो पर पुस्तको का उल्लेख है। समरकेतु ने तारक को द्वीपान्तर विजय से प्राप्त ताड़ीपत्र पर लिखित पुस्तको को पंडितो मे योग्यतानुसार बाट देने का आदेश दिया था।[8] इससे ज्ञात होता है कि युद्ध में जीते गये देश से लूटकर लाई हुई पुस्तकें पंडितो मे उनकी योग्यता के अनुसार बाट दी जाती थी। समरकेतु की द्विपान्तर यात्रा के प्रसंग मे ही पुस्तको का और उल्लेख है। इस वर्णन से तत्कालीन हस्तलिखित ग्रन्थो के रखरखाव के विषय मे महत्वपूर्ण

---

1 (क) नूतने ताडीपत्रशकले निहितसान्द्रधातुद्रवाक्षरो यथा चावचूर्णितोक्षोदीयसा स्वर्णरेणुनिकरेण .. .. तिलकमंजरी, पृ 196
(ख) गैरिकरसेन .. .. सुरेखाक्षर लिखित्वा . —वही, पृ 349

2 ज्येष्ठवर्णिका स्वजातरूपस्य, —वही, पृ. 22

3 गैरिकरसेन . ताडीतरुदले कराङ्गुलिनखाग्रलेखन्यासुरेखाक्षर लिखित्वा . .

4 प्रत्यग्रलिपिना दिव्यपटपल्लवग्रन्थलेखेन.. . . —वही, पृ 344

5 वही, पृ 108, 173, 193, 196, 338, 349, 39)

6 वही, पृ 108-109

7 अवलोक्य पृष्ठेऽस्य लब्धप्रतिष्ठानि कुमारनामाक्षराणि . —वही, पृ 193

8. प्रवितर प्रशस्तताडीपत्रविन्यस्तलोचनलेह्यलिपिविशेषाणिपिण्डीकृत्यपण्डितेभ्य. ममम्नानि पुस्तकरत्नानि, तिलकमंजरी पृ 291

जानकारी प्राप्त होती है। ये पुस्तकें बड़े बड़े कठोर ताडपत्रों पर कर्णाटक लिपि में लिखी गई थी। इनकी रक्षा के लिए इन्हें दोनों ओर से बांस की पटलियों से आवृत्त किया गया था। इनमें काव्य ग्रन्थों की रचना की गई थी।[1]

उपरोक्त सूचनाओं से ज्ञात होता है कि धनपाल के समय में लेखन कला का समुचित विकास हो चुका था।

शस्त्रास्त्र

तिलकमंजरी में विभिन्न प्रसंगों में अठाइस शस्त्रास्त्रों का उल्लेख आया है जो निम्नलिखित हैं—

(1) **धनुष**....तिलकमंजरी में समरकेतु तथा वज्रायुध के धनुर्युद्ध का अत्यन्त विशद वर्णन किया गया है, जो धनपाल के धनुर्वेद सम्बन्धी सूक्ष्म ज्ञान का परिचय प्रदान करता है।[2] धनुर्विद्या अथवा धनुर्वेद का उल्लेख किया गया है।[3] समरकेतु ने धनुर्विद्या का पूर्ण अभ्यास किया था।[4] धनपाल ने श्लेष द्वारा बाण के लिए प्रयुक्त मार्गण, कादम्ब, बाण तथा शिलीमुख शब्दों की व्युत्पत्ति दी है।[5] धनुष चलाने के कार्य को सायक व्यापार, इषु-व्यापार कहा गया है।[6] समरकेतु इतनी तीव्रता से बाण चला रहा था कि उसका दाहिना हाथ, एक साथ तूणीर पर गुंथा हुआ, धनुष की डोरी पर लिखित, पुंखों पर जड़ा हुआ तथा कर्णान्त पर अवतंसित सा जान पड़ता था।[7] धनुर्धर के प्रयत्न लाघव की इस क्रिया को खुरली कहा जाता है। तिलकमंजरी में धनुर्वेद सम्बन्धी निम्नलिखित जानकारी मिलती है:—

धनुष के लिए प्रयुक्त शब्द—

(1) सायक—88, 89, 12, 92, 113, 104, 5, 92

---

1. उभयतो वेणुकर्परावरणकृतरक्षेष्वसंकीर्णखरताडपर्णकोत्कीर्णकर्णाटादिलिपपु पुस्तकेपु विरलमवलोक्यामानसंस्कृतानुविद्धस्वदेशभाषानिबद्धकाव्यप्रबन्धानि वही, पृ 134
2. तिलकमंजरी, पृ. 89–90
3. (क) भ्रूविभ्रमैर्मन्मथमिव धनुर्वेद शिक्षयन्ती, –वही, पृ. 159
   (ख) वही, पृ 90
4. अभ्यस्तनिखधनुर्वेदम् —वही, पृ. 114
5. वही, पृ. 89
6. वही, पृ. 88-99
7. अतिवेगव्यापृतोऽस्य तत्र क्षणे प्रोत इव तूणीमुखेपु, लिखित इव मौर्याम्, उत्कीर्ण इव पुंखेपु, अवतंसित इव श्रवणान्ते तुल्यकालमलक्ष्यत्। वही, पृ. 90

(2) सायः—93
(3) पत्री—246
(4) इषु—5, 88
(5) हेतिः—16, 65, 88
(6) धनु —6, 90, 210
(7) मार्गण—12, 90, 104, 113
(8) चाप—13, 227
(9) कार्मुक-17, 88, 90, 92
(10) शर-17, 86, 136, 212
(11) शिलीमुख-89, 93, 303
(12) विशिख —94
(13) कोदन्ड-236
(14) कादम्ब—89
(15) नाराच—83, 87

गुण—बाण की डोरी 6, 88

ज्या—बाण की डोरी 6, 87

मोर्वी-बाण की डोरी 90

सन्धान—बाण को धनुष की डोरी पर चढाना 4

तूणीर, तूणी—बाण का आधार पत्र 37, 90, 116, 200

धानुष्क, धनुष्मान्, धन्वी—धनुर्धारी सैनिक 87, 88, 90

उद्गूर्णहेति -बाण छोडने के लिए उद्यत सैनिक 88

आकर्णान्ताकृष्टमुक्ता -कर्ण पर्यन्त खीचकर बाण छोडना 89

शरव्य-धनुष का लक्ष्य 92

चापयष्टि-धनुर्दण्ड 93

बाणो के समूह की बौछार का उल्लेख किया गया है।[1] बाणो को शिलापट्ट पर घिसकर तीक्ष्ण किया जाता था।[2]

(1) वज्र-14, 122, 298, 348

---

1 अविरलनिरस्तशरनिकरशीकरासारडामरम् . ...तिलकमजरी, पृ 86

2 निशानमणिशिलाफलकमिव कुसुमास्त्रपत्रिणाम् वही, पृ. 246

(2) कुलिश–46, 35, 243, 240, 189, 121, 149, 138, 159, 168 अशनि —133 निर्घात 87

(3) कृपाण–1, 12, 14, 38, 52, 47, 53, 84, 88, 91, 93, 92 226, 323, 370, 376

(4) करवाल–57, 53, 93, 403

(5) खड्ग—53, 85, 189, 198, 232

(6) असि—15, 85, 91, 62, 114, 391, 361, 219, 341, 173 276

(7) तरवारि–15, 55, 102

(8) कर्तिका–48, 52

(9) चक्र–1, 87, 88, 90, 114, 276, 370

(10) शक्ति–4, 87, 136

(11) प्रास–85, 87, 91, 114, 324, 370

(12) पट्टिश—370

(13) गदा—87, 114, 276

(14) मण्डलाग—206, 209

(15) क्रकच—212, 291, 350

(16) असिधेनुका—118, खड्गधेनुका 165, 243, 314 शस्त्रिका —134, 249, 307 कृपाणिका 92, 325

छोटी छुरी या तलवार असिधेनुका कही जाती थी। हर्षचरित में पदातियों द्वारा कमर में कपड़े की दोहरी पेटी की मजबूत गांठ लगाकर उसमें असिधेनुका के खोंसने का उल्लेख किया गया है।[1]

(17) परशु—5, 87, 307

(18) शूल—298

(19) त्रिशूल—88

(20) निस्त्रिंश—53, 274, 307

(21) दात्र—307

(22) कुन्त—114, 173, 323

(23) त्रास—93

(24) कुद्दाल—47

(25) कोदण्ड—123, 236

---

1. द्विगुणपट्टपट्टिकागाढगाग्रन्थिग्रथितासिधेनुना —बाणभट्ट हर्षचरित, पृ. 21

(26) कुठार—83
(27) परश्वध—228
(28) अंकुश—92, 367

वाद्य

तिलकमंजरी मे बीस प्रकार के विभिन्न वाद्यो का उल्लेख आया है। वाद्य के लिए वादित्त वाद्य तथा आतोद्य शब्दो का प्रयोग हुआ है।

(1) भेरी—86, 87, 138, 402
(2) वेणु—57, 70, 180, 141, 227, 269, 372
(3) वीणा—57, 70, 104, 141, 180, 183, 249, 269, 279, 227, 244, 372
(4) दुन्दुभि—86, 218, 370
(5) शख—370, 132, 141, 58, 67, 76, 360, 363
(6) झल्लरी—76, 132, 141, 236, 264, 360, 370
(7) पटह—84, 85, 123, 132, 236, 264, 260, 41, 67, 76, 321, 370
(8) पणव—132, 370
(9) डिण्डिम-367
(10) तूर्य-74, 116, 123, 144, 147, 193, 217, 236, 263, 264, 269
(11) ढक्का—86, 116
(12) मुरज—57, 76, 141, 269
(13) मृदग—84, 104, 106, 34, 41, 67, 141, 227, 236, 264, 269
(14) कास्यताल—141
(15) काहल—84, 86, 76, 199
(16) विपची—183, 70
(17) वल्लकी-41, 186, 260
(18) घण्टा—84
(19) मर्दल—200
(20) करटा—367

बर्तन, मशीनें तथा अन्य गृहोपयोगी वस्तुएं

(1) पटलक—72, 256 पिटारी

(2) कुतुप—124 घी तेल रखने का बर्तन
(3) काष्ठपात्री—124 लकड़ी का बर्तन
(4) लोहकर्पर—124 लोहे की कड़ाही
(5) गलन्तिका—करुआ 67
(6) कुट—घड़ा 67
(7) प्रपिकाकर्पर—प्याऊ में रखा जाने वाला बड़ा माट 67
(८) कटाह—कड़ाही 197
(9) कांस्यपात्रिका—कांसे का बर्तन 120
(10) करण्डक—396 पिटारी
(11) स्थाली, स्थाल—69, 72, 124, 197
(12) भृंगार—स्वर्ण का जलपात्र 22,63
(13) कलश—71, 76, 77, 79
(14) चटस—जल पात्र 124
(15) दृति—चमड़े का जल पात्र 62
(16) गोणी—बोरी 117
(17) कण्ठाल—117, 124
(18) मन्थनी—117
(19) शूर्प—124
(20) शराव—77 सकोरा
(21) करक—305 जलपात्र
(22) पतद्ग्रह—पीकदान 69
(23) मणि-दर्पण-72
(24) तालवृन्त-69, 77
(25) तालकाः-ताला 67
(26) तनिका-124
(27) कील-124
(28) चुल्ली-124, 200
(29) तुला-150 तराजू
(30) क्षुरप्र-घास काटने का औसार

धार्मिक स्थिति

धार्मिक सम्प्रदाय

तिलकमंजरी के अध्ययन से हमें तत्कालीन समय में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि दशम

तथा एकादश शती से सर्वाधिक प्रचलित सम्प्रदाय जैन तथा शैव थे। इनके अतिरिक्त वैष्णव धातुवादी, वैखानस तथा नैष्ठिक सम्प्रदायो के उल्लेख भी मिलते हैं। अब इनका विस्तार से वर्णन किया जायेगा।

जैन सम्प्रदाय

धनपाल ने तिलकमजरी की रचना जैन धर्म मे दीक्षित होने के पश्चात् की थी, अत एक प्रेम-कथा होते हुए भी तिलकमजरी की रचना जैन धर्म व दर्शन की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर की गयी है। प्रारम्भ मे ही धनपाल ने सकेत दे दिया है कि जैन सिद्धान्तो मे कही गयी कथाओ के विषय मे राजा भोज के कुतूहल को शात करने के लिए उसने इस कथा की रचना की।[1] अत विशुद्ध रूप से धर्म-कथा न होते हुए भी, जैन धर्म के प्रचार व प्रसार का इसका लक्ष्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। तिलकमजरी जैन धर्म सम्बन्धी निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होते हैं–

तीर्थंकर–तिलकमजरी का प्रारम्भ 'जिन' की स्तुति से किया गया है।[2] तत्पश्चात् नाभिराजा के पुत्र आदिनाथ नामक प्रथम तीर्थंकर की स्तुति पद्यद्वय मे की गयी है।[3] आदिनाथ के पौत्र नमि विनमि उनके पार्श्व में वर्णित किये गये हैं। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे। धनपाल के समय मे ऋषभदेव प्रिय तीर्थंकर थे। ऋषभदेव को त्रिकालदर्शी धर्मतत्व के उपदेशक ससार-सागर के सेतु, चतुर्विध देव-समूह के उपास्य, गणधर केवलियो मे श्रेष्ठ कहा गया है।[4] ऋषभदेव के समवसरण का उल्लेख किया गया है।[5] जैन-शास्त्रो के अनुसार तीर्थंकर को केवलज्ञान होने के पश्चात् इन्द्र कुबेर को आज्ञा देकर एक विराट सभा मण्डप का निर्माण कराता है, जिसमे तीर्थंकर का उपदेश होता है। इसी सभा–मण्डप को समवसरण कह जाता है। एक अन्य स्थल पर ऋषभदेव की मूर्ति का सजीव वर्णन किया गया है।[6]

ऋषभदेव के पश्चात् महावीर की स्तुति की गयी है।[7] एक अन्य प्रसग मे महावीर की मूर्ति का वर्णन है।[8] महावीर की पक्ष–पर्यन्त मगल–स्नानायात्रा मनाये

---

1 तिलकमजरी, पद्य 50
2 वही, पद्य 1, 2
3 तिलकमंजरी, पद्य 3, 4
4 वही, पृ 39
5 वही, पृ 1, 218, 226
6. वही, पृ 216, 217
7 वही, पद्य 6
8 वही, पृ. 275

जाने का उल्लेख मिलता है ।[1] यह यात्रोत्सव महावीर के निर्वाण दिवस से प्रारंभ कर कार्तिक मास की पौर्णमासी को समाप्त होता था ।[2]

ऋषभदेव व महावीर के अतिरिक्त अजितनाथादि अन्य तीर्थकरों की मूर्तियों का भी उल्लेख आया है ।[3]

जैन मंदिर- तिलकमंजरी में अनेक स्थलों पर जैन मन्दिरों का वर्णन है, जिनमें तीन मन्दिर प्रमुख हैं ।

(1) अयोध्या के समीप शक्रावतार नामक आदिनाथ के मन्दिर का वर्णन किया गया है ।[4] यह आदितीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था ।

(2) समरकेतु द्वारा हरिवाहन-अन्वेषण के प्रसंग में ऋषभदेव के ही दूसरे मन्दिर का सजीव वर्णन किया गया है ।[5] इसी मन्दिर में हरिवाहन ने पद्मासन लगाते हुए मलयसुन्दरी को ऋषभदेव की प्रतिमा के सम्मुख बैठे देखा था ।[6]

(3) तीसरे स्थल पर रत्नकूट पर्वतस्थ महावीर के मन्दिर का वर्णन है, जहां समरकेतु तथा मलयसुन्दरी का प्रथम समागम हुआ था ।[7]

इनके अतिरिक्त समवसरण, परिव्रज्या, गणधर, केवली, जीवादि अनेक जैन धर्म से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है ।

वैष्णव सम्प्रदाय

एक परिसंख्या अलंकार के प्रसंग में वैष्णव सम्प्रदाय का उल्लेख किया गया है कि वैष्णवों का ही कृष्ण के मार्ग में प्रवेश था ।[8] इस उल्लेख के अतिरिक्त वैष्णवों के आचार-विचार, ग्रन्थों, पूजादि सम्बन्धी कोई जानकारी नहीं मिलती अतः तत्कालीन समय में वैष्णव सम्प्रदाय की स्थिति के विषय में तिलकमंजरी से विशेष सूचना नहीं मिलती ।

---

1. वही, पृ. 157, 244, 265, 275
2. .. भगवतो महावीरजिनवरस्य निर्वाणदिवसात्प्रभृति.... .. कार्तिकमासपौर्णमासी-निशीथे मया दृष्टा........ –वही, पृ. 344
3. जिनानामजितादीनामप्रतिमशोभाः प्रतिमाः .... –वही, पृ. 226
4. आदितीर्थतया पृथिव्यां प्रथितमतितुङ्गशिखरतोरणप्राकारं शक्रावतारं नाम सिद्धायतनमगमत् । –तिलकमंजरी, पृ. 35
5. वही, पृ. 216-17
6. वही, पृ. 255
7. वही, पृ. 275
8. वैष्णवानां कृष्णवर्त्मनि प्रवेशः वही, पृ. 12

शैवसम्प्रदाय

तिलकमंजरी मे एक श्लेषोक्ति मे शैव सम्प्रदाय का उल्लेख है, जिसके दक्षिण तथा वाम दो मार्ग कहे गये है[1] यशस्तिलक मे भी शैव सिद्धान्त के दो मार्ग कहे गये हैं ।[2] दक्षिण मार्ग सामान्य जन के लिये था तथा वाम मार्ग भोग तथा मोक्ष प्रदान कराने वाला तथा तान्त्रिको से सम्बन्धित था ।[3] धनपाल के समय मे कदाचित वाम मार्ग अधिक प्रचलित हो गया था, अत उसने प्रेत साधना करने वाले, दक्षिण से वाम मार्ग मे आकर परम शिव की साधना करने वाले शैवो का उल्लेख किया है ।[4] प्रेत साधना का एक अन्य स्थल पर भी उल्लेख है ।[5] शैव सम्प्रदाय के चार मत ग्यारहवी सदी मे प्रचलित थे- (1) शैव सिद्धान्त को मानने वाले (2) पाशुपत लकुलीश (3) कापालिक तथा (4) कालामुख ।[6]

धनपाल ने कराल क्रियाए करने वाले कालामुख तथा कापालिक शैवो की भयकर साधनाओं का उल्लेख किया है । वेताल के वर्णन मे इनका उल्लेख है । वेताल ने मन्त्र साधकों की मुण्डमाला पहनी थी ।[7] वह कपालमे से रक्तपान कर रहा था । वह वेताल साधना करने वाले पुरुष के मास को काट-काट कर खा रहा था ।[8] उसके ललाट पर रक्त का पचागुल चिन्ह अकित तथा ।[9] इसी प्रकार की एक अन्य भयकर साधना असुर-विवर साधना का धनपाल ने अनेक प्रसगो मे

1 प्रतिपन्नदक्षिणवाममार्गागमं. परं शिव शसद्भिरभिप्रेत साधकै शैवैरिव . तिलकमंजरी, पृ 198 99

2 भगवतो हि भर्गस्यसकल जगदनुग्रहमर्गो दक्षिणो वामश्च सोमदेव, यशस्तिलक, पृ 251

3 (क) तत्रलोकसचरणार्थ दक्षिणो मार्गः वही पृ. 206
(ख) भुक्तिमुक्तिप्रदस्तु वाममार्ग. परमार्थ वही पृ 208

4 तिलकमंजरी पृ 198-99

5 कदाचित् प्रेतसाधकस्येव नक्तचराध्यासितापृभूमिषु वही, पृ. 201

6 यामुनाचार्य, आगमप्रामाण्य उद्धृत Handiqui K K Yasastilaka and Indian Culture, p 234

7. अचिरखण्डित मन्त्रसाधकमुण्ड... . गलावलम्बित्, बिभ्राणम् वही, 47

8 वेताल साधकस्य साधितमुत्सर्पता ..कीकशोपदशम् ... तिलकमंजरी,पृ 47

9. आभोगिना ललाटस्थलेन. ... असृक्पचागुलम् . . वही, पृ 48

उल्लेख किया है ।[1] असुर कन्या को प्राप्त करने के इच्छुक रसातल में प्रविष्ट मिथ्या साधकों को वेताल अपनी नख रूपी कुदालो से निकालने की कोशिश कर रहा था[2] । असुर विवर साधना करने वाले वातिक कहलाते थे घनपाल ने श्मशान भूमि में भ्रमण करने वाले वातिकों के समूह का उल्लेख किया है ।[3] वातिकों के टंकों द्वारा पत्थरों के टूटने से बने हुए अकृत्रिम शिवालिगों का उल्लेख किया गया है[4] बाण के मित्रो में से लोहिताक्ष असुर विवर-व्यसनी था ।[5] बाण ने भी असुर विवर साधना करने वाले वातिकों का उल्लेख किया है ।[6] असुर-विवर साधना में, पाताल में गड्डा खोदकर उसमें उतर जाता था तथा उसमें वेताल-साधा जाता था ।[7] हर्षचरित में महामास-विक्रय जैसी भयंकर साधना का उल्लेख है, जिसमें साधक शवमांस लेकर श्मशान में फेरी लगाते हुए भूत-पिशाच को प्रसन्न करते थे[8] यशस्तिलक में अपने शरीर के मांस को काट-काट कर वेचने वाले महाव्रतियों का उल्लेख आया है ।[9] घनपाल ने भी महाव्रत का उल्लेख किया है ।[10] वस्तुतः ऐसी भयंकर क्रियाएं करने वाले ही महाव्रती कहलाते थे तथा ये शैवों के कापालिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे । क्षीरस्वामी ने अपने प्रतीक नाटक प्रबोध चन्द्रोदय में कापालिक साधु का पूर्ण चित्र खीचा है । भवभूति ने मालतीमाधव के अंक 5 में कापालिक अघोरघण्ट का वर्णन किया है । डा० हान्दीकी ने कापालिक सम्प्रदाय का विस्तृत वर्णन किया है ।[11] कापालिक सम्प्रदाय का साधु कर्णिका,

---

1. (क) प्रविष्टारूणालोकस्तोकतरलितद्वारपालवेतालेष्वसुरदेवतार्चनारम्भ - पिशुनमपूर्वसौरभ दिव्यकुसुम घ्रूपामोदमुद्गिरत्सु विवरेषु वही, पृ. 151
   (ख) विविक्षुसिद्धविक्षिप्तवलि शवलितासुरविवरैः.... वही पृ. 235
   (ग) उद्घाटितसमग्रासुरविवरैवः विलासिनीभवनैः .... वही, पृ 260
2. कररूहकुद्दालैरसुरकन्यारिरंसया रसातलगतानलीकसाधकान्... वही, पृ.47
3. अनेकवातिकभ्रमणलग्न........ — वही, पृ. 46
4. वातिककुट्टा वटंकणकलिताकृत्रिमशिवलिगे वही, पृ. 235
5. वाणभट्ट हर्षचरित, पृ 70
6. वही, पृ. 97 103
7. वही, पृ. 58
8. वाणभट्ट हर्षचरित, पृ 58
9. महाव्रतिकवीरक्रयविक्रीयमाणस्ववर्त्तनवल्लूरम् सोमदेव, यशस्तिलक पृ. 49
10. नप्रतिपन्नं महाव्रतम्, तिलकमंजरी पृ. 316
11. Handiqui K.K; Yasastilaka and Indian Culture p. 356-57.

रूचक कुण्डल, शिखामणि, भस्म और यज्ञोपवीत इन छ मुद्राओ तथा कपाल और खटवाक इन दो उपमुद्राओ का विशेषज्ञ होता है।[1]

धातुवादी

तिलकमजरी मे धातुवादियो का दो स्थानो पर उल्लेख आया है।[2] पारे से सोना बनाने की क्रिया को धातुवाद कहा जाता था। इस विद्या के ज्ञाता को धातुवादिक कहते थे। वैताढय पर्वत की अटवी के वर्णन मे इनके द्वारा औषधियो के विभिन्न प्रयोग एव सिद्धियो का उल्लेख किया गया है। हर्षचरित मे भी कारन्धमी या धातुवादी लोगो का वर्णन आया है। ये लोग नागार्जुन को अपना गुरू मानकर औषधियो से होने वाली अनेक प्रकार की सिद्धियो और चमत्कारो को दर्शन का रूप दे रहे थे। बाद मे यही मत रसेन्द्र दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[3] बाण के मित्रो मे विहगम नामक धातुवादी था।[4] कादम्बरी मे अनाडी धातुवादिको का उल्लेख है, जिन्हें बुवादिक कहा गया हैं[5] धनपाल ने धातुवादियो का शैवो से सम्बन्धित होना सूचित किया है। तिलकमजरी मे धातुवादियो के लिए भी वातिक शब्द का प्रयोग हुआ है। वातिको द्वारा पत्थरो के कूटने मे निर्मित अकृत्रिम शिवलिगों का वर्णन आया है।[6] इसी प्रकार युद्ध के प्रसग मे श्लेष द्वारा पारे को नष्ट करने वाले वातिको का उल्लेख किया गया है।[7] डा हान्दीकी ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है कि कापालिक मन्त्रविद्या धातुवाद तथा रसायनादि मे सिद्धि प्राप्त करते थे पर यह अनिवार्य नही था कि

---

1. कर्णिकारूचक चैव कुण्डल च शिखामणिम। भस्म यज्ञोपवीत चमुद्राषट्क प्रचक्षते। कपालमथ खट्वागमुपमुद्रे प्रकीर्तिते।
   सोमदेव यशस्तिलक उद्धृत Ibid 356
2 (क) रससिद्धिवैदग्ध्यधातुवादिकस्य, तिलकमजरी पृ 22
  (ख) स्वर्णचूर्णविकीर्णभस्म पुजकव्यज्यमाननरेन्द्रधातुवादश्रियं . . वही पृ 235
3 उद्धृत डा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्षचरित ; एक सास्कृतिक अध्ययन पृ. 196
4 वही पृ 30
5 वही, कादम्बरी एक साम्कृतिक अध्ययन, पृ 23~
6 तिलकमजरी, पृ 235
7 क्वचित् वातिका इव सूतमारणोद्यता., वही, पृ 89

सभी मन्त्रवादी, धातुवादी आदि कापालिक हों।[1] अतः धातुवादियों का अपना अलग सम्प्रदाय था।

वैखानस

तिलकमंजरी में वैखानसों का तीन स्थानों पर उल्लेख आया है। हरिवाहन मलयसुन्दरी से प्रश्न करता है कि वह प्रसिद्ध वैखानस आश्रमों को छोड़कर शून्य वन में स्थित जिनायतन में क्यों रह रही है[2]? प्रभातकाल में आश्रम की पर्णशालाओं में वृद्ध वैखानसों द्वारा गंगास्तोत्र का पाठ किये जाने का वर्णन है,[3] मलयसुन्दरी को शान्तातप कुलपति के प्रशान्तवैराश्रम नामक वैखानसाश्रम में भेजा गया था,[4] वैखानस उन साधुओं के लिए प्रयुक्त होता था जो गृहस्थ जीवन के बाद तपोवन में वानप्रस्थाश्रम व्यतीत करते थे, जिसमें स्त्रियां भी उनके साथ रहती थी। उत्तररामचरित में राजधर्म का पालन करने वाले तपोवन में वृक्षों के नीचे रहने वाले वृद्ध गृहस्थों को वैखानस कहा गया है[5]। हर्षचरित में 22 सम्प्रदायों के वर्णन में वैखानस साधुओं का निर्देश दिया गया है।[6] हर्षचरित में वैष्णव धर्म को मानने वाले वैखानस साधुओं का उल्लेख है,।[7] किन्तु तिलकमंजरी में वैदिक धर्म को मानने वाले वैखानस साधुओं का उल्लेख है। कुलपति शान्ततप के प्रशान्तवैर वैखानसाश्रम में प्रातःकाल में ही यज्ञ के धुएँ को दुर्दिन समझकर आश्रम का मयूर हर्ष से केकार व करता था।[8] इस आश्रम में मलयसुन्दरी के

1. Handiqui. K.K. Yasastilaka and India Culture, P.357
2. केन हेतुना विहाय विख्यातानि वैखानसाश्रमपदानि निर्जनारण्यवासिनी शून्यमेतज्जियतनमधिवससि.... तिलकमंजरी, पृ. 258
3. क्षीणनिद्रेण निकटदुमकुलायशायिना शुककुलेन वारंवारमावेद्यमानविस्मृत-क्रमाणि प्राक्रम्यन्त पठितुमाश्रमोटजनिर्णर्वृद्धवैखानसैः प्राभातिकानि गंगास्तोत्रगीतकानि। वही, पृ. 358
4. तिलकमंजरी, पृ. 329
5. एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटे वैखानसाश्रितत्तरूणि तपोवनानियेष्वातिथे-यपरमाः शमिनो भजन्ति नीवारमुष्टिपचना गृहणो गृहाणि।
भवभूति, उत्तररामचरित 1/25
6. अग्रवाल : वासुदेवशरण, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 111
7. वही, पृ. 195
8. प्रातः प्रारब्धेष्य होमहुतभुग्धूम्यामहादुर्दिन हृष्टस्याश्रमबर्हिणस्यरसितैरायामिमिश्रा मिता:। तिलकमंजरी, पृ. 329

क्रिया-कलापो का विस्तृत विवरण दिया गया है ।[1] ऐसे आश्रमो मे मुनि-पत्नियो के अतिरिक्त किसी कारणवश मुनि-व्रत धारण करने वाली कन्याए भी रहा करती थी । टीका के अनुसार 10,000 मुनियो का पालनपोषण तथा अध्यापन करने वाले ब्रह्मर्षि को कुलपति कहा जाता था ।[2]

नैष्ठिक

मेघवाहन ने लक्ष्मी की आराधना करते हुए नैष्ठिक धर्म का पालन किया था[3] ये ब्रह्मचर्य का पालन करते थे तथा अपने व्रत के सूचक चिन्हो को धारण करते थे ये चिन्ह जटा, अजिन, वल्कल, मेखला, दड, अक्षवलयादि थे इन्हें वर्णी भी कहा जाता था [4] भारवि ने वर्णिलिंगी ब्रह्मचारी वनेचर का उल्लेख किया है ।[5] तिलकमजरी मे अजिन, जटादि तापस वेष को धारण कर तपस्या करने वाले विद्याधरो का उल्लेख है ।[6]

विभिन्न व्रत तथा तप

इन सम्प्रदायो के अतिरिक्त वैताढ्य पर्वत की अटवी के प्रसग मे विभिन्न विद्याधरो द्वारा अपने अपने आचार्यों से उपदिष्ट विविध व्रतो एव तपो के अनुष्ठान का वर्णन किया गया है, जो तत्कालीन धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालता है ।[7] ये विद्याधर विभिन्न सिद्धियों की प्राप्ति के लिए वन मे तपस्या कर रहे थे, कोई नदी के तट पर निवास कर रहा था, कोई पर्वत की गुफा मे कोई लता गृह मे तो कोई घास फूस की झोंपडी बना कर रह रहे थे ।[8] इस प्रकार एक-एक धार्मिक, ने

---

1 वही, पृ 330-31

2 मुनीना दशसाहस्र योऽन्नपानादिपोषणात् ।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपति स्मृत ॥
तिलकमजरी, पराग टीका भाग 3, पृ 68

3 प्रपिन्नैष्ठिकोचितक्रियो तिलकमजरी पृ 36

4 अग्रवाल वासुदेवशरण, हर्षचरित्र - एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ 107

5 भारवि, किरातार्जुनीयम्, 1/1

6 कैश्चित्... .. विधृताजिनटावलापैस्ता पमाकल्प .. तिलकमजरी पृ 236

7 वही, पृ 336

8. वही, पृ 235-236

विभिन्न निर्झरों प्रपातों एवं शून्य आयतनों में अपना-अपना निवास बना लिया था।[1] उन विभिन्न तपों व व्रतों का नीचे विवरण दिया जाता है—

आहारत्याग— कुछ विद्याधरों ने आहार का त्याग कर दिया था।[2] हर्षचरित में भी 22 सम्प्रदायों के वर्णन में निराहार रहकर प्रायोपवेशन द्वारा शरीर त्यागने वाले अथवा लम्बे-लम्बे उपवास करने वाले जैन साधुओं का संकेत दिया गया है।[3] अतः यहां निश्चित रूप से जैन साधुओं की ओर संकेत है।

अन्नत्याग—कुछ विद्याधर अन्नत्याग कर केवल फलमूल का आहार लेने लगे (फलमूलाहारैः पृ. 236)

पंचाग्नि-तापन— कुछ विद्याधर पंचाग्नि ताप के अनुष्ठान में लग गये (पंचतपः साधनविधानसंलग्नैः पृ 236) कालिदास ने कुमारसम्भव में पार्वती की पचाग्नि तपस्या का वर्णन किया है।[4] इसमें अपने चारों ओर अग्नि जलाकर पचम अग्नि सूर्य की ओर एकटक देखा जाता था। हर्षचरित में भी पंचाग्नि साधना का संकेत दिया गया है।[5]

उदकवास— कुछ विद्याधर आकण्ठ जल में डूबकर तपस्या कर रहे थे (आकण्ठमुदकमग्नैश्च)। शीत ऋतु की रात्रियों में जल मे खड़े होकर तपस्या करने वाली पार्वती का कालिदास ने वर्णन किया है।[6]

धूमपान— कुछ विद्याधर नीचे की ओर मुंह करके धूमपान कर रहे थे (प्रारब्धधूमपानाधोमुखैश्च, पृ 236)

सूर्य की ओर टकटकी लगाकर देखना— कुछ विद्याधर ऊपर की ओर मुख करके सूर्य के बिम्ब को टकटकी लगाकर देख रहे थे। सूर्य की ओर एकटक देखती हुई पार्वती का कुमारसम्भव में वर्णन किया गया है।[7]

---

1. एकैकधार्मिकाध्युषितनिर्झरप्रपातासन्नशून्यसिद्धायतनैः....
 —तिलकमंजरी, पृ. 235
2. फलमूलप्रायाहारैः, वही, पृ. 236
3. अग्रवाल, वासुदेवशरण;हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 108
4. कालिदास, कुमारसम्भवत् 5/20
5. अग्रवाल, वासुदेवशरण; हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 108
6. कालिदास, कुमारसम्भवत् 5/26
7. ... विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत्।
 कालिदास कुमारसम्भवम्, पृ. 5/20

जप— कुछ विद्याधर मन्त्रो के जाप मे सलग्न थे **जपपूर्वकैश्च** पृ 236 ।

मौन-व्रत— कुछ विद्याधरो ने मौन-व्रत धारण कर लिया था (वाचयमै पृ 236) यहाँ निश्चित रूप से जैन साधुओ का सकेत है । कल्पसूत्र में ग्राम्नाय के अनुसार तत्व को जानकर उसी का एक मात्र ध्यान करने वाले को वाचयम कहा गया है, न कि पशु की तरह मौन रहने वाले को ।[1]

कन्द मूल त्याग— कुछ विद्याधरो ने कन्द-मूल तोडना त्याग दिया था । (**कैश्चिदकन्दमूलोद्धारिभि** 236) यहाँ भी जैन धार्मिक साधुओ का ही सकेत है ।

जलावगाहन— कुछ विद्याधरो ने वायु तथा आतप दूषित जल मे समाधि ले ली थी (**अवगाढवातातपोपहतवारिभि**)

तापस वेष धारण — कुछ विद्याधरो ने अजिन तथा जटादि रूप तपस्वी वेष धारण कर लिया था ।[2] इस प्रकार के तपस्वी नैष्ठिक धर्म को मानने वाले तथा वर्णी कहलाते थे । हर्षचरित तथा कादम्बरी मे भी इनका उल्लेख किया गया है ।

हिंसा त्याग— कुछ विद्याधर हाथ मे धनुष लेकर भी जीवो की हत्या नही कर रहे थे (**कैश्चिदुद्दण्डकोदण्डपाणिभि प्राणिविशसनोपरतै** पृ 236)

कुछ विद्याधर प्रेयसियो के निकट रहने पर भी सभोग-सुख से विरत थे (**अन्तिकस्थप्रेयसीभिः सभोगसुखपराङ्मुखै** – 236) । इसे असिधाराव्रत कहा जाता है ।

चान्द्रायण-व्रत— मलयसुन्दरी समरकेतु से समागम की प्रतीक्षा मे चन्द्रायणादि व्रतो द्वारा अपने शरीर को क्षीणतर बना देती है । वह शाक, फल मूलादि वन्याहार ही ग्रहण करती है, वह भी अतिथियो का उच्छिष्ट मात्र ही ।[3]

इस प्रकार तिलकमजरी मे 14 प्रकार के विभिन्न तपो तथा व्रतो का उल्लेख आया है ।

धार्मिक व सामाजिक मान्यताएं, अधविश्वास, शकुन-अपशकुन

शकुन— भारतीय समाज मे यह मान्यता है कि प्रकृति आगामी शुभ अथवा

---

1 योऽवगम्य यथाम्नाय तत्त्व तत्त्वैकभावन ।
वाचयम स विज्ञेयो न मौनी पशुवन्नर ॥ —कल्पसूत्र 44/867

2 त्रिघ्नाजिनजटाकलापैस्तापसाकल्प कलयद्भि, तिलकमजरी, पृ 236

3. समारब्धोपवासकृच्छ्रचान्द्रायणादिविविधव्रतविधि .शाकफलमूलादिभि सादरमुपरचन्ती तदुपन तशेषेण वन्यान्नेन विरलविरलारमदेह वर्तयन्ती । —वही, पृ 345

अशुभ घटना का पूर्वाभास मनुष्य को कुछ विशिष्ट संकेतों द्वारा करा देती है, जिसे शुभ शकुन कहते हैं। कुछ विशिष्ट संकेत शुभ-सूचक माने जाते हैं तथा अन्य अशुभ-सूचक।

शुभ-शकुन—तिलकमंजरी में विभिन्न स्थलों पर निम्नलिखित शुभ शकुन माने गये हैं–

1. पुरुष की दायीं आँख तथा अधरपुट का स्पन्दन।[1]
2. पुरुष की दायीं भुजा का फड़कना[2]
3. वायु का दक्षिण की ओर से बहना[3]
4. वाम नासिका का श्वास बोलना।[4]
5. शृंगाल का दायीं ओर से बायीं ओर जाना।[5]

अपशकुन—(1) पुरुष की बायीं आंख फड़कना अशुभ सूचक माना जाता था। तिलक मंजरी का पत्र मिलने पर हरिवाहन की बायीं आंख फड़कने लगी।[6]

(2) स्त्री के लिए दक्षिणाक्षि स्पन्दन अपशकुन माना गया था।[7]

(3) मृग का वाम भाग से निकलना प्रयाण के लिए अशुभ माना जाता था।[8]

अन्य मान्यताएं

तिलकमंजरी कालीन समाज में लोग पुनर्जनम में विश्वास रखते थे। पूर्व-जन्मों में कृत कर्मों के कर्मोदय की अपेक्षा से रहित कारण फल उत्पत्ति में असमर्थ

---

1 (क) स्पन्दिताधरपुटमचिरभाविनमानन्दमिव मे निवेदयामास दक्षिणं चक्षु। –तिलकमंजरी, पृ. 144
(ख) प्रतिक्षणं च स्फुरता दक्षिणेन चक्षुषा....– वही, पृ. 210

2. (क) स्पन्दमानेन तत्क्षणं दक्षिणेन भुजदण्डेन व्यजितारब्धकार्यसिद्धिः .. –वही, पृ. 198
(ख) प्रतिक्षणं च स्फुरता दक्षिणेन चक्षुषा भुजशिखरेण.... –वही, पृ. 210

3. पृष्ठतो दक्षिणपवनेन.... –वही, पृ. 198

4. पुरतो वा वामनासिकापुटश्वसनेन.... --वही, पृ. 198

5. प्रतिपन्नदक्षिणवाममार्गागमैः परं शिवं शंसद्भिरमिप्रेतसाधकैः शैवैरिव पदे पदे प्रधानशकुनैरिव.... --वही, पृ. 198-99

6. अहं तु तत्क्षणोपजातवामाक्षिस्पन्दनेन.... –तिलकमंजरी, पृ. 396

7. मुहुर्मुहुः कम्पते दक्षिणाक्षिः। --वही, पृ. 413

8. वामचारिण्यत्र मार्गमृग इवाध्वगानधिगच्छन्ति वांछितानि। --वही, पृ. 112

हैं ऐसी मान्यता थी ।[1] ऐसी धारणा थी कि विविध कर्मों से बंधे हुए जीवो का अनेक जन्मान्तरो मे सम्बन्ध होने के कारण अपने बन्धुओं, मित्रो से नाना प्रकार से पुन पुन सम्बन्ध होता है ।[2] यह मान्यता थी कि पुत्र हीन व्यक्ति पुत् नामक नरक मे जाता है ।[3] पुत्र प्राप्ति के लिए विभिन्न उपाय किये जाते हैं ।[4]

लोगो का तन्त्र-मन्त्र औषधियों, भूत-प्रेत मे विश्वास था ।[5] इहलोक तथा परलोक मे जनता का विश्वास था तथा धार्मिक कृत्य पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए किए जाते थे ।[6]

गुरुजनो के नाम मे बहुवचन का प्रयोग करने का प्रचलन था ।[7] शुभ कार्य के लिए प्रस्थान करते समय पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठा जाता था ।[8] प्रस्थान से पूर्व सप्तच्छद के पत्तो के डाट से बंद मुख वाले चाँदी के पूर्ण-कुम्भ को प्रणाम किया जाता था । वारविलासिनियाँ स्वर्णपात्रों मे दही-पुष्प, दूर्वा, अक्षतादि मांगलिक वस्तुए रखकर अवतारणकमंगल करती थी । अप्रतिरथ मन्त्रो का जाप करता हुआ पुरोहित आगे-आगे चलता तथा उसके पीछे अन्य द्विज अनुसरण करते ।[9] शिशु-जन्म के समय भी अनेक प्रकार के मांगलिक कार्य किये जाते थे जिनका अन्यत्र वर्णन किया जायेगा ।

प्रसन्नता के अवसर पर मित्रो से बलपूर्वक छीनकर वस्त्र आभूषणादि ले लिए जाते थे, इसे पूर्णपात्र कहते थे ।[10] समरकेतु तथा हरिवाहन के समागम पर

---

1 समग्राण्यपि कारणानि न प्राग्जनितकर्मोदयक्षणनिरपेक्षाणी फलमुपनयन्ति --वही, पृ 20

2 सम्भवन्ति च भवार्णवे विविधकर्मवशवर्तिना जन्तूनामनेकशो जन्मान्तरजातसम्बन्धैर्बन्धुभि सुहृदभिर्यैश्च नानाविधं सार्धमबाधिता पुनस्ते सम्बन्धा । --वही, पृ 44

3 आत्मान त्रायस्व पुनाम्नो नारकात्, --वही, पृ 21

4. वही, पृ 64-65

5 वही, पृ 311, 64 65, 51

6 वही, पृ 42

7 बहुवचनप्रयोग पूज्यनामसु न परप्रयोजनांगीकरणेपु,--तिलकमजरी, पृ 260

8 वही, पृ 115

9 वही, पृ 115

10 उत्सवेपुमुहृद्भिर्यद बलादाकृष्य गृह्यते वस्त्रमाल्यादि तत् पूर्णपात्रम् । --तिलकमजरी, पराग टीका, भाग 3, पृ 123

वनलताएं समरकेतु के उत्तरीय को बार-बार खींचकर मानों पूर्णपात्र का आग्रह कर रही थी।[1] हरिवाहन के जन्मोत्सव पर अन्तः पुर की वारविलासिनीयां पूर्णपात्र ग्रहण करने के लिए राजा के पास गयीं।[2]

रुदन-विधि— किसी शोक-समाचार के मिलने पर स्त्रियां सिर तथा वक्षःस्थल को हाथ से पीट-पीट कर रोती थीं। मलयसुन्दरी द्वारा अशोक वृक्ष से फंदा लगाकर लटक जाने पर बन्धुसुन्दरी दोनों हाथों से सिर तथा छाती पीट-पीट कर रोने लगी, जिससे उसकी अंगुलियों से रक्त बहने लगा तथा गले के हार के मोती आंसुओं के साथ-साथ टूट-टूट कर गिरने लगे। इसी प्रकार हरिवाहन का समाचार न मिलने पर स्त्रियां सिर पीट-पीट कर रोने लगी।[3]

शोक समाचार के श्रवण पर पुरुष सिर सहित समस्त शरीर को उत्तरीय से ढककर विलाप करते थे। मदमत्त हाथी द्वारा हरिवाहन का अपहरण कर लिये जाने पर समरकेतु ने इसी प्रकार विलाप किया था।[4]

आत्महत्या के उपाय— असह्य दुःख से छुटकारा प्राप्त करने के लिए तिलकमंजरी में चार प्रकार से जीवन का अन्त करने का उल्लेख है। शस्त्र द्वारा विष द्वारा, वृक्ष की टहनी से फंदा लगाकर तथा प्रायोपवेशन कर्म द्वारा।[5] मलयसुन्दरी ने तीन बार आत्महत्या करने का प्रयास किया था, किंपाक नामक विषैला फल खाकर, समुद्र में कूदकर, तथा फंदा लगाकर। प्रायोपवेशन निराहार रहकर शरीर त्यागने को कहते थे। हर्षचरित में भी निराहार रहकर प्रायोपवेशन के द्वारा शरीर त्यागने वाले जैन साधुओं का उल्लेख किया गया है।[6] यशस्तिलक में भी प्रायोपवेशन का उल्लेख है।[7]

हर्षचरित में भृगु-पतन, काशी-करवट, करीषाग्नि-दहन तथा समुद्र में आत्मविलय इन चार उपायों का उल्लेख है।[8] तिलकमंजरी में भी गन्धर्वक द्वारा

---

1. पूर्णपात्रसंभावनयेव वारंवारमवलम्ब्यमान.... वही, पृ. 23;
2. वही, पृ. 76
3. तिलकमंजरी, पृ. 309, 193
4. वही, पृ. 190
5. शस्त्रेण वा विषेण वा वृक्षशाखोद्बन्धनेन वा प्रायोपवेशनकर्मणा वा जीवितं मुंचति। —वही, पृ. 327
6. अग्रवाल वासुदेवशरण, हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 108
7. जैन, गोकुलचन्द्र, यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 323
8. अग्रवाल वासुदेवशरण हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 107

सार्व-कामिक प्रपात से गिरकर आत्महत्या करने के प्रयास का उल्लेख किया गया है।[1]

प्रस्तुत अध्याय में तिलकमंजरी से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर हमने तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक स्थिति का सर्वेक्षण किया। हमने देखा कि तत्कालीन समाज चार वर्णों में सुविभक्त था तथा इस वर्णव्यवस्था की स्थापना व रक्षा राजा स्वयं करता था। चार वर्णों के अतिरिक्त अन्य व्यावसायिक जातियां भी पूर्ण विकसित हो चुकी थी। वर्ण व्यवस्था के साथ-साथ आश्रम व्यवस्था का भी पूर्ण रूप से पालन किया जाता था। परिवारों में संयुक्त प्रणाली प्रचलित थी, जो परिवार के छोटे और बड़े सदस्यों में परस्पर सम्मान की भावना पर आधारित थी। स्त्रियों का स्थान बहुत सम्मानजनक था। सम्भ्रान्त परिवारों में स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। कृषि व व्यापार बहुत उन्नतावस्था में थे। द्वीपान्तरों तक समुद्र से व्यापार होता था। धनपाल स्वयं जैन थे, अतः तिलक-मंजरी से जैन धर्म के आचार-विचार तथा सिद्धान्तों की विस्तृत जानकारी मिलती है जैन-धर्म के अतिरिक्त यद्यपि शैव वैष्णवादि धर्मों की स्थिति के भी उल्लेख मिलते हैं, किन्तु प्रमुखतया जैन धर्म के ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन इसका उद्देश्य है।

1 तिलकमंजरी, पृ. 418

उपसंहार

अंत में तिलकमंजरी के उपर्युक्त अध्याय से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की प्रमुख उपलब्धियां निम्नलिखित हैं—

(1) दशम शती के उत्तरार्ध तथा एकादश शती के पूर्वार्ध के प्रसिद्ध जैन कवि धनपाल ने तिलकमंजरी कथा की रचना करके संस्कृत गद्य कवियों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। इन्होंने सीयक, सिन्धुराज, मुंज तथा भोज की सभा को विभूषित किया तथा 'सरस्वती' विरुद प्राप्त किया। तिलकमंजरी के अतिरिक्त ऋषभपंचाशिका, पाइयलच्छीनाममाला, वीरस्तुति आदि इनकी अन्य रचनाएं हैं।

(2) तिलकमंजरी राजकुमार हरिवाहन तथा विद्याधरी तिलकमंजरी की प्रेम-कथा है। धनपाल ने एक अत्यन्त सरल व सीधे-सादे कथानक को तत्कालीन युग प्रचलित रूढ़ियों यथा, पुर्नजन्म, देवयोनि एवं मनुष्य-योनि के व्यक्तियों का परस्पर समागम, शाप, दिव्य आभूषण, आकाश में उड़ना, अपहरण, आत्महत्या आदि के आधार पर विभिन्न कथा-मोड़ों में प्रस्तुत करके अत्यन्त नाटकीय तथा रोचक बना दिया है।

(3) यद्यपि इस कथा का मूल स्रोत ज्ञात नहीं हो सका, तथापि धनपाल के 'जिनागमोक्ता :' इस संकेत से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह कथानक जैन आगमों में कही गयी कथाओं से ग्रहण किया गया है। तिलकमंजरी कथा की रचना जैन धर्म व उसके सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि पर की गयी है।

(4) तिलकमंजरी के कर्ता धनपाल बहुमुखी प्रज्ञा के धनी कवि थे। यह ग्रन्थ उनके शास्त्रीय ज्ञान तथा व्युत्पत्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। धनपाल वेद-वेदांग, पौराणिक साहित्य, विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्त तथा धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, संगीत, चित्रकला सामुद्रिकशास्त्र, साहित्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नाट्य-शास्त्रादि विभिन्न शास्त्रों में पूर्णतः निष्णात थे।

(5) तिलकमंजरी की गणना गद्यकाव्य की कथा तथा आख्यायिका इन दो विधाओं में से कथा-विधा के अन्तर्गत होती है। इसका कथानक कवि-कल्पना

से प्रमूत है। यह काव्य संस्कृत गद्य-काव्य के अल्प शेष दुर्लभ ग्रन्थो के अन्तर्गत होने से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह ग्रथ अति प्राजल, ओजस्वी, भावपूर्ण भाषा तथा छोटे छोटे समासो से युक्त ललित वेदर्भी रीति मे रचा गया है। प्रसगानुकूल पाचाली व गौडी रीति का भी प्रयोग किया गया है। मनोहर प्रसगानुकूल अलंकार-योजना से इसके कलेवर का शृ गार किया गया है। सर्वत्र मनोहर अनुप्रास यमकादि शब्दालकारो के साथ उपमा, उत्प्रेक्षादि अर्थालंकारो का उचित समन्वय इसकी विशिष्टता है। प्रमुख रस शृ गार होते हुए सभी समस्त नव-रसो का परिपाक इसमे परिलक्षित होता है।

(6) तत्कालीन सांस्कृतिक दृष्टि से तिलकमजरी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। दशम-एकादश शती की संस्कृति के अध्ययन हेतु तिलकमजरी कोष का काम करती है। इसमे तत्कालीन राजाओ के मनोविनोद, वस्त्र तथा वेशभूषा, सभी प्रकार के आभूषण तथा प्रसाधनो का विस्तृत वर्णन है।

(7) तिलकमजरी मे तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक स्थिति प्रतिबिम्बित होती है। तत्कालीन समाज मे वर्ण तथा आश्रम की विधिवत् व्यवस्था की जाती थी, सयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी, स्त्रियो की स्थिति सम्मानजनक थी। कृषि व व्यापार बहुत उन्नतावस्था मे थे। द्वीपान्तरो तक समुद्र से व्यापार किया जाता था।

(8) तिलकमजरी से जैन धर्म के आचार-विचार तथा सिद्धान्तो की विस्तृत जानकारी मिलती है। जैन धर्म के अतिरिक्त, शैव तथा वैष्णवादि धर्मो की स्थिति के भी उल्लेख मिलते हैं।

□ □ □

सहायक–ग्रन्थ-सूची

1 अग्रवाल, वासुदेवशरण — हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, 1964

2 अग्रवाल, वासुदेवशरण — कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1, 1970

3 Altekar, A S — The Position of Women in Hindu Civilization, Moti Lal Banarsidas, 1956

4 आनन्दवर्धन — ध्वन्यालोक (स) डा० नगेन्द्र, वाराणसी, 1962

5 ईश्वरकृष्ण — सांख्यकारिका (स) विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1968

6 उद्भट — अलंकारसारसंग्रह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1915

7 उपाध्याय, बलदेव — संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1968

8 Om Prakash — Food and Drinks in Ancient India, Munshiram Manohar Lal, Delhi, 1961

9 Kansara, N M — Tilakamanjarisara of Pallipala Dhanapala, Ahmedabad, 1969

10 Kane, P.V. — History of Dharmasastra, Vol II Part I, B O R I, Poona, 1941.

11. Kane, P V. — History of Sanskrit Poetics, Moti Lal Banarsidas, 1971.

12. कालिदास : कुमारसम्भवम् (स) उपेन्द्रनारायण मिश्र, रामनारायण लाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद–2, 1961

13. कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् (स.) डा० कपिलदेव द्विवेदी, इलाहाबाद–2, 1969

14. Keith, A.B. : History of Classical Sanskrit Literature, London, 1923.

15. Keith A.B. : संस्कृत साहित्य का इतिहास, (अनु०) मंगलदेव शास्त्री, 1967

16. Krishnamachariar M : A History of Classical Sanskrit Literature, Madras, 1937.

17. क्षेमेन्द्र : औचित्य-विचारचर्चा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1933

18. मिश्र, केशव : तर्कभाषा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1, 1967

19. कापड़िया, हीरालाल रसिकदास : प्राकृत भाषा अने साहित्य, 1940

20. कापड़िया, हीरालाल रसिकदास : जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास, भाग 1, 2, बड़ोदा, 1957

21. Ganguli, D. C. : History of Paramara Dynasty, Dacca, 1933.

22. चौधरी, गुलाबचन्द्र : जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 6 पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी–5, 1973

23. गौतममुनि : न्यायदर्शन, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1925

24. चरक-संहिता : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1, 1970

25. Ghurye, G S. : Caste and Class in India, Bombay, 1957

26. Jalhana : Suktimuktavali, Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. XVII

27 जिनमण्डनगणि — कुमारपालप्रबन्ध, जैन आत्मानन्दसभा, भावनगर, स० 1971

28 जैन, गोकुलचन्द्र — यशस्तिलक का सास्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, 1967

29 जैन, जगदीशचन्द्र — प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1961

30 De, S K Dasgupta, S N. — A History of Sanskrit Literature, Calcutta, 1947.

31 तिलकमजरी कथा सारांश — (स०) प्रभुदास बेचरदास पारेख, हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली 13, पाटण, 1919

32 दण्डी : काव्यादर्श, (स०) रामचन्द्र मिश्र, वाराणसी, 1958

33 देसाई, मोहनचन्द दलीचन्द — जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स, बम्बई, 1933

34 द्विवेदी, हजारी प्रसाद — प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, बम्बई, 1952

35 धनपाल . तिलकमजरी, काव्यमाला-85, निर्णय-सागर प्रेस, बम्बई, 1903

36 धनपाल — तिलकमजरी, भाग 1, 2, 3, विजयला-वण्यसूरीश्वर ज्ञानमदिर, बोटाद

37 धनपाल — पाइयलच्छीनाममाला (स०) गुलाबचन्द लालुभाई, भावनगर स० 1973

38 धनपाल : पाइयलच्छीनाममाला (स०) बेचरदास जीवराजदोशी, बम्बई 1960

39 धनपाल — Paiiacchinamamala (Ed) Buhler, G Gottingen, 1879

40 धनपाल — ऋषभपचाशिका अने वीरस्तुति (स०) हीरालाल रासिकदास कापडिया आगमोदय समिति, बम्बई, 1933

41 धनजय — दशरूपक (स०) भोलाशकर व्यास, वाराणसी, 1967

42 पाडेय् अमरनाथ · बाणभट्ट का आदान-प्रदान, वाराणसी, 1967

43. पांडेय् राजबली : हिन्दू संस्कार, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1966

44. पद्मपुराण : (स०) हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना 1893–94

45. पातंजलयोग सूत्र : (स०) रामशंकर भट्टाचार्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1968

46. Pischel, R. : The Desinamamala of Hemachandra Bombay Sanskrit Series, No. XVII Bombay, 1938

47. प्रेमी, नाथूराम : जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बई, 1965

48. प्रभाचन्द्र : प्रभावकचरित, (स०) मुनिजिनविजय, सिंघी–जैन ग्रन्थमाला-13, कलकत्ता, 1940

49 बाणभट्ट : कादम्बरी, (स०) मोहनदेव पंत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971

50. बाणभट्ट : हर्षचरित, (स०) पी० वी० काणे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1973

51. भागवतपुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर, स० 2010

52. भावप्रकाश : भाग 2, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1941

53. भामह : काव्यालंकार, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद्, पटना, 1962

54. भवभूति : मालतीमाधव (स०) एम० आर० काले, बम्बई, 1913

55. महाभारत : (स०) जी० डी० जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर स० 2014

56. भोज : सरस्वतीकण्ठाभरण, गोहाटी 3, 1969

57. मम्मट : काव्यप्रकाश (स०) डा० नगेन्द्र, वाराणसी, 1960

58. माधवाचार्य : सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा विद्या–भवन, वाराणसी–1, 1964

59. मिश्र, जयशंकर : ग्यारहवीं सदी का भारत, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी

60 Muller, F Max : History of Ancient Sanskrit Literature, Allahabad, 1912

61. Macdonell, A A A History of Sanskrit Literature, Moti Lal Banarasidas, Delhi, 1971

62 Mabel, C Duff . The Chronology of India, Westminster, 1899

63 मेरुतुंग प्रबन्धचिंतामणि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला–1 शांतिनिकेतन, 1333

64 मेरुतुंग . The Probandhacintamani, (Ed) C H Tawney, Calcutta, 1899

65. मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भारतीय भंडार, प्रयाग, सं० 2007

66 मोतीचन्द्र . सार्थवाह, बिहार–राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, 1953

67 राजशेखर . काव्यमीमांसा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1, 1964

68 रूय्यक अलंकारसर्वस्व, काव्यमाला, 1893

69 रुद्रट काव्यालंकार, काव्यमाला 3, 1928

70 लक्ष्मीधर : तिलकमंजरीकथासार, हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली 12, अहमदाबाद 1919

71 वाल्मीकि रामायण (सं) हनुमान प्रसाद पोद्दार गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० 2017

72 वेलकर, एच डी जिनरत्नकोश, भाग 1, 1944

73 Vardachari, V A History of the Samskrta Literature, Allahabad–2, 1960

74 Winternitz, M, History of Indian Literature, Vol II, Part I, Calcutta, 1959

75. Winternitz, M The Jains in the History of Indian Literature (Ed) Muni Jinavijay, Ahmedabad, 1946

76. विद्यालंकार, अत्रिदेव प्राचीन भारत के प्रसाधन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1958

77. विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, मोतीलाल बनारसीदास, 1965

78. सुबन्धु : वासवदत्ता, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1, 1967

79. सोमेश्वर : कीर्तिकौमुदी, सिंघी-जैन-ग्रन्थमाला 32, बम्बई, 1961

80. शास्त्री, नेमिचन्द्र : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, वाराणसी, 1966

81. शोभन : स्तुतिचतुर्विंशतिका, काव्यमाला (सप्तम गुच्छक), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

82. शोभन : स्तुतिचतुर्विंशतिका, आगमोदय समिति, बम्बई, 1926

83. Handiqui, K.K. : Yasastilak & Indian Culture, Sholapur, 1949.

84. हेमचन्द्र : काव्यानुशासन, काव्यमाला-70, बम्बई, 1934

85. हेमचन्द्र : छन्दोनुशासन, सिंघी-जैन-ग्रन्थालय 49, बम्बई, 1960

86. हेमचन्द्र : अभिधानचिंतामणि, देवचन्दलालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थालय 92, बम्बई, 1946

87. हर्षदेव : रत्नावली (सं.) शिवराज शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, 1968